अध्याय ९

श्री चैतन्य महाप्रभु की तीर्थयात्राएँ

नवें अध्याय का सारांश श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने इस प्रकार दिया है। विद्यानगर से चलने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु इन तीर्थस्थानों में गये : गौतमी-गंगा, मल्लिकार्जुन, अहोवल-नृसिंह, सिद्धवट, स्कन्द क्षेत्र, त्रिमठ, वृद्धकाशी, बौद्धस्थान, तिरुपति, तिरुमल्ल, पानानृसिंह, शिवकांची, विष्णुकांची, त्रिकालहस्ती, वृद्धकोल, शियाली-भैरवी, कावेरी नदी तथा कुम्भकर्ण कपाल।

अन्त में महाप्रभु श्री रंगक्षेत्र गये, जहाँ उन्होंने वेंकट भट्ट नामक ब्राह्मण को सपरिवार कृष्ण-भक्त बनाया। श्री रंग से चलने के बाद चैतन्य महाप्रभु ऋषभ पर्वत आये, जहाँ उनकी भेंट परमानन्द पुरी से हुई, जो बाद में जगन्नाथ पुरी आ गये। तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु आगे गये और सेतुबन्ध रामेश्वर पहुँचे। श्री शैलपर्वत पर उनकी भेंट शिवजी तथा उनकी पत्नी दुर्गा से एक ब्राह्मण-ब्राह्मणी के वेश में हुई। इसके बाद वे कामकोष्ठीपुरी गये और फिर वहाँ से दक्षिण मथुरा पहुँचे। उनसे भगवान् रामचन्द्र के भक्त, एक ब्राह्मण ने बातें की। तत्पश्चात् महाप्रभु ने कृतमाला नदी में स्नान किया। उन्होंने महेन्द्रशैल नामक पर्वत पर परशुराम के दर्शन किये। तत्पश्चात् महाप्रभु सेतुबन्ध गये और धनुस्तीर्थ में स्नान किया। वे रामेश्वर भी गये, जहाँ उन्होंने सीतादेवी से सम्बन्धित कुछ कागजात प्राप्त किये, जिनके मायारूप का हरण रावण ने किया था। इसके बाद महाप्रभु ने पाण्ड्य देश, ताम्रपर्णी नदी, नयत्रिपति, चियड़तला, तिलकांची, गजेन्द्रमोक्षण, पानागड़ि, चाम्तापुर, श्री वैकुण्ठ, मलय पर्वत तथा कन्याकुमारी इत्यादि स्थानों का भ्रमण किया। इसके बाद मल्लार देश में महाप्रभु का सामना भट्टथारियों से हुआ और उन्होंने काला कृष्णदास को उनके चंगुल

से छुड़ाया। महाप्रभु ने पयस्विनी नदी के तट पर *ब्रह्म-संहिता* का पाँचवा अध्याय प्राप्त किया। इसके बाद वे पयस्विनी, शृंगवेरपुरी मठ तथा मत्स्य-तीर्थ गये। उडुपी नामक गाँव में उन्होंने श्री मध्वाचार्य द्वारा संस्थापित गोपाल विग्रह के दर्शन किये। तत्पश्चात् उन्होंने तत्त्ववादियों को शास्त्रार्थ में हराया। इसके बाद महाप्रभु फल्गुतीर्थ, त्रितकूप, पंचाप्सरा, सूर्पारक तथा कोलापुर गये। पांडरपुर में उन्हें शंकरारण्य (विश्वरूप) के अन्तर्धान होने का समाचार श्रीरंग पुरी से मिला। फिर वे कृष्णवेण्वा नदी के तट पर गये, जहाँ उन्होंने वैष्णव ब्राह्मणों के यहाँ से बिल्वमंगल ठाकुर कृत *श्रीकृष्ण कर्णामृत* नामक पुस्तक प्राप्त की। तत्पश्चात् महाप्रभु ने तापी, महिष्मतीपुर, नर्मदा नदी तथा ऋष्यमूक पर्वत देखा। वे दण्डकारण्य में प्रविष्ट हुए और वहाँ उन्होंने सात ताड़ वृक्षों का उद्धार किया। वहाँ से वे पम्पा सरोवर आये और पंचवटी, नासिक, ब्रह्मगिरि तथा गोदावरी नदी का उद्गम कुशावर्त देखा। इस तरह महाप्रभु ने दक्षिण भारत के प्रायः समस्त तीर्थों को देखा। अन्त में वे उसी रास्ते से होकर, फिर से विद्यानगर होते हुए जगन्नाथ पुरी लौट आये।

नाना-मत-ग्राह-ग्रस्तान्दाक्षिणात्य-जन-द्विपान् ।
कृपारिणा विमुच्यैतान्गौरश्चक्रे स वैष्णवान् ॥ १ ॥

नाना-मत—नाना प्रकार के मतों से; **ग्राह**—मगरमच्छ की भाँति; **ग्रस्तान्**—पकड़े हुए; **दाक्षिणात्य-जन**—दक्षिण भारत के निवासी; **द्विपान्**—हाथियों की भाँति; **कृपा-अरिणा**—उनकी कृपा रूपी चक्र से; **विमुच्य**—मुक्त करके; **एतान्**—इन सबको; **गौरः**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **चक्रे**—परिवर्तन किया; **सः**—उन्होंने; **वैष्णवान्**—वैष्णव सम्प्रदाय में।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने दक्षिण भारत के निवासियों का हृदय-परिवर्तन किया। ये लोग हाथी के समान बलशाली थे, किन्तु वे विभिन्न विचारधाराओं—यथा बौद्ध, जैन, मायावादी दर्शन—रूपी घड़ियालों (मगरमच्छों) के चंगुल में फँसे हुए थे। महाप्रभु ने अपनी कृपा रूपी चक्र से सबको वैष्णव अर्थात् भगवद्भक्त बनाकर सबका उद्धार किया।

तात्पर्य

यहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दक्षिण भारत के लोगों को वैष्णव बनाये जाने की तुलना भगवान् विष्णु द्वारा घड़ियाल के आक्रमण से गजेन्द्र का उद्धार किये जाने से की गई है। जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने दक्षिण भारत की यात्रा की, तब वहाँ के प्रायः सारे निवासी बौद्ध, जैन तथा मायावादी दर्शन रूपी घड़ियालों के चंगुलों में फँसे हुए थे। यहाँ पर कविराज गोस्वामी कहते हैं कि यद्यपि ये लोग हाथियों के समान बलवान थे, किन्तु वे लगभग मृत्यु के चंगुल में थे, क्योंकि उन पर विभिन्न दर्शनों रूपी घड़ियालों ने हमला कर रखा था। जैसे श्री चैतन्य महाप्रभु ने विष्णु के रूप में गजेन्द्र हाथी को अपनी कृपा द्वारा घड़ियाल के चंगुल से बचाया, वैसे ही उन्होंने दक्षिण भारत के सभी लोगों को वैष्णव बनाकर विभिन्न दर्शनों के पाश से छुड़ाया।

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।
जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥२॥

जय जय श्री-चैतन्य जय नित्यानन्द ।
जयाद्वैत-चन्द्र जय गौर-भक्त-वृन्द ॥ २॥

जय जय—जय हो; **श्री-चैतन्य**—श्री चैतन्य महाप्रभु की; **जय**—जय हो; **नित्यानन्द**—नित्यानन्द प्रभु की; **जय अद्वैत-चन्द्र**—श्री अद्वैत प्रभु की जय हो; **जय**—जय हो; **गौर-भक्त-वृन्द**—श्री चैतन्य महाप्रभु के भक्तों की।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की जय हो! श्री नित्यानन्द प्रभु की जय हो।! श्री अद्वैत प्रभु की जय हो तथा श्री चैतन्य महाप्रभु के सारे भक्तों की जय हो!

दक्षिण-गमन प्रभुर अति विलक्षण ।
सहस्र सहस्र तीर्थ कैल दरशन ॥३॥

दक्षिण-गमन प्रभुर अति विलक्षण ।
सहस्र सहस्र तीर्थ कैल दरशन ॥ ३॥

दक्षिण-गमन—दक्षिण भारत का भ्रमण; **प्रभुर**—महाप्रभु का; **अति**—अत्यन्त;

विलक्षण—असाधारण; **सहस्र सहस्र**—हजारों; **तीर्थ**—तीर्थ स्थान; **कैल**—किया; **दरशन**—दर्शन।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की दक्षिण भारत की यात्रा निश्चय ही अद्वितीय थी, क्योंकि उन्होंने वहाँ कई हजार तीर्थस्थान देखे।

सेइ सब तीर्थ स्पर्शि' महा-तीर्थ कैल ।
सेइ छले सेइ देशेर लोक निस्तारिल ॥ ४ ॥

सेइ सब तीर्थ स्पर्शि' महा-तीर्थ कैल ।
सेइ छले सेइ देशेर लोक निस्तारिल ॥ ४ ॥

सेइ सब—उन सब; **तीर्थ**—तीर्थस्थान; **स्पर्शि'**—स्पर्श करके; **महा-तीर्थ**—महातीर्थ; **कैल**—बनाये; **सेइ छले**—उसी बहाने से; **सेइ देशेर**—उन देशों के; **लोक**—लोगों का; **निस्तारिल**—उद्धार किया।

अनुवाद

उन तीर्थस्थानों में जाने के बहाने उन्होंने हजारों निवासियों का हृदय परिवर्तन किया और इस तरह उनका उद्धार किया। उन्होंने तीर्थस्थानों को अपने स्पर्श मात्र से महान् तीर्थस्थलों में परिणत कर दिया।

तात्पर्य

कहा गया है—*तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि। तीर्थ* वह स्थान है जहाँ बड़े-बड़े सन्त पुरुष जाते हैं या रहते हैं। यद्यपि ये तीर्थ पहले से तीर्थस्थल थे, किन्तु महाप्रभु के जाने से वे सभी निर्मल हो गये। इन तीर्थस्थानों में अनेक लोग जाते हैं और वहाँ अपने पापकर्म छोड़ आते हैं, और इस तरह कल्मष से मुक्त हो जाते हैं। जब ये कल्मष बढ़कर ढेर का रूप धारण कर लेते हैं, तब वे श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके सच्चे अनुयायियों जैसे महापुरुषों के आने से नष्ट हो जाते हैं। किसी अस्पताल में कई तरह के रोगी आते हैं, जिससे वह अनेक रोगों से संक्रमित हो जाता है। वस्तुतः अस्पताल सदैव संक्रमित रहता है, किन्तु कुशल चिकित्सक अपनी उपस्थिति तथा व्यवस्था से अस्पताल को कीटाणुरहित बनाये रखता है। इसी तरह तीर्थस्थल आने वाले पापियों के पापों से दूषित रहते

हैं, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु जैसे महापुरुषों के आने से ऐसे स्थानों का सारा कल्मष दूर हो जाता है।

सेइ सब तीर्थेर क्रम कहिते ना पारि ।
दक्षिण-वामे तीर्थ-गमन हय फेराफेरि ॥५॥

सेइ सब तीर्थेर क्रम कहिते ना पारि ।
दक्षिण-वामे तीर्थ-गमन हय फेराफेरि ॥५॥

सेइ सब—वे सब; **तीर्थेर**—तीर्थ स्थानों का; **क्रम**—क्रम; **कहिते**—बताने में; **ना पारि**—मैं अक्षम हूँ; **दक्षिण-वामे**—दाएँ, बाएँ; **तीर्थ-गमन**—तीर्थों में जाकर; **हय**—है; **फेराफेरि**—जाना-आना।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने जिन समस्त तीर्थस्थानों का भ्रमण किया, उनका क्रमबद्ध वर्णन कर पाना मेरे लिए सम्भव नहीं है। मैं संक्षेप में इतना ही कह सकता हूँ कि महाप्रभु ने आते-जाते दाहिने तथा बाँये के सारे तीर्थस्थानों का भ्रमण किया।

अतएव नाम-मात्र करिये गणन ।
कहिते ना पारि तार यथा अनुक्रम ॥६॥

अतएव नाम-मात्र करिये गणन ।
कहिते ना पारि तार यथा अनुक्रम ॥६॥

अतएव—अतएव; **नाम-मात्र**—नाम मात्र; **करिये गणन**—गिनना; **कहिते**—बताने के लिए; **ना पारि**—असमर्थ; **तार**—उसका; **यथा**—जैसे; **अनुक्रम**—क्रमबद्ध।

अनुवाद

चूँकि इन सारे स्थानों का क्रमबद्ध वर्णन कर पाना मेरे लिए सम्भव नहीं है, अतएव मैं नाम के लिए ही उनका वर्णन करूँगा।

पूर्ववत्पथे याइते ये पाय दरशन ।
येइ ग्रामे याय, से ग्रामेर यत जन ॥७॥

সবেই বৈষ্ণব হয়, কহে 'কৃষ্ণ' 'হরি' ।
অন্য গ্রাম নিস্তারয়ে সেই 'বৈষ্ণব' করি' ॥৮॥

পূর্ববৎপথে য়াইতে য়ে পায় দরশন ।
য়েই গ্রামে য়ায়, সে গ্রামের য়ত জন ॥৭॥
সবেই বৈষ্ণব হয়, কহে 'কৃষ্ণ' 'হরি' ।
অন্য গ্রাম নিস্তারয়ে সেই 'বৈষ্ণব' করি' ॥৮॥

पूर्व-वत्—पहले की भाँति; **पथे**—मार्ग पर; **य़ाइते**—जाते समय; **य़े**—जो कोई; **पाय**—पाता है; **दरशन**—दर्शन; **य़ेइ**—जो; **ग्रामे**—गाँव में; **य़ाय**—श्री चैतन्य महाप्रभु जाते; **से**—उस; **ग्रामेर**—गाँव के; **य़त**—जितने; **जन**—लोग; **सबेइ**—वे सब; **वैष्णव हय**—भक्त हो जाते; **कहे**—कहते हैं; **कृष्ण हरि**—कृष्ण और हरि के पावन नाम; **अन्य ग्राम**—दूसरे गाँव; **निस्तारये**—उद्धार करते हैं; **सेइ**—वे; **वैष्णव**—भक्त; **करि'**—बनाकर।

अनुवाद

जैसाकि पहले कहा जा चुका है, भगवान् चैतन्य महाप्रभु जिन-जिन गाँवों में गये, वहाँ के सारे निवासी वैष्णव बन गये, और 'हरि' तथा 'कृष्ण' नाम का उच्चारण करने लगे। इस तरह महाप्रभु जितने सारे गाँवों में गये, उनका हर व्यक्ति वैष्णव भक्त बन गया।

तात्पर्य

कृष्ण तथा हरि के पवित्र नाम अथवा हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन आध्यात्मिक दृष्टि से इतना शक्तिशाली है कि आज भी जब हमारे प्रचारक विश्व के सुदूर भागों में जाते हैं, तो लोग तुरन्त हरे कृष्ण का कीर्तन करना प्रारम्भ कर देते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् थे। अन्य कोई ऐसा नहीं है, जो उनकी या उनकी शक्तियों की बराबरी कर सके। किन्तु उनके पदचिह्नों पर चलने और हरे-कृष्ण-महामन्त्र का कीर्तन करने का उतना ही प्रभाव है, जितना चैतन्य महाप्रभु के समय में था। हमारे प्रचारक मुख्यतया यूरोप तथा अमरीका जैसे देशों के हैं, फिर भी वे जहाँ कहीं शाखाएँ खोलने जाते हैं, श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिलती है। निस्सन्देह, लोग सर्वत्र हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे का कीर्तन गम्भीरतापूर्वक करते हैं।

दक्षिण देशेर लोक अनेक प्रकार ।
केह ज्ञानी, केह कर्मी, पाषण्डी अपार ॥९॥

दक्षिण देशेर लोक अनेक प्रकार ।
केह ज्ञानी, केह कर्मी, पाषण्डी अपार ॥ ९ ॥

दक्षिण देशेर—दक्षिण भारत के; **लोक**—लोग; **अनेक**—अनेक; **प्रकार**—प्रकार; **केह**—कोई; **ज्ञानी**—ज्ञानी; **केह**—कोई; **कर्मी**—सकाम कर्मी; **पाषण्डी**—अभक्त; **अपार**—असंख्य।

अनुवाद

दक्षिण भारत में अनेक प्रकार के लोग थे। कुछ तो ज्ञानी थे और कुछ सकाम कर्मी, किन्तु अभक्तों की संख्या अपार थी।

सेई सब लोक प्रभुर दर्शन-प्रभावे ।
निज-निज-मत छाड़ि' हइल वैष्णवे ॥१०॥

सेइ सब लोक प्रभुर दर्शन-प्रभावे ।
निज-निज-मत छाड़ि' हइल वैष्णवे ॥ १० ॥

सेइ सब लोक—वे सब लोग; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु के; **दर्शन-प्रभावे**—दर्शन के प्रभाव से; **निज-निज**—अपने अपने; **मत**—सिद्धान्त; **छाड़ि'**—छोड़कर; **हइल**—हो गये; **वैष्णवे**—भक्त।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव से इन सारे लोगों ने अपने-अपने मत त्याग दिये और वैष्णव अर्थात् कृष्ण-भक्त बन गये।

वैष्णवेर मध्ये राम-उपासक सब ।
केह 'तत्त्ववादी', केह हय 'श्री-वैष्णव' ॥११॥

वैष्णवेर मध्ये राम-उपासक सब ।
केह 'तत्त्ववादी', केह हय 'श्री-वैष्णव' ॥ ११ ॥

वैष्णवेर मध्ये—वैष्णवों के बीच; **राम-उपासक सब**—सभी भगवान् श्री रामचन्द्र के भक्त; **केह**—कोई; **तत्त्व-वादी**—मध्वाचार्य का अनुयायी; **केह**—कोई; **हय**—है; **श्री-वैष्णव**—श्री रामानुजाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा।

अनुवाद

उस समय दक्षिण भारत के सारे वैष्णव भगवान् रामचन्द्र के उपासक थे। उनमें से कुछ तत्त्ववादी थे और कुछ रामानुजाचार्य के अनुयायी थे।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने संकेत किया है कि "तत्त्ववादी" का अर्थ है श्रील मध्वाचार्य के अनुयायी। मध्वाचार्य ने अपनी गुरु-शिष्य परम्परा को शंकराचार्य के मायावादी अनुयायियों से पृथक् करने के लिए अपने दल का नाम *तत्त्ववादी* रखा। निर्विशेष अद्वैतवादियों पर ये तत्त्ववादी सर्वदा आक्रमण करते हैं और उनके निर्विशेष दर्शन को पराजित करने की चेष्टा करते हैं। सामान्यतया ये पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की श्रेष्ठता जताते हैं। किन्तु मध्वाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा वास्तव में, ब्रह्मा-वैष्णव-सम्प्रदाय के नाम से जानी जाती है—अर्थात् यह सम्प्रदाय ब्रह्माजी से लेकर चला आ रहा है। फलस्वरूप मध्वाचार्य के अनुयायी तत्त्ववादी ब्रह्मा के मोह की उस घटना को स्वीकार नहीं करते, जो *श्रीमद्भागवत* के दसवें स्कंध में आई है। श्रील मध्वाचार्य ने *श्रीमद्भागवत* के उस अंश की जान-बूझकर टीका नहीं की, जिसमें *ब्रह्म-मोहन* (अर्थात् ब्रह्मा के मोहित होने) का उल्लेख हुआ है। श्रील माधवेन्द्र पुरी तत्त्ववादी गुरु-शिष्य परम्परा के आचार्यों में से एक थे। उन्होंने शुद्ध भक्ति की प्राप्ति को ही अध्यात्मवाद का चरम लक्ष्य बतलाया। श्री चैतन्य महाप्रभु की गुरु-शिष्य परम्परा अर्थात् गौड़ीय सम्प्रदाय के वैष्णव यद्यपि उसी तत्त्ववाद सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं, किन्तु फिर भी वे तत्त्ववादियों से पृथक् हैं। इसलिए श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुयायी मध्वगौड़ीय सम्प्रदाय के नाम से जाने जाते हैं।

पाषण्डी शब्द शुद्ध भक्ति के विरोधियों का सूचक है। विशेषतया ये मायावादी अर्थात् निर्विशेषवादी हैं। *हरिभक्ति-विलास* (१.७३) में *पाषण्डी* की परिभाषा इस प्रकार दी हुई है :

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद् ध्रुवम्॥

पाषण्डी वह है, जो सोचता है कि भगवान् नारायण तथा ब्रह्माजी, शिवजी आदि देवता एक ही पद पर स्थित हैं। लेकिन भक्तजन कभी-भी भगवान्

नारायण को ब्रह्माजी तथा शिवजी के पद पर नहीं मानते। मध्वाचार्य सम्प्रदाय तथा रामानुज सम्प्रदाय मुख्य रूप से भगवान् रामचन्द्र के उपासक हैं, यद्यपि यह माना जाता है कि श्री वैष्णव लोग भगवान् नारायण तथा लक्ष्मी के उपासक हैं तथा तत्त्ववादी भगवान् कृष्ण के उपासक हैं। आजकल मध्व सम्प्रदाय के अधिकांश मठों में भगवान् रामचन्द्र की पूजा की जाती है।

अध्यात्म-रामायण नामक पुस्तक के बारहवें से पन्द्रहवें अध्यायों में श्री रामचन्द्र तथा सीताजी के अर्चाविग्रहों की पूजा किये जाने का उल्लेख है। उसमें एक कथन है कि भगवान् रामचन्द्र के काल में एक ब्राह्मण था, जिसने यह व्रत ले रखा था कि भगवान् रामचन्द्र का दर्शन किये बिना वह प्रातःकालीन भोजन नहीं करेगा। कभी-कभी कार्यवश भगवान् रामचन्द्र राजधानी से पूरे सप्ताह बाहर रहते थे। अतएव उस अवधि में नागरिकों को उनका दर्शन नहीं मिल पाता था। फलतः इस ब्राह्मण ने अपने व्रत के कारण उस सप्ताह जल की एक बूँद भी ग्रहण नहीं की। आठ-नौ दिन बाद जब उसने साक्षात् भगवान् रामचन्द्र के दर्शन किये, तब उसने अपना उपवास तोड़ा। उस ब्राह्मण के दृढ़ व्रत को देखकर भगवान् श्री रामचन्द्र ने अपने भाई लक्ष्मण को आदेश दिया कि वे उस ब्राह्मण को सीता-राम के अर्चाविग्रह की एक जोड़ी दे दें। उस ब्राह्मण ने लक्ष्मणजी से वे अर्चाविग्रह प्राप्त किये और आजीवन उनकी श्रद्धापूर्वक पूजा करता रहा। उसके मृत्यु के समय वह इन अर्चाविग्रहों को हनुमानजी को देता गया, जिन्हें वे वर्षों तक अपने गले में लटकाकर भक्तिसहित उनकी सेवा करते रहे। किन्तु अनेक वर्षों बाद जब हनुमानजी गन्धमादन पर्वत चले गये, तो वे अर्चाविग्रहों को पाण्डवों में से एक भीमसेन को देते गये। भीमसेन उन्हें अपने महल में ले आये और उन्हें वहाँ उन्होंने बहुत सावधानी से रखा। अन्तिम पाण्डव राजा क्षेमकान्त ने उसी महल में उनकी पूजा की। बाद में ये अर्चाविग्रह उड़ीसा के राजा गजपतियों की निगरानी में चले गये। नरहरि तीर्थ नामक एक आचार्य ने, जो मध्वाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा में थे, उड़ीसा के राजा से इन विग्रहों को प्राप्त किया।

ध्यान देने की बात है कि राम तथा सीता के ये विशेष अर्चाविग्रह राजा इक्ष्वाकु के समय से ही पूजे जाते रहे हैं। निस्सन्देह, इनकी पूजा भगवान्

रामचन्द्र के आविर्भाव के पहले से राजकुमारों द्वारा होती रही होगी। बाद में, भगवान् रामचन्द्र के काल में इनकी पूजा लक्ष्मण ने की। कहा जाता है कि श्री मध्वाचार्य ने अपने तिरोधान के तीन मास पूर्व इन अर्चाविग्रहों को प्राप्त किया था और इनकी स्थापना उडुपी मन्दिर में कर दी थी। तब से उस मठ में मध्वाचार्य सम्प्रदाय वाले उनकी पूजा करते रहे हैं। जहाँ तक श्री वैष्णवों का सम्बन्ध है, रामानुजाचार्य से शुरू करके अन्य सबने सीताराम-अर्चाविग्रहों की पूजा की। तिरुपति तथा अन्य स्थानों में भी सीता-राम के अर्चाविग्रह पूजे जाते हैं। श्री रामानुज सम्प्रदाय की एक अन्य शाखा रामानन्दी या रामात है और इसके अनुयायी भी सीताराम अर्चाविग्रहों की पूजा नियमपूर्वक करते हैं। रामानुज सम्प्रदाय के वैष्णव राधाकृष्ण की अपेक्षा भगवान् रामचन्द्र की पूजा को वरीयता प्रदान करते हैं।

सेइ सब वैष्णव महाप्रभुर दर्शने ।
कृष्ण-उपासक हैल, लय कृष्ण-नामे ॥ १२॥
सेइ सब वैष्णव महाप्रभुर दर्शने ।
कृष्ण-उपासक हैल, लय कृष्ण-नामे ॥ १२॥

सेइ सब—वे सब; **वैष्णव**—भक्त; **महाप्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु के; **दर्शने**—दर्शन करने से; **कृष्ण-उपासक**—भगवान् कृष्ण के उपासक (भक्त); **हैल**—हो गये; **लय**—लिया; **कृष्ण-नामे**—भगवान् कृष्ण का पावन नाम।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु से भेंट करने के बाद वे सारे वैष्णव कृष्ण-भक्त बन गये और हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने लगे।

राम! राघव! राम! राघव! राम! राघव! पाहि माम् ।
कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव! रक्ष माम् ॥ १३॥
राम! राघव! राम! राघव! राम! राघव! पाहि माम् ।
कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव! कृष्ण! केशव! रक्ष माम् ॥ १३॥

राम—हे राम; **राघव**—हे राघव; **पाहि**—कृपया रक्षा करें; **माम्**—मेरी; **कृष्ण**—हे कृष्ण; **केशव**—हे केशव, केशी दैत्य के हन्ता; **रक्ष**—रक्षा करें; **माम्**—मेरी।

अनुवाद

"'हे रघुवंशी रामचन्द्र, कृपया आप मेरी रक्षा करें! हे केशी असुर को मारने वाले कृष्ण, कृपया आप मेरी रक्षा करें!"

एই শ্লোক পথে পড়ি' করিলা প্রয়াণ ।
গৌতমী-গঙ্গায় যাই' কৈল গঙ্গা-স্নান ॥ ১৪॥

এइ श्लोक पथे पड़ि' करिला प्रयाण ।
गौतमी-गङ्गाय याइ' कैल गङ्गा-स्नान ॥ १४॥

एइ श्लोक—यह संस्कृत श्लोक; **पथे**—मार्ग में; **पड़ि'**—पढ़ते हुए; **करिला**—किया; **प्रयाण**—प्रस्थान; **गौतमी-गङ्गाय**—गौतम गंगा नदी के तट पर; **याइ'**—जाकर; **कैल**—किया; **गङ्गा-स्नान**—गंगा-स्नान।

अनुवाद

मार्ग पर जाते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु इसी रामराघव मन्त्र का कीर्तन करते थे। इस प्रकार कीर्तन करते-करते वे गौतमी-गंगा के तट पर पहुँचे और वहाँ पर उन्होंने स्नान किया।

तात्पर्य

गौतमी-गंगा गोदावरी नदी की एक शाखा है। प्राचीन काल में इस नदी के तट पर राजमहेन्द्री शहर के उस पार गौतम नामक ऋषि निवास करते थे; जिसके कारण नदी की इस शाखा का नाम गौतमी-गंगा पड़ा।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का कहते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु जिन जिन तीर्थस्थानों पर गये, उनका वर्णन तो श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने किया है, किन्तु वे क्रमानुसार नहीं हैं। किन्तु गोविन्द दास की किताब है, जिसमें भौगोलिक स्थिति के उल्लेख के साथ क्रमानुसार वर्णन है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर इस ग्रंथ की सहायता लेने के लिए पाठकों से निवेदन करते हैं। गोविन्द दास के अनुसार श्री चैतन्य महाप्रभु गौतमी गंगा से त्रिमन्द गये और वहाँ से घुण्डिराम तीर्थ गये। *श्री चैतन्य चरितामृत* के अनुसार गौतमी-गंगा का दर्शन करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु मल्लिकार्जुन तीर्थ गये।

मल्लिकार्জুন-তীর্থে যাই' মহেশ দেখিল ।
তাহাঁ সব লোকে কৃষ্ণ-নাম লওয়াইল ॥ ১৫ ॥

মল্লিকার্জুন-তীর্থে য়াই' মহেশ দেখিল ।
তাহাঁ সব লোকে কৃষ্ণ-নাম লওয়াইল ॥ ১৫ ॥

মল্লিকার্জুন-তীর্থে—মল্লিকাঅর্জুন তীর্থ; **য়াই'**—জাকর; **মহেশ**—শিবজী की प्रतिमा; **দেখিল**—उन्होंने देखी; **তাহাঁ**—वहाँ; **সব লোকে**—सभी लोगों को; **কৃষ্ণ-নাম**—भगवान् कृष्ण का पावन नाम; **লওয়াইল**—कीर्तन करने की प्रेरणा की।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु मल्लिकार्जुन तीर्थ गये और वहाँ पर शिवजी के अर्चाविग्रह का दर्शन किया। उन्होंने सारे लोगों को हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने के लिए प्रेरित भी किया।

तात्पर्य

मल्लिकार्जुन का दूसरा नाम श्री शैल है। यह कृष्णा नदी के दक्षिणी तट पर कर्णुल से लगभग एक सौ मील उत्तर-पूर्व में स्थित है। गाँव के चारों ओर बड़ी-बड़ी दीवालें हैं और इन दीवालों के भीतर मल्लिकार्जुन अर्चाविग्रह है। यह शिवजी का अर्चाविग्रह है और ज्योतिर्लिंगों में से एक है।

রামদাস মহাদেবে করিল দরশন ।
অহোবল-নৃসিংহেরে করিলা গমন ॥ ১৬ ॥

রামদাস মহাদেবে করিল দরশন ।
অহোবল-নৃসিংহেরে করিলা গমন ॥ ১৬ ॥

রাম-দাস—रामदास; **মহা-দেবে**—महादेव का; **করিল**—किया; **দরশন**—दर्शन; **অহোবল-নৃসিংহেরে**—अहोवल नृसिंह; **করিলা**—किया; **গমন**—प्रस्थान।

अनुवाद

वहाँ पर उन्होंने भगवान् राम के दास महादेव (शिव) का दर्शन किया। इसके बाद वे अहोवल-नृसिंह देखने गये।

নৃসিংহ দেখিয়া তাঁরে কৈল নতি-স্তুতি ।
সিদ্ধবট গেলা যাহাঁ মূর্তি সীতাপতি ॥ ১৭ ॥

नृसिंह देखिया ताँरे कैल नति-स्तुति ।
सिद्धवट गेला याहाँ मूर्ति सीतापति ॥ १७॥

नृसिंह देखिया—भगवान् नृसिंह देव के अर्चाविग्रह का दर्शन करने के बाद; **ताँरे**—उनको; **कैल**—किया; **नति-स्तुति**—विविध स्तुतियाँ की; **सिद्धवट**—सिद्धवट; **गेला**—वे गये; **याहाँ**—जहाँ; **मूर्ति**—विग्रह; **सीता-पति**—भगवान् रामचन्द्र।

अनुवाद

अहोवल नृसिंह अर्चाविग्रह का दर्शन करने के बाद चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् की स्तुति की। फिर वे सिद्धवट गये, जहाँ उन्होंने सीतादेवी के स्वामी रामचन्द्र के अर्चाविग्रह का दर्शन किया।

तात्पर्य

यह सिद्धवट जिसे सिघौट भी कहा जाता है, कुड़ापा गाँव से दस मील पूर्व है। पहले यह स्थान दक्षिण बनारस कहलाता था। यहाँ पर बरगद का विशाल वृक्ष है; अतएव यह सिद्धवट कहलाता है। *वट* का अर्थ है बरगद का पेड़।

रघुनाथ देखि' कैल प्रणति स्तवन ।
ताहाँ एक विप्र प्रभुर कैल निमन्त्रण ॥ १८॥

रघुनाथ देखि' कैल प्रणति स्तवन ।
ताहाँ एक विप्र प्रभुर कैल निमन्त्रण ॥ १८॥

रघु-नाथ देखि'—महाराज रघु के वंशज भगवान् रामचन्द्र का दर्शन करने के बाद; **कैल**—किया; **प्रणति**—प्रणाम; **स्तवन**—स्तुति; **ताहाँ**—वहाँ; **एक**—एक; **विप्र**—ब्राह्मण; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **कैल**—किया; **निमन्त्रण**—निमंत्रण।

अनुवाद

महाप्रभु ने रघुवंशी भगवान् रामचन्द्र के अर्चाविग्रह का दर्शन करने के बाद उनको नमस्कार किया और स्तुति की। तत्पश्चात् एक ब्राह्मण ने उन्हें भोजन करने के लिए आमन्त्रित किया।

सेई विप्र राम-नाम निरन्तर लय ।
'राम' 'राम' विना अन्य वाणी ना कहय ॥ १९॥

सेइ विप्र राम-नाम निरन्तर लय ।
'राम' 'राम' विना अन्य वाणी ना कहय ॥ १९ ॥

सेइ विप्र—वह ब्राह्मण; **राम-नाम**—भगवान् रामचन्द्र का पावन नाम; **निरन्तर**—निरन्तर; **लय**—जपता है; **राम राम**—राम राम; **विना**—बिना; **अन्य**—अन्य; **वाणी**—शब्द; **ना**—नहीं; **कहय**—बोलता।

अनुवाद

वह ब्राह्मण निरन्तर पवित्र राम-नाम का उच्चारण करता था। वह ब्राह्मण राम-नाम के अतिरिक्त अन्य किसी शब्द का उच्चारण नहीं करता था।

सेइ दिन ताँर घरे रहि' भिक्षा करि' ।
ताँरे कृपा करि' आगे चलिला गौरहरि ॥ २० ॥

सेइ दिन ताँर घरे रहि' भिक्षा करि' ।
ताँरे कृपा करि' आगे चलिला गौरहरि ॥ २० ॥

सेइ दिन—उस दिन; **ताँर घरे**—उस ब्राह्मण के घर में; **रहि'**—रहकर; **भिक्षा करि'**—प्रसाद लेकर; **ताँरे**—उस पर; **कृपा करि'**—कृपा करके; **आगे**—आगे; **चलिला**—चले गये; **गौर-हरि**—श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

उस दिन भगवान् चैतन्य वहीं रहे और उसके घर में प्रसाद ग्रहण किया। इस तरह उस ब्राह्मण पर कृपा करने के बाद महाप्रभु आगे बढ़ गये।

स्कन्द-क्षेत्र-तीर्थे कैल स्कन्द दरशन ।
त्रिमठ आइला, ताहाँ देखि' त्रिविक्रम ॥ २१ ॥

स्कन्द-क्षेत्र-तीर्थे कैल स्कन्द दरशन ।
त्रिमठ आइला, ताहाँ देखि' त्रिविक्रम ॥ २१ ॥

स्कन्द-क्षेत्र-तीर्थे—स्कन्द क्षेत्र नामक तीर्थस्थान में; **कैल**—किया; **स्कन्द दरशन**—स्कन्द जी (कार्तिकेय, शिवजी के पुत्र) का दर्शन करके; **त्रिमठ**—त्रिमठ; **आइला**—पहुँचे; **ताहाँ**—वहाँ; **देखि'**—दर्शन किया; **त्रिविक्रम**—भगवान् विष्णु के त्रिविक्रम रूप का।

अनुवाद

स्कन्द-क्षेत्र नामक तीर्थस्थल में श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्कन्द का मन्दिर देखा। वहाँ से वे त्रिमठ गये, जहाँ उन्होंने विष्णु के अर्चाविग्रह त्रिविक्रम का दर्शन किया।

पुनः सिद्धवट आइला सेइ विप्र-घरे ।
सेइ विप्र कृष्ण-नाम लय निरन्तरे ॥२२॥

पुनः सिद्धवट आइला सेइ विप्र-घरे ।
सेइ विप्र कृष्ण-नाम लय निरन्तरे ॥ २२ ॥

पुनः—पुनः; **सिद्ध-वट**—सिद्धवट; **आइला**—लौट आये; **सेइ**—उसी; **विप्र-घरे**—ब्राह्मण के घर में; **सेइ विप्र**—वह ब्राह्मण; **कृष्ण-नाम**—भगवान् कृष्ण का पावन नाम; **लय**—जपता है; **निरन्तरे**—निरन्तर।

अनुवाद

त्रिविक्रम मन्दिर का दर्शन करने के बाद महाप्रभु सिद्धवट लौट आये, जहाँ वे पुनः उसी ब्राह्मण के घर गये, जो अब निरन्तर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करता था।

भिक्षा करि' महाप्रभु ताँरे प्रश्न कैल ।
"कह विप्र, एइ तोमार कोन्दशा हैल ॥२३॥

भिक्षा करि' महाप्रभु ताँरे प्रश्न कैल ।
"कह विप्र, एइ तोमार कोन्दशा हैल ॥ २३ ॥

भिक्षा करि'—भोजन करने के बाद; **महाप्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **ताँरे**—उसको; **प्रश्न कैल**—प्रश्न पूछा; **कह विप्र**—मेरे ब्राह्मण मित्र, कहो; **एइ**—यह; **तोमार**—तुम्हारी; **कोन्**—क्या; **दशा**—दशा; **हैल**—हो गई।

अनुवाद

भोजन करने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस ब्राह्मण से पूछा, "हे मित्रवर, मुझसे अपनी वर्तमान स्थिति के विषय में बतलाओ।

পূর্বে তুমি নিরন্তর লৈতে রাম-নাম ।
এবে কেনে নিরন্তর লও কৃষ্ণ-নাম'' ॥২৪॥

पूर्वे तुमि निरन्तर लैते राम-नाम ।
एबे केने निरन्तर लओ कृष्ण-नाम" ॥ २४॥

पूर्वे—इससे पूर्व; **तुमि**—तुम; **निरन्तर**—निरन्तर; **लैते**—जपा करते थे; **राम-नाम**—भगवान् रामचन्द्र का पावन नाम; **एबे**—अब; **केने**—क्यों; **निरन्तर**—निरन्तर; **लओ**—जपते हो; **कृष्ण-नाम**—कृष्ण का पावन नाम।

अनुवाद

"पहले तो तुम भगवान् राम के पवित्र नाम का निरन्तर जप करते थे। तुम अब कृष्ण-नाम का निरन्तर जप क्यों करते हो?"

বিপ্র বলে,—এই তোমার দর্শন-প্রভাবে ।
তোমা দেখি' গেল মোর আজন্ম স্বভাবে ॥২৫॥

विप्र बले,—एइ तोमार दर्शन-प्रभावे ।
तोमा देखि' गेल मोर आजन्म स्वभावे ॥ २५॥

विप्र बले—ब्राह्मण ने उत्तर दिया; **एइ**—यह; **तोमार दर्शन-प्रभावे**—आपके दर्शन के प्रभाव से; **तोमा देखि'**—आपको देखकर; **गेल**—चला गया; **मोर**—मेरा; **आ-जन्म**—जीवनभर का; **स्वभावे**—स्वभाव।

अनुवाद

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "हे महाशय, यह आपके प्रभाव से है। आपका दर्शन करने के बाद मैंने अपने जीवन-भर के उस अभ्यास को छोड़ दिया।

বাল্যাবধি রাম-নাম-গ্রহণ আমার ।
তোমা দেখি' কৃষ্ণ-নাম আইল এক-বার ॥২৬॥

बाल्यावधि राम-नाम-ग्रहण आमार ।
तोमा देखि' कृष्ण-नाम आइल एक-बार ॥ २६॥

बाल्य-अवधि—बचपन से; **राम-नाम-ग्रहण**—भगवान् रामचन्द्र का पावन नाम जपना; **आमार**—मेरा; **तोमा देखि'**—आपको देखकर; **कृष्ण-नाम**—कृष्ण का पावन नाम; **आइल**—आया; **एक-बार**—मात्र एक बार।

अनुवाद

"मैं अपने बचपन से भगवान् रामचन्द्र के नाम का कीर्तन करता रहा हूँ, किन्तु आपको देखने के बाद मैंने एक बार भगवान् कृष्ण के नाम का कीर्तन किया।

सेई हैते कृष्ण-नाम जिह्वाते वसिला ।
कृष्ण-नाम स्फुरे, राम-नाम दूरे गेला ॥२७॥
सेइ हैते कृष्ण-नाम जिह्वाते वसिला ।
कृष्ण-नाम स्फुरे, राम-नाम दूरे गेला ॥ २७॥

सेइ हैते—उस समय से लेकर; **कृष्ण-नाम**—भगवान् कृष्ण का पावन नाम; **जिह्वाते**—जिह्वा पर; **वसिला**—दृढ़तापूर्वक बैठ गया; **कृष्ण-नाम**—भगवान् कृष्ण का पावन नाम; **स्फुरे**—स्वतः आता है; **राम-नाम**—राम नाम; **दूरे**—दूर; **गेला**—चला गया।

अनुवाद

"तब से मेरी जिह्वा पर कृष्ण का पावन नाम ही बैठ गया है। क्योंकि अब मैं कृष्ण-नाम का कीर्तन करता हूँ, अतः भगवान् रामचन्द्र का नाम दूर भाग गया है।

बाल्य-काल हैते मोर स्वभाव एक हय ।
नामेर महिमा-शास्त्र करिये सञ्चय ॥२८॥
बाल्य-काल हैते मोर स्वभाव एक हय ।
नामेर महिमा-शास्त्र करिये सञ्चय ॥ २८॥

बाल्य-काल हैते—मेरे बचपन से; **मोर**—मेरा; **स्वभाव**—स्वभाव; **एक**—एक; **हय**—है; **नामेर**—पावन नाम के; **महिमा**—महिमा सम्बन्धी; **शास्त्र**—शास्त्र; **करिये सञ्चय**—मैं संचय करता हूँ।

अनुवाद

"मैं अपने बचपन से शास्त्रों से पवित्र नाम की महिमाओं का संग्रह करता रहा हूँ।

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति राम-पदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥२९॥

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति राम-पदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥ २९ ॥

रमन्ते—आनन्द लेते हैं; **योगिनः**—योगी जन; **अनन्ते**—अनन्त में; **सत्य-आनन्दे**—वास्तविक आनन्द; **चित्-आत्मनि**—आध्यात्मिक अस्तित्व में; **इति**—इस प्रकार; **राम**—राम; **पदेन**—शब्द से; **असौ**—वे; **परम्**—परम; **ब्रह्म**—ब्रह्म; **अभिधीयते**—कहलाते हैं।

अनुवाद

"'परम सत्य राम कहलाता है, क्योंकि अध्यात्मवादी आध्यात्मिक अस्तित्व के असीम यथार्थ सुख में आनन्द लेते हैं।"

तात्पर्य

यह *पद्म पुराण* में प्राप्त भगवान् रामचन्द्र के *शतनाम स्तोत्र* का आठवाँ श्लोक है।

कृषिर्भू-वाचकः शब्दो णश्च निर्वृति-वाचकः ।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्याभिधीयते ॥३०॥

कृषिर्भू-वाचकः शब्दो णश्च निर्वृति-वाचकः ।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥ ३० ॥

कृषिः—*कृष्* क्रियात्मक धातु; **भू**—आकर्षक अस्तित्व; **वाचकः**—दर्शाने वाला; **शब्दः**—शब्द; **णः**—*ण* अक्षर; **च**—और; **निर्वृति**—आध्यात्मिक आनन्द; **वाचकः**—दर्शाने वाला; **तयोः**—दोनों का; **ऐक्यम्**—मिलन; **परम्**—परम; **ब्रह्म**—परम सत्य; **कृष्णः**—भगवान् कृष्ण; **इति**—इस प्रकार; **अभिधीयते**—कहलाते हैं।

अनुवाद

"'*कृष्* शब्द भगवान् के अस्तित्व का आकर्षक स्वरूप है, और *ण* का अर्थ है आध्यात्मिक आनन्द। *कृष्* धातु *ण* प्रत्यय से मिलकर *कृष्ण* बनाती है, जिसका अर्थ है परम सत्य।'

तात्पर्य

यह श्लोक महाभारत के उद्योग पर्व (७१.४) से लिया गया है।

परं ब्रह्म दुइ-नाम समान हइल ।
पुनः आर शास्त्रे किछु विशेष पाइल ॥ ३१ ॥

परं ब्रह्म दुइ-नाम समान हइल ।
पुनः आर शास्त्रे किछु विशेष पाइल ॥ ३१ ॥

परम् ब्रह्म—परम ब्रह्म; **दुइ-नाम**—दो नाम (राम तथा कृष्ण); **समान**—समान स्तर पर; **हइल**—हैं; **पुनः**—पुनः; **आर**—आगे; **शास्त्रे**—प्रामाणिक शास्त्रों में; **किछु**—कुछ; **विशेष**—विशेष; **पाइल**—मिलता है।

अनुवाद

"जहाँ तक राम तथा कृष्ण के पवित्र नामों का सम्बन्ध है, वे एक समान हैं। किन्तु अधिक उन्नति के लिए हमें प्रामाणिक शास्त्रों से कुछ विशेष जानकारी प्राप्त होती है।

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्र-नामभिस्तुल्यं राम-नाम वरानने ॥ ३२ ॥

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
सहस्र-नामभिस्तुल्यं राम-नाम वरानने ॥ ३२ ॥

राम—राम; **राम**—राम; **इति**—इस प्रकार; **राम**—राम; **इति**—इस प्रकार; **रमे**—मैं आनन्द लेता हूँ; **रामे**—राम के पावन नाम में; **मनः-रमे**—अत्यन्त सुन्दर; **सहस्र-नामभिः**—एक हजार नामों के साथ; **तुल्यम्**—बराबर; **राम-नाम**—राम का पावन नाम; **वर-आनने**—हे सुन्दर मुखी।

अनुवाद

"[शिवजी ने अपनी पत्नी दुर्गा से कहा :]'हे वरानना, मैं राम, राम, राम के पवित्र नाम का कीर्तन करता हूँ, और इस सुन्दर ध्वनि का आनन्द लूटता हूँ। रामचन्द्र का यह पवित्र नाम भगवान् विष्णु के एक हजार नामों के बराबर है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *पद्म पुराण* के उत्तर खण्ड में आये *बृहद्विष्णु-सहस्रनाम स्तोत्र* (७२.३३५) से लिया गया है।

सहस्र-नाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत्फलम् ।
एकावृत्त्या तु कृष्णस्य नामैकं तत्प्रयच्छति ॥ ३३ ॥

सहस्र-नाम्नाम्—एक हजार नामों का; **पुण्यानाम्**—पुण्य; **त्रिः-आवृत्त्या**—तीन बार जपने से; **तु**—किन्तु; **यत्**—जो; **फलम्**—फल; **एक-आवृत्त्या**—एक बार जपने से; **तु**—किन्तु; **कृष्णस्य**—भगवान् कृष्ण का; **नाम**—पावन नाम; **एकम्**—मात्र एक; **तत्**—वह फल; **प्रयच्छति**—देता है।

अनुवाद

"'विष्णु के पवित्र सहस्र नामों को तीन बार उच्चारण करने से जो पुण्य मिलता है, वही कृष्ण के नाम का केवल एक बार उच्चारण करने से मिल जाता है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *ब्रह्माण्ड-पुराण* का है, जो रूप गोस्वामी कृत *लघु भागवतामृत* (१.५.३५४) में आया है। तीन बार राम-नाम लेने से जो फल मिलता है, वही एक बार कृष्ण-नाम लेने से प्राप्त हो जाता है।

एइ वाक्ये कृष्ण-नामेर महिमा अपार ।
तथापि लइते नारि, शुन हेतु तार ॥ ३४ ॥

एइ वाक्ये—इस कथन में; **कृष्ण-नामेर**—कृष्ण के पावन नाम की; **महिमा**—महिमा; **अपार**—अपार; **तथापि**—तथापि; **लइते**—जपना; **नारि**—मैं अक्षम हूँ; **शुन**—जरा सुनो; **हेतु**—कारण; **तार**—उसका।

अनुवाद

"शास्त्रों के कथनानुसार कृष्ण के पवित्र नाम की महिमा अपार है। फिर भी मैं उनका नाम नहीं ले पाया। कृपया आप इसका कारण सुनें।

ইষ্ট-দেব রাম, তাঁর নামে সুখ পাই ।
সুখ পাঞা রাম-নাম রাত্রি-দিন গাই ॥ ৩৫ ॥

ইষ্ট-দেব রাম, তাঁর নামে সুখ পাই ।
সুখ পাঞা রাম-নাম রাত্রি-দিন গাই ॥ ৩৫ ॥

ইষ্ট-দেব—मेरे पूज्य स्वामी; **রাম**—भगवान् श्री रामचन्द्र; **তাঁর নামে**—उनके पावन नाम में; **সুখ পাই**—मुझे सुख मिलता है; **সুখ পাঞা**—ऐसे दिव्य सुख को पाकर; **রাম-নাম**—भगवान् राम का पवित्र नाम; **রাত্রি-দিন**—दिन रात; **গাই**—मैं गाता हूँ।

अनुवाद

"मेरे आराध्य देव भगवान् रामचन्द्र रहे हैं, और उनके पवित्र नाम के कीर्तन से मैं सुख प्राप्त करता रहा हूँ। चूँकि मुझे इतना सुख प्राप्त हुआ, इसलिए मैं भगवान् राम के पवित्र नाम का कीर्तन दिन-रात करता रहा।

তোমার দর্শনে যবে কৃষ্ণ-নাম আইল ।
তাহার মহিমা তবে হৃদয়ে লাগিল ॥ ৩৬ ॥

তোমার দর্শনে যবে কৃষ্ণ-নাম আইল ।
তাহার মহিমা তবে হৃদয়ে লাগিল ॥ ৩৬ ॥

তোমার দর্শনে—आपके दर्शन से; **যবে**—जब; **কৃষ্ণ-নাম**—कृष्ण का पावन नाम; **আইল**—प्रकट हुआ; **তাহার**—उसकी; **মহিমা**—महिमा; **তবে**—उस समय; **হৃদয়ে**—हृदय में; **লাগিল**—स्थिर हो गई।

अनुवाद

"आपके आने से भगवान् कृष्ण का पवित्र नाम भी आया। तब मेरे हृदय में कृष्ण नाम की महिमा का उदय हुआ।

সেই কৃষ্ণ তুমি সাক্ষাৎ—ইহা নির্ধারিল ।
এত কহি' বিপ্র প্রভুর চরণে পড়িল ॥ ৩৭ ॥

সেই কৃষ্ণ তুমি সাক্ষাৎ—ইহা নির্ধারিল ।
এত কহি' বিপ্র প্রভুর চরণে পড়িল ॥ ৩৭ ॥

সেই—वे; **কৃষ্ণ**—कृष्ण भगवान्; **তুমি**—आप; **সাক্ষাৎ**—साक्षात्; **ইহা**—यह;

निर्धारिल—निश्चय; **एत कहि'**—यह कहकर; **विप्र**—ब्राह्मण; **प्रभुर**—चैतन्य महाप्रभु के; **चरणे**—चरणकमलों पर; **पड़िल**—गिर पड़ा।

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने कहा, "हे महाशय, आप वही भगवान् कृष्ण स्वयं हैं। यह मेरा दृढ़ मत है।" यह कहकर वह ब्राह्मण महाप्रभु के चरणों पर गिर पड़ा।

তাঁরে কৃপা করি' প্রভু চলিলা আর দিনে ।
বৃদ্ধকাশী আসি' কৈল শিব-দরশনে ॥৩৮॥

তাঁরে কৃপা করি' প্রভু চলিলা আর দিনে ।
বৃদ্ধকাশী আসি' কৈল শিব-দরশনে ॥ ৩৮ ॥

তাঁরে—उस पर; **कृपा करि'**—कृपा करके; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **चलिला**—चले गये; **आर दिने**—अगले दिन; **वृद्धकाशी**—वृद्धकाशी को; **आसि'**—आकर; **कैल**—किया; **शिव-दरशने**—शिव मन्दिर में दर्शन करने।

अनुवाद

उस ब्राह्मण पर कृपा करके श्री चैतन्य महाप्रभु ने अगले दिन प्रस्थान किया और वृद्धकाशी आये, जहाँ उन्होंने शिवजी के मन्दिर की मुलाकात ली।

तात्पर्य

वृद्धकाशी का वर्तमान नाम वृद्धाचलम है। यह मणिमुख नदी के किनारे पर दक्षिणी आर्काट जिले में स्थित है। यह स्थान कालहस्तिपुर भी कहलाता है। यहाँ के शिव-मन्दिर की पूजा रामानुजाचार्य के चचेरे भाई गोविन्द ने अनेक वर्षों तक की।

তাহাঁ হৈতে চলি' আগে গেলা এক গ্রামে ।
ব্রাহ্মণ-সমাজ তাহাঁ, করিল বিশ্রামে ॥৩৯॥

তাহাঁ হৈতে চলি' আগে গেলা এক গ্রামে ।
ব্রাহ্মণ-সমাজ তাহাঁ, করিল বিশ্রামে ॥ ৩৯ ॥

ताहाँ हैते—वहाँ से; **चलि'**—जाकर; **आगे**—आगे; **गेला**—गये; **एक**—एक; **ग्रामे**—गाँव को; **ब्राह्मण-समाज**—ब्राह्मण समाज; **ताहाँ**—वहाँ; **करिल विश्रामे**—उन्होंने विश्राम किया।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु वृद्धकाशी से रवाना होकर आगे बढ़ते रहे। उन्होंने एक गाँव में विश्राम किया और उन्होंने देखा कि वहाँ के अधिकांश निवासी ब्राह्मण थे।

प्रभुर प्रभावे लोक आइल दरशने ।
लक्षार्बुद लोक आइसे ना याय गणने ॥ ४० ॥

प्रभुर प्रभावे लोक आइल दरशने ।
लक्षार्बुद लोक आइसे ना याय गणने ॥ ४० ॥

प्रभुर—श्री चैतन्य महाप्रभु के; **प्रभावे**—प्रभाव से; **लोक**—लोग; **आइल**—आये; **दरशने**—उनके दर्शन के लिए; **लक्ष-अर्बुद**—कई लाख; **लोक**—लोग; **आइसे**—आये; **ना**—नहीं; **याय गणने**—गिने जा सकते।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव से करोड़ों लोग उनके दर्शन करने आये। इन लोगों की संख्या अनन्त थी, अतएव उनकी गिनती नहीं की जा सकती थी।

गोसाञिर सौन्दर्य देखि' ताते प्रेमावेश ।
सबे 'कृष्ण' कहे, 'वैष्णव' हैल सर्व-देश ॥ ४१ ॥

गोसाञिर सौन्दर्य देखि' ताते प्रेमावेश ।
सबे 'कृष्ण' कहे, 'वैष्णव' हैल सर्व-देश ॥ ४१ ॥

गोसाञिर—महाप्रभु का; **सौन्दर्य**—सौन्दर्य; **देखि'**—देखकर; **ताते**—उनमें; **प्रेम-आवेश**—प्रेमावेश; **सबे**—सब लोग; **कृष्ण कहे**—कृष्ण का पावन नाम बोल उठे; **वैष्णव**—वैष्णव भक्त; **हैल**—हो गये; **सर्व-देश**—सभी लोग।

अनुवाद

महाप्रभु का शरीर अत्यन्त सुन्दर था। साथ ही वे सदैव भगवान् के

प्रेमभाव से आविष्ट रहते थे। उनका दर्शन करने से ही सारे लोग कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करने लगे और प्रत्येक व्यक्ति वैष्णव भक्त बन गया।

तार्किक-मीमांसक, यत मायावादि-गण ।
साङ्ख्य, पातञ्जल, स्मृति, पुराण, आगम ॥ ४२॥

तार्किक-मीमांसक, यत मायावादि-गण ।
साङ्ख्य, पातञ्जल, स्मृति, पुराण, आगम ॥ ४२॥

तार्किक—दार्शनिक; **मीमांसक**—मीमांसा दर्शन के अनुयायी; **यत**—सभी; **मायावादि-गण**—शंकराचार्य के अनुयायी; **साङ्ख्य**—कपिल के अनुयायी; **पातञ्जल**—योग के अनुयायी; **स्मृति**—स्मृति, पूरक वैदिक साहित्य; **पुराण**—पुराण; **आगम**—तंत्र शास्त्र।

अनुवाद

दार्शनिक कई प्रकार के होते हैं। कुछ तार्किक होते हैं, जो गौतम या कणाद के अनुयायी होते हैं। कुछ जैमिनि के मीमांसा-दर्शन के अनुयायी होते हैं। कुछ शंकराचार्य के मायावाद-दर्शन के तथा कुछ कपिल के सांख्य-दर्शन या पतंजलि के योग-दर्शन के अनुयायी होते हैं। कुछ बीस शास्त्रों से युक्त स्मृति शास्त्र का पालन करते हैं, तथा अन्य लोग पुराण एवं तन्त्र शास्त्र का पालन करते हैं। इस तरह दार्शनिकों के विभिन्न प्रकार होते हैं।

निज-निज-शास्त्रोद्ग्राहे सबाइ प्रचण्ड ।
सर्व मत दुषि' प्रभु करे खण्ड खण्ड ॥ ४३॥

निज-निज-शास्त्रोद्ग्राहे सबाइ प्रचण्ड ।
सर्व मत दुषि' प्रभु करे खण्ड खण्ड ॥ ४३॥

निज-निज—अपना अपना; **शास्त्र**—शास्त्र; **उद्ग्राहे**—सिद्धान्त स्थापित करने के लिए; **सबाइ**—वे सब; **प्रचण्ड**—अत्यन्त शक्तिशाली; **सर्व**—सभी; **मत**—मत; **दुषि'**—दूषित करके, तिरस्कृत करके; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **करे**—करते हैं; **खण्ड खण्ड**—टुकड़े टुकड़े।

अनुवाद

ये विभिन्न शास्त्रों के अनुयायी अपने-अपने शास्त्रों के निष्कर्ष प्रस्तुत करने के लिए तैयार थे। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन सबके मतों का खण्डन किया और अपने भक्ति-सम्प्रदाय की स्थापना की, जो वेदों, वेदान्त, ब्रह्मसूत्र तथा अचिन्त्य भेदाभेद तत्त्व दर्शन पर आधारित था।

सर्वत्र स्थापय प्रभु वैष्णव-सिद्धान्ते ।
प्रभुर सिद्धान्त केह ना पारे खण्डिते ॥ ४४॥
सर्वत्र स्थापय प्रभु वैष्णव-सिद्धान्ते ।
प्रभुर सिद्धान्त केह ना पारे खण्डिते ॥ ४४॥

सर्वत्र—सर्वत्र; **स्थापय**—स्थापित करते हैं; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **वैष्णव-सिद्धान्ते**—वैष्णव सिद्धान्त; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **सिद्धान्त**—सिद्धान्त; **केह**—कोई भी; **ना पारे**—समर्थ नहीं है; **खण्डिते**—खण्डित करने के लिए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सर्वत्र भक्ति-सम्प्रदाय की स्थापना की। उन्हें कोई परास्त नहीं कर पाया।

हारि' हारि' प्रभु-मते करेन प्रवेश ।
एइ-मते 'वैष्णव' प्रभु कैल दक्षिण देश ॥ ४५॥
हारि' हारि' प्रभु-मते करेन प्रवेश ।
एइ-मते 'वैष्णव' प्रभु कैल दक्षिण देश ॥ ४५॥

हारि' हारि'—परास्त होकर; **प्रभु-मते**—श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय में; **करेन प्रवेश**—प्रवेश करते हैं; **एइ-मते**—इस प्रकार; **वैष्णव**—वैष्णव भक्त; **प्रभु**—चैतन्य महाप्रभु ने; **कैल**—किया; **दक्षिण**—दक्षिण भारत; **देश**—देश।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के द्वारा पराजित होकर ये सारे दार्शनिक तथा इनके अनुयायी महाप्रभु के सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गये। इस तरह भगवान् चैतन्य ने दक्षिण भारत को वैष्णवों का देश बना दिया।

पाषण्डी आइल यत पाण्डित्य शुनिया ।
गर्व करि' आइल सङ्गे शिष्य-गण लञा ॥ ४६ ॥

पाषण्डी आइल यत पाण्डित्य शुनिया ।
गर्व करि' आइल सङ्गे शिष्य-गण लञा ॥ ४६ ॥

पाषण्डी—नास्तिक; **आइल**—वहाँ आये; **यत**—सब; **पाण्डित्य**—ज्ञान; **शुनिया**—सुनकर; **गर्व करि'**—अत्यन्त गर्व सहित; **आइल**—वहाँ आये; **सङ्गे**—के साथ; **शिष्य-गण**—शिष्य गण; **लञा**—लेकर।

अनुवाद

जब पाखंडियों ने महाप्रभु के पाण्डित्य के बारे में सुना, तो वे अपने-अपने शिष्यों को लेकर बड़े गर्व के साथ उनके पास आये।

बौद्धाचार्य महा-पण्डित निज नव-मते ।
प्रभुर आगे उद्ग्राह करि' लागिला बलिते ॥ ४७ ॥

बौद्धाचार्य्य महा-पण्डित निज नव-मते ।
प्रभुर आगे उद्ग्राह करि' लागिला बलिते ॥ ४७ ॥

बौद्ध-आचार्य्य—बौद्ध दर्शन का प्रमुख; **महा-पण्डित**—महान् पण्डित; **निज**—अपने; **नव**—नौ; **मते**—दार्शनिक सिद्धान्त; **प्रभुर आगे**—चैतन्य महाप्रभु के सामने; **उद्ग्राह**—तर्क; **करि'**—करके; **लागिला**—लगा; **बलिते**—बोलने।

अनुवाद

उनमें से एक बौद्ध-सम्प्रदाय का मुखिया था और बहुत बड़ा पंडित था। वह बौद्धवाद के नौ दार्शनिक निष्कर्षों की स्थापना करने के उद्देश्य से महाप्रभु के समक्ष आया और इस प्रकार बोलने लगा।

यद्यपि असम्भाष्य बौद्ध अयुक्त देखिते ।
तथापि बलिला प्रभु गर्व खण्डाइते ॥ ४८ ॥

यद्यपि असम्भाष्य बौद्ध अयुक्त देखिते ।
तथापि बलिला प्रभु गर्व खण्डाइते ॥ ४८ ॥

यद्यपि—यद्यपि; **असम्भाष्य**—चर्चा के अयोग्य; **बौद्ध**—बौद्ध दर्शन के अनुयायी; **अयुक्त**—अयोग्य; **देखिते**—देखने के लिए; **तथापि**—तथापि; **बलिला**—बोले; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **गर्व**—गर्व; **खण्डाइते**—कम करने के लिए।

अनुवाद

यद्यपि बौद्धजन विवाद करने के लिए अनुपयुक्त होते हैं और वैष्णवों को चाहिए कि उनका दर्शन न करें, किन्तु उनके मिथ्या अहंकार को कम करने के उद्देश्य से ही चैतन्य महाप्रभु उनसे बोले।

तर्क-प्रधान बौद्ध-शास्त्र 'नव मते' ।
तर्केइ खण्डिल प्रभु, ना पारे स्थापिते ॥४९॥

तर्क-प्रधान बौद्ध-शास्त्र 'नव मते' ।
तर्केइ खण्डिल प्रभु, ना पारे स्थापिते ॥ ४९ ॥

तर्क-प्रधान—तर्क से भरपूर; **बौद्ध-शास्त्र**—बौद्ध शास्त्र; **नव मते**—नौ मूल सिद्धान्तों में; **तर्केइ**—तर्क से; **खण्डिल**—खण्डित किया; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **ना**—नहीं; **पारे**—सका; **स्थापिते**—स्थापित करना।

अनुवाद

बौद्ध सम्प्रदाय के सारे शास्त्र मुख्यतः तर्क पर आश्रित हैं और उनमें नौ सिद्धान्त प्रमुख हैं। चूँकि श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें उनके तर्क में परास्त कर दिया, अतएव वे अपना मत स्थापित नहीं कर पाये।

तात्पर्य

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कहते हैं कि बौद्ध सम्प्रदाय के अनुसार दर्शन को समझने के दो मार्ग हैं—*हीनायान* तथा *महायान*। बौद्ध मार्ग के नौ सिद्धान्त हैं : (१) सृष्टि नित्य है, अतएव स्रष्टा को मानने की आवश्यकता नहीं है। (२) विराट् जगत् मिथ्या है। (३) "मैं हूँ" सत्य है। (४) जन्म तथा मृत्यु का चक्र चलता है। (५) भगवान् बुद्ध ही सत्य जानने के एकमात्र स्रोत हैं। (६) *निर्वाण* अर्थात् विनाश का सिद्धान्त ही चरम लक्ष्य है। (७) बुद्ध का दर्शन ही एकमात्र दार्शनिक मार्ग है। (८) वेदों की रचना मनुष्यों ने की है। (९) अन्यों पर दया करने जैसे पुण्यकर्म करने चाहिए।

तर्क द्वारा परम सत्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। कोई तर्क में कितना ही दक्ष क्यों न हो, अन्य व्यक्ति तर्ककला में उससे भी अधिक दक्ष हो सकता है। चूँकि तर्कशास्त्र में शब्दाडम्बर अधिक है, अतएव तर्क द्वारा परम सत्य विषयक किसी वास्तविक निर्णय पर नहीं पहुँचा जा सकता। वैदिक सिद्धान्तों के अनुयायी इसे समझते हैं। किन्तु यहाँ कहा गया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने तर्क द्वारा बौद्ध दर्शन को परास्त किया। इस्कान के प्रचारकों को ऐसे लोगों से निश्चय ही सामना करना पड़ेगा, जो बुद्धिगम्य तर्क में विश्वास करते हैं। इनमें से अधिकांश लोग वेदों के प्रमाण पर विश्वास नहीं करते। फिर भी वे बौद्धिक चिन्तन तथा तर्क में विश्वास करते हैं। अतएव कृष्णभावनामृत के प्रचारकों को तर्क द्वारा अन्यों को परास्त करने के लिए तैयार रहना चाहिए, जिस तरह चैतन्य महाप्रभु ने किया। इस श्लोक में स्पष्ट कहा गया है—*तर्केइ खण्डिल प्रभु।* श्री चैतन्य महाप्रभु ने ऐसे सशक्त तर्क प्रस्तुत किये कि बौद्ध लोग अपना मत स्थापित करने के लिए उन्हें काट नहीं पाये।

उनका पहला सिद्धान्त यह है कि यह सृष्टि सनातन है। किन्तु यदि ऐसा होता, तो फिर प्रलय का सिद्धान्त ही न रहता। बौद्धों का मत है कि प्रलय सर्वोच्च सत्य है। यदि सृष्टि सनातन हो, तो फिर प्रलय का प्रश्न ही नहीं उठता। यह तर्क सशक्त नहीं है, क्योंकि व्यावहारिक अनुभव से हम देखते हैं कि भौतिक वस्तुओं का प्रारम्भ, मध्य और अन्त होता है। बौद्ध दर्शन का चरम लक्ष्य शरीर का विलय करना है। ऐसा प्रस्ताव इसलिए रखा जाता है, क्योंकि शरीर को प्रारम्भ होता है। इसी तरह समग्र जगत् भी एक विराट् शरीर है, किन्तु यदि हम यह मान लें कि यह जगत् सनातन है, तो फिर विलय का प्रश्न ही नहीं उठता। अतएव शून्य प्राप्त करने के लिए प्रत्येक वस्तु के विलय की कल्पना बकवास है। हमें अपने व्यावहारिक अनुभव से सृष्टि का प्रारम्भ स्वीकार करना होता है, और जब हम उसके प्रारम्भ को स्वीकार करते हैं, तो हमें उसके स्रष्टा का भी स्वीकार करना होता है। ऐसे स्रष्टा का शरीर सर्वव्यापी होना चाहिए, जैसाकि *भगवद्गीता* (१३.१४) में बतलाया गया है :

सर्वतः पाणि पादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

"उनके हाथ, पाँव, आँखें, सिर और मुख सर्वत्र हैं और वे कानों से हर बात सुनते हैं। इस तरह परमात्मा का अस्तित्व सर्वव्यापी है।"

परम पुरुष सर्वत्र विद्यमान हैं। उनका शरीर सृष्टि के पहले से था, अन्यथा वे स्रष्टा कैसे हो सकते हैं? यदि परम पुरुष उत्पन्न किये गये व्यक्ति होते, तो उनके लिए स्रष्टा बनने का प्रश्न ही नहीं उठता। निष्कर्ष यह निकलता है कि इस विराट् जगत् की सृष्टि किसी निश्चित समय में होती है, और इसका स्रष्टा सृष्टि के पहले से विद्यमान था। अतएव स्रष्टा सृष्ट व्यक्ति नहीं है। स्रष्टा, परम ब्रह्म या परमात्मा है। पदार्थ केवल आत्मा के अधीन ही नहीं, अपितु वस्तुत: आत्मा के आधार पर उत्पन्न किया जाता है। जब आत्मा माता के गर्भ में प्रवेश करता है, तब माता उन सारे अवयवों को प्रदान करती है, जिनसे शरीर उत्पन्न होता है। भौतिक जगत् में हर एक वस्तु का सृजन होता है; अत: कोई स्रष्टा होना ही चाहिए। ये स्रष्टा परमात्मा हैं और पदार्थ से भिन्न हैं। *भगवद्गीता* में पुष्टि की गई है कि भौतिक शक्ति निकृष्ट है और आध्यात्मिक शक्ति जीव है। निकृष्ट तथा उत्कृष्ट (परा तथा अपरा) दोनों शक्तियाँ परम पुरुष की शक्तियाँ हैं।

बौद्धों का तर्क है कि यह जगत् मिथ्या है, किन्तु यह ठीक नहीं है। यह जगत् नश्वर है, लेकिन मिथ्या नहीं है। जब तक यह शरीर है, तब तक सुख तथा दु:ख लगे रहेंगे, भले ही हम शरीर न हों। इन सुखों तथा दु:खों को हम गम्भीरता से न भी लें, तो भी ये वास्तविक हैं। हम वास्तव में यह नहीं कह सकते कि ये मिथ्या हैं। यदि शारीरिक सुख तथा दु:ख मिथ्या होते, तो सृष्टि भी मिथ्या होती और तब कोई भी इसके प्रति अधिक रुचि नहीं लेता। निष्कर्ष यह निकलता है कि भौतिक सृष्टि न तो मिथ्या है न काल्पनिक। हाँ, यह नश्वर अवश्य है।

बौद्धों का यह मत है कि, "मैं हूँ" यह आखरी सत्य है, किन्तु इसमें व्यक्तिगत 'मैं' या 'तुम' सम्मिलित नहीं है। यदि "मैं" या "तुम" या निजि आस्तित्व न रहे, तो फिर तर्क की कोई सम्भावना नहीं रह जाती। बौद्ध-दर्शन तर्क पर आश्रित है, किन्तु यदि कोई "मैं हूँ" पर ही आश्रित रहे, तो फिर तर्क नहीं हो सकता। इसके लिए अन्य व्यक्ति अर्थात् 'तुम' भी होना चाहिए। आत्मा

तथा परमात्मा का अस्तित्व—अर्थात् द्वैत-दर्शन तो होना ही चाहिए। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (२.१२) द्वारा होती है, जहाँ भगवान् कहते हैं :

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्॥

"ऐसा कोई समय न था जब मैं या तुम, या ये सारे राजा नहीं थे; न ही भविष्य में ऐसा समय आयेगा जब हममें से कोई नहीं रहेगा।"

भूतकाल में हम विभिन्न शरीरों में विद्यमान थे, और इस शरीर के विनाश के बाद हम अन्य शरीर में विद्यमान रहेंगे। आत्मा सनातन है और वह इस शरीर में या अन्य शरीर में विद्यमान रहता है। यहाँ तक कि इसी जीवन-काल में हम बालक, युवक, मनुष्य तथा वृद्ध के शरीर में अपने अस्तित्व का अनुभव करते हैं। इस शरीर के विनाश के बाद हम दूसरा शरीर प्राप्त करते हैं। बौद्ध सम्प्रदाय भी देहान्तर के सिद्धान्त का स्वीकार करता है, लेकिन वह अगले जन्म की ठीक से व्याख्या नहीं करता। जीवन की ८४,००,००० योनियाँ हैं और अगले जन्म में हमें इनमें से कोई भी एक योनि प्राप्त हो सकती है। अतएव यह मनुष्य शरीर मिलने की कोई गारंटी नहीं है।

बौद्धों के पाँचवें सिद्धान्त के अनुसार भगवान् बुद्ध ही ज्ञान प्राप्ति के एकमात्र उद्गम हैं। हम इसे स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि भगवान् बुद्ध ने वैदिक ज्ञान का बहिष्कार किया। मनुष्य को आदर्श ज्ञान के सिद्धान्त को स्वीकार करना होगा, क्योंकि केवल बुद्धिगम्य तर्कवितर्क से परम सत्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता। यदि हर व्यक्ति प्रमाण (अधिकारी) बन जाए या अपनी ही बुद्धि को चरम कसौटी मान ले, जैसाकि आजकल फैशन है, तो शास्त्रों की व्याख्या कई विविध प्रकारों से की जायेगी और हर व्यक्ति अपने दर्शन का सर्वश्रेष्ठ होने का दावा करेगा। यह एक बहुत बड़ी समस्या बन गई है, और हर व्यक्ति मनमाने ढंग से शास्त्रों की व्याख्या करके अपना खुद का प्रमाण खड़ा कर रहा है। *यत मत तत पथ।* अब हर व्यक्ति अपने सिद्धान्त को ही परम सत्य घोषित करने का प्रयास कर रहा है। बौद्धों का सिद्धान्त है कि *निर्वाण* या प्रलय ही चरम लक्ष्य है। निर्वाण शरीर पर लागू होता है। लेकिन आत्मा तो एक शरीर से दूसरे शरीर में चला जाता है। यदि ऐसा न होता, तो

फिर इतने प्रकार के शरीरों का अस्तित्व कैसे होता? यदि अगला जन्म तथ्य है, तो अगला शारीरिक रूप भी तथ्य है। ज्योंही हमें भौतिक शरीर मिलता है, त्योंही हमें इस तथ्य स्वीकार कर लेना चाहिए कि यह शरीर नष्ट हो जायेगा, और हमें दूसरा शरीर धारण करना होगा। यदि सारे भौतिक शरीरों का विनाश होना ही है और यदि हम अगले जन्म को मिथ्या नहीं मानते, तो हमें अभौतिक अर्थात् आध्यात्मिक शरीर को प्राप्त करना होगा। किन्तु आध्यात्मिक शरीर कैसे प्राप्त होता है, इसकी व्याख्या *भगवद्गीता* (४.९) में भगवान् कृष्ण द्वारा हुई है :

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

"जो व्यक्ति मेरे प्राकट्य एवं मेरे कार्यकलापों की दिव्य प्रकृति को जानता है, वह अपना शरीर त्यागने के बाद इस भौतिक जगत् में फिर से जन्म नहीं लेता, अपितु हे अर्जुन, मेरे सनातन धाम को प्राप्त करता है।"

यही चरम सिद्धि है—अपने भौतिक शरीर को त्यागना और दूसरा भौतिक शरीर धारण न करना, लेकिन भगवान् के धाम को वापस जाना। ऐसा नहीं है कि सिद्धावस्था में मनुष्य का अस्तित्व शून्य हो जायेगा। अस्तित्व तो बना ही रहता है, लेकिन यदि हम शरीर को विनष्ट करना ही चाहते हैं, तो हमें आध्यात्मिक शरीर स्वीकार करना पड़ेगा, अन्यथा आत्मा की शाश्वतता नहीं बनी रहती।

हम यह मत नहीं मानते कि बौद्ध दर्शन ही एकमात्र मार्ग है, क्योंकि इस दर्शन में अनेक दोष हैं। पूर्ण दर्शन तो वह होता है, जिसमें कोई दोष न हो और ऐसा दर्शन वेदान्त दर्शन है। वेदान्त दर्शन में कोई दोष लक्षित नहीं होता। अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सत्य को जानने का सर्वोपरि दार्शनिक मार्ग वेदान्त है। बौद्ध सम्प्रदाय के अनुसार वेदों की रचना सामान्य मनुष्यों द्वारा हुई है। यदि ऐसा होता, तो वे प्रामाणिक न स्वीकार किये जाते। वैदिक साहित्य से हमें पता चलता है कि सृष्टि के तुरन्त बाद ब्रह्माजी को वेदों की शिक्षा दी गई। यद्यपि ब्रह्माजी इस ब्रह्माण्ड के प्रथम पुरुष हैं, फिर भी ब्रह्मा ने वेदों का सृजन नहीं किया। यदि ब्रह्मा, जिन्हें प्रथम उत्पन्न जीव माना जाता है, उन्होंने

वेदों की सृष्टि नहीं की, तो ब्रह्मा को यह वैदिक ज्ञान कहाँ से मिला? स्पष्ट है कि वेद इस भौतिक जगत् में उत्पन्न सामान्य व्यक्ति से नहीं आये। *श्रीमद्भागवत* के अनुसार—*तेने ब्रह्म हृदा य आदि कवये*—सृष्टि करने के बाद परम पुरुष ने ब्रह्मा के हृदय के भीतर वैदिक ज्ञान प्रदान किया। सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई व्यक्ति नहीं था, फिर भी उन्होंने वेदों की रचना नहीं की। अत: निष्कर्ष यह निकलता है कि वेदों की रचना किसी सृजित प्राणी ने नहीं की। वैदिक ज्ञान उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से प्राप्त हुआ, जिन्होंने इस भौतिक जगत् की रचना की। इसे शंकराचार्य ने भी स्वीकार किया है, यद्यपि वे वैष्णव नहीं थे।

यह कहा जाता है कि बौद्धों का एक गुण दया है, किन्तु दया सापेक्ष वस्तु है। हम दया उस पर करते हैं, जो हमारे अधीन होता है या हमसे अधिक कष्ट भोग रहा होता है। किन्तु यदि हमसे कोई श्रेष्ठ व्यक्ति उपस्थित हो, तो वह हमारी दया का पात्र नहीं बन सकता। उल्टे हम उस श्रेष्ठ व्यक्ति की दया के पात्र बन जाते हैं। अतएव दया तथा कृपा दिखलाना सापेक्ष कार्य है। यह परम सत्य नहीं है। इसके अतिरिक्त हमें यह भी जानना चाहिए कि दया वास्तव में क्या है। किसी रोगी को खाने के लिए कुपथ्य भोजन देना दया नहीं है, बल्कि क्रूरता है। यह जाने बिना कि वास्तव में दया है क्या, हम अवांछित स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं। यदि हम असली दया दिखलाना चाहते हैं, तो हमें कृष्णभावनामृत का प्रचार करना चाहिए, जिससे मनुष्यों को खोई चेतना प्राप्त हो सके जो जीव की मूल चेतना है। चूँकि बौद्ध दर्शन आत्मा के अस्तित्व को नहीं मानता, अतएव बौद्धों की तथाकथित दया दोषपूर्ण है।

बौद्धाचार्य 'नव प्रश्न' सब उठाइल ।
दृढ़ युक्ति-तर्के प्रभु खण्ड खण्ड कैल ॥५०॥

बौद्धाचार्य 'नव प्रश्न' सब उठाइल ।
दृढ़ युक्ति-तर्के प्रभु खण्ड खण्ड कैल ॥५०॥

बौद्ध-आचार्य—बौद्ध सम्प्रदाय के शिक्षक; **नव प्रश्न**—नौ प्रकार के प्रश्न; **सब**—सब;

उठाइल—उठाए; **दृढ़**—प्रबल; **युक्ति**—तर्क; **तर्के**—न्याय सहित; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **खण्ड खण्ड कैल**—टुकड़े टुकड़े कर दिये।

अनुवाद

बौद्ध-सम्प्रदाय के प्रचारक ने नौ सिद्धान्त प्रस्तुत किये, लेकिन श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने प्रबल तर्क से उन्हें खण्ड-खण्ड कर डाले।

दार्शनिक पण्डित सबाइ पाइल पराजय ।
लोके हास्य करे, बौद्ध पाइल लज्जा-भय ॥५१॥

दार्शनिक पण्डित सबाइ पाइल पराजय ।
लोके हास्य करे, बौद्ध पाइल लज्जा-भय ॥५१॥

दार्शनिक—दार्शनिक; **पण्डित**—पण्डित; **सबाइ**—वे सब; **पाइल पराजय**—पराजित हुए; **लोके**—सामान्य लोग; **हास्य करे**—हँसने लगे; **बौद्ध**—बौद्ध लोगों को; **पाइल**—मिला; **लज्जा**—लज्जा; **भय**—भय।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे बौद्धिक चिन्तकों तथा पण्डितों को हरा दिया, और बौद्ध दार्शनिकों पर जब लोग हँसने लगे, तो उन्हें लज्जा तथा भय दोनों का अनुभव हुआ।

तात्पर्य

ये सभी दार्शनिक नास्तिक थे, क्योंकि वे ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करते थे। नास्तिक मानसिक तर्कवितर्क में कितने ही दक्ष क्यों न हों और भले ही तथाकथित महान् दार्शनिक हों, किन्तु वे दृढ़ श्रद्धा तथा भगवत् चेतना में स्थित वैष्णव द्वारा पराजित किये जा सकते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए इस्कान की सेवा में लगे सारे प्रचारकों को सशक्त तर्क प्रस्तुत करने और सभी तरह के नास्तिकों को पराजित करने में दक्ष होना चाहिए।

प्रभुके वैष्णव जानि' बौद्ध घरे गेल ।
सकल बौद्ध मिलि' तबे कुमन्त्रणा कैल ॥५२॥

प्रभुके वैष्णव जानि' बौद्ध घरे गेल ।
सकल बौद्ध मिलि' तबे कुमन्त्रणा कैल ॥५२॥

प्रभुके—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **वैष्णव जानि'**—वैष्णव जानकर; **बौद्ध**—बौद्ध लोग; **घरे गेल**—घर लौट गये; **सकल बौद्ध**—सभी बौद्ध लोग; **मिलि'**—मिलकर; **तबे**—तत्पश्चात्; **कु-मन्त्रणा**—षड्यंत्र; **कैल**—रचा।

अनुवाद

बौद्ध लोग जान गये कि श्री चैतन्य महाप्रभु वैष्णव हैं, अतएव वे दुःखी मन से अपने-अपने घर वापस गये। किन्तु बाद में उन लोगों ने महाप्रभु के विरुद्ध षडयन्त्र रचना शुरू कर दिया।

অপবিত্র অন্ন এক থালিতে ভরিয়া ।
প্রভু-আগে নিল 'মহা-প্রসাদ' বলিয়া ॥৫৩॥

अपवित्र अन्न एक थालिते भरिया ।
प्रभु-आगे निल 'महा-प्रसाद' बलिया ॥५३॥

अपवित्र—अशुद्ध; **अन्न**—भोजन; **एक**—एक; **थालिते**—थाली में; **भरिया**—भरकर; **प्रभु-आगे**—श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष; **निल**—लाये; **महा-प्रसाद बलिया**—इसे महाप्रसाद कहकर।

अनुवाद

षडयन्त्र रचने के बाद वे बौद्धजन अपवित्र भोजन की थाली श्री चैतन्य महाप्रभु के समक्ष ले आये, और कहा कि यह महाप्रसाद है।

तात्पर्य

अपवित्र अन्न ऐसा भोजन है, जिसे एक वैष्णव स्वीकार नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में, किसी अवैष्णव द्वारा महाप्रसाद के नाम पर दिया गया भोजन वैष्णव को ग्राह्य नहीं होता। समस्त वैष्णवों को यही सिद्धान्त मानना चाहिए। जब चैतन्य महाप्रभु से पूछा गया कि, "वैष्णव का आचरण क्या है?" तो उन्होंने उत्तर दिया, "वैष्णव को चाहिए कि अवैष्णव (*असत्*) की संगति से बचे।" *असत्* शब्द अवैष्णव का सूचक है। *असत्-सङ्ग-त्याग,—एइ वैष्णव-आचार* (*चैतन्य-चरितामृत, मध्य* २२.८७)। इस मामले में वैष्णव को कट्टर

होना चाहिए और अवैष्णव के साथ सहयोग नहीं करना चाहिए। यदि कोई अवैष्णव महाप्रसाद कहकर भोजन दे, तो उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए। ऐसा भोजन *प्रसाद* नहीं हो सकता, क्योंकि अवैष्णव भगवान् को कुछ भी अर्पित नहीं कर सकता। कभी-कभी कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचारकों को ऐसे घर में भोजन स्वीकार करना पड़ता है, जिसका स्वामी अवैष्णव होता है। किन्तु यदि इस भोजन को अर्चाविग्रह को अर्पित कर दिया जाए, तो इसे खाया जा सकता है। वैष्णव को अवैष्णव द्वारा पकाया सामान्य भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए। यदि अवैष्णव बिना दोष के भी भोजन पकाये, तो वह उसे भगवान् विष्णु को अर्पित नहीं कर सकता, और न उसे *महाप्रसाद* के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। *भगवद्गीता* (९.२६) के अनुसार भगवान् कृष्ण कहते हैं :

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतं अश्नामि प्रयतात्मनः ॥

"यदि कोई भक्ति तथा प्रेमपूर्वक मुझे एक पत्ती, एक फूल, फल या जल अर्पित करता है, तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ।"

कृष्ण अपने भक्त द्वारा भक्तिपूर्वक अर्पित की गई कोई भी वस्तु स्वीकार कर सकते हैं। अवैष्णव शाकाहारी तथा अत्यन्त शुद्ध रसोइया हो सकता है, फिर भी वह भगवान् विष्णु को भोजन अर्पित नहीं कर सकता। अतएव उसके पकाये भोजन को महाप्रसाद के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता। अच्छा यही होगा कि वैष्णव ऐसे भोजन को अस्पृश्य समझकर त्याग दे।

হেন-কালে মহা-কায় এক পক্ষী আইল ।
ঠোঁটে করি' অন্ন-সহ থালি লঞা গেল ॥৫৪॥

हेन-काले महा-काय एक पक्षी आइल ।
ठोंटे करि' अन्न-सह थालि लञा गेल ॥५४॥

हेन-काले—इस समय; **महा-काय**—विशाल; **एक**—एक; **पक्षी**—पक्षी; **आइल**—प्रकट हुआ; **ठोंटे करि'**—चोंच से; **अन्न-सह**—अन्न के साथ; **थालि**—थाली; **लञा**—लेकर; **गेल**—चला गया।

अनुवाद

जब यह दूषित भोजन श्री चैतन्य महाप्रभु को लाकर दिया गया, तब एक बड़ा-सा पक्षी उस स্থান में प्रकट हुआ, और थाली को अपनी चोंच में दबा ली और उसे लेकर उड़ गया।

বৌদ্ধ-গণের উপরে অন্ন পড়ে অমেধ্য হৈয়া ।
বৌদ্ধাচার্যের মাথায় থালি পড়িল বাজিয়া ॥৫৫॥

बौद्ध-गणेर उपरे अन्न पड़े अमेध्य हैया ।
बौद्धाचार्य्येर माथाय थालि पड़िल बाजिया ॥५५॥

बौद्ध-गणेर—सभी बौद्ध लोगों के; **उपरे**—उपर; **अन्न**—अन्न; **पड़े**—गिरने लगा; **अमेध्य**—अछूत; **हैया**—होकर; **बौद्ध-आचार्य्येर**—बौद्ध प्रमुख के; **माथाय**—सिर पर; **थालि**—थाली; **पड़िल**—गिर गई; **बाजिया**—ऊँची आवाज करके।

अनुवाद

वह अछूत भोजन उन बौद्धों के ऊपर गिर पड़ा और उस बड़े पक्षी ने वह थाली उस प्रमुख बौद्धाचार्य के सिर के ऊपर गिरा दी। जब वह उसके सिर पर गिरी, तो बड़े जोर की आवाज हुई।

তেরছে পড়িল থালি,—মাথা কাটি' গেল ।
মূর্চ্ছিত হঞা আচার্য ভূমিতে পড়িল ॥৫৬॥

तेरछे पड़िल थालि,—माथा काटि' गेल ।
मूर्च्छित हञा आचार्य्य भूमिते पड़िल ॥५६॥

तेरछे—तिरछी होकर; **पड़िल**—गिरी; **थालि**—थाली; **माथा**—सिर; **काटि'**—कट; **गेल**—गया; **मूर्च्छित**—मूर्च्छित; **हञा**—होकर; **आचार्य्य**—प्रमुख; **भूमिते**—पृथ्वी पर; **पड़िल**—गिर गया।

अनुवाद

थाली धातु की बनी थी, अतएव जब उसकी धार उस आचार्य के सिर पर लगी, तो घाव हो गया। फलतः वह आचार्य तुरन्त बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ा।

হাহাকার করি' কান্দে সব শিষ্য-গণ ।
সবে আসি' প্রভু-পদে লইল শরণ ॥৫৭॥

हाहाकार करि' कान्दे सब शिष्य-गण ।
सबे आसि' प्रभु-पदे लइल शरण ॥५७॥

हाहा-कार—गर्जने की ध्वनि; **करि'**—करके; **कान्दे**—रोने लगे; **सब**—सब; **शिष्य-गण**—शिष्य; **सबे**—वे सब; **आसि'**—आकर; **प्रभु-पदे**—चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का; **लइल**—लिया; **शरण**—आश्रय।

अनुवाद

जब आचार्य बेहोश हो गया, तो उसके सारे शिष्य जोर-जोर से रोने लगे और शरण पाने के लिए श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की ओर दौड़े।

তুমি ত' ঈশ্বর সাক্ষাৎ, ক্ষম অপরাধ ।
জীয়াও আমার গুরু, করহ প্রসাদ ॥৫৮॥

तुमि त' ईश्वर साक्षात्, क्षम अपराध ।
जीयाओ आमार गुरु, करह प्रसाद ॥५८॥

तुमि—आप; **त'**—निस्सन्देह; **ईश्वर**—ईश्वर; **साक्षात्**—साक्षात्; **क्षम**—कृपया क्षमा करें; **अपराध**—अपराध; **जीयाओ**—चेतना में लौटाना; **आमार**—हमारा; **गुरु**—गुरु; **करह**—करो; **प्रसाद**—यह कृपा।

अनुवाद

उन सबने श्री चैतन्य महाप्रभु को साक्षात् भगवान् सम्बोधित करते हुए कहा, "कृपया, हमारा अपराध क्षमा करें। हम पर कृपा करें और हमारे गुरुदेव को जीवनदान दें।"

প্রভু কহে,—সবে কহ 'কৃষ্ণ' 'কৃষ্ণ' 'হরি' ।
গুরু-কর্ণে কহ কৃষ্ণ-নাম উচ্চ করি' ॥৫৯॥

प्रभु कहे,—सबे कह 'कृष्ण' 'कृष्ण' 'हरि' ।
गुरु-कर्णे कह कृष्ण-नाम उच्च करि' ॥५९॥

प्रभु कहे—चैतन्य महाप्रभु ने कहा; **सबे**—तुम सब; **कह**—कीर्तन करो; **कृष्ण कृष्ण हरि**—भगवान् कृष्ण और हरि के पावन नाम; **गुरु-कर्णे**—गुरु के कान के निकट; **कह**—जप करो; **कृष्ण-नाम**—भगवान् कृष्ण का पावन नाम; **उच्च करि'**—ऊँची आवाज में।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने उन बौद्ध शिष्यों से कहा, "तुम सभी मिलकर अपने गुरु के कान में जोर से कृष्ण तथा हरि के नामों का उच्चारण करो।

তোমা-সবার 'গুরু' তবে পাইবে চেতন ।
সব বৌদ্ধ মিলি' করে কৃষ্ণ-সঙ্কীর্তন ॥৬০॥

তোমা-সবার 'গুরু' তবে পাইবে চেতন ।
সব বৌদ্ধ মিলি' করে কৃষ্ণ-সঙ্কীর্তন ॥৬০॥

তোমা-সবার—तुम सबके; **গুরু**—गुरु; **তবে**—तब; **পাইবে**—पायेंगे; **চেতন**—चेतना; **সব বৌদ্ধ**—सारे बौद्ध-शिष्य; **মিলি'**—मिलकर; **করে**—करते हैं; **কৃষ্ণ-সঙ্কীর্তন**—हरे कृष्ण मंत्र का संकीर्तन।

अनुवाद

"इस तरह से तुम्हारे गुरु को चेतना प्राप्त होगी।" श्री चैतन्य महाप्रभु का परामर्श मानकर वे सारे बौद्ध शिष्य कृष्ण के पवित्र नाम का सामूहिक कीर्तन करने लगे।

গুরু-কর্ণে কহে সবে 'কৃষ্ণ' 'রাম' 'হরি' ।
চেতন পাঞা আচার্য বলে 'হরি' 'হরি' ॥৬১॥

গুরু-কর্ণে কহে সবে 'কৃষ্ণ' 'রাম' 'হরি' ।
চেতন পাঞা আচার্য্য বলে 'হরি' 'হরি' ॥৬১॥

গুরু-কর্ণে—गुरु के कान में; **কহে**—उन्होंने कहा; **সবে**—सबने मिलकर; **কৃষ্ণ রাম হরি**—"कृष्ण," "राम" और "हरि" के पवित्र नाम; **চেতন**—चेतना; **পাঞা**—पाकर; **আচার্য্য**—प्रमुख; **বলে**—बोलने लगा; **হরি হরি**—भगवान् का नाम "हरि हरि"।

अनुवाद

जब सारे शिष्य कृष्ण, राम तथा हरि के पवित्र नामों का कीर्तन करने

लगे, तो बौद्ध आचार्य की चेतना वापस आ गई और वह तुरन्त ही हरि-नाम का कीर्तन करने लगा।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर टीका करते हैं कि वास्तव में श्री चैतन्य महाप्रभु ने सारे बौद्ध शिष्यों को कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करने के लिए दीक्षित कर दिया और जब वे कीर्तन करने लगे, तो वे वास्तव में भिन्न व्यक्ति बन गये। उस समय वे बौद्ध या नास्तिक नहीं रहे, अपितु वैष्णव बन गये। फलस्वरूप उन्होंने तुरन्त श्री चैतन्य महाप्रभु की आज्ञा मान ली। उनकी मूल कृष्णभावना जाग्रत हो उठी और वे तुरन्त हरे कृष्ण का कीर्तन करने लगे तथा भगवान् विष्णु की पूजा करने लगे।

शिष्य को हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने के लिए दीक्षित करके माया के पाश से छुड़ाने वाला गुरु ही होता है। इस तरह सुप्त मनुष्य हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करके अपनी चेतना को जाग्रत कर सकता है : हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे। दूसरे शब्दों में, गुरु सुप्त जीव को जगाकर उसे मूल चेतना प्रदान करता है, जिससे वह भगवान् विष्णु की पूजा कर सकता है। दीक्षा का यही प्रयोजन होता है। दीक्षा का अर्थ है, आध्यात्मिक चेतना का शुद्ध ज्ञान प्राप्त करना।

यहाँ यह ध्यान देने की बात यह है कि बौद्धों के गुरु ने अपने शिष्यों को दीक्षा नहीं दी, प्रत्युत वे श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु द्वारा दीक्षित हुए और तब उन्होंने अपने तथाकथित गुरु को दीक्षा दी। यह परम्परा पद्धति है। वास्तव में वह तथाकथित बौद्ध आचार्य शिष्य के पद पर था और जब उसके शिष्यों ने श्री चैतन्य महाप्रभु से दीक्षा ले ली, तो वे उसके गुरु बन गये। यह इसलिए सम्भव हो सका, क्योंकि बौद्धाचार्य के शिष्यों को श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा प्राप्त हुई। जब तक गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा प्राप्त न हो, तब तक कोई गुरु नहीं बन सकता। हमें समस्त ब्रह्माण्ड के गुरु श्री चैतन्य महाप्रभु के आदेशों को मानना चाहिए, जिससे हम समझ सकें कि गुरु तथा शिष्य कैसे बना जाए।

কৃষ্ণ বলি' আচার্য প্রভুরে করেন বিনয় ।
দেখিয়া সকল লোক হইল বিস্ময় ॥৬২॥

कृष्ण बलि' आचार्य्र प्रभुरे करेन विनय ।
देखिया सकल लोक हइल विस्मय ॥६२॥

कृष्ण बलि'—कृष्ण का पावन नाम जपकर; **आचार्य्र**—बौद्धों का तथाकथित गुरु; **प्रभुरे**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **करेन**—करता है; **विनय**—विनय; **देखिया**—यह देखकर; **सकल लोक**—सभी लोग; **हइल**—हो गये; **विस्मय**—विस्मित।

अनुवाद

जब वह बौद्धाचार्य कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन करने लगा और श्री चैतन्य महाप्रभु की शरण में आ गया, तो वहाँ पर एकत्र सारे लोग आश्चर्य से चकित रह गये।

এই-রূপে কৌতুক করি' শচীর নন্দন ।
অন্তর্ধান কৈল, কেহ না পায় দর্শন ॥৬৩॥

एइ-रूपे कौतुक करि' शचीर नन्दन ।
अन्तर्धान कैल, केह ना पाय दर्शन ॥६३॥

एइ-रूपे—इस प्रकार; **कौतुक करि'**—कौतुक करके; **शचीर नन्दन**—माता शचीदेवी के पुत्र; **अन्तर्धान कैल**—ओझल हो गये; **केह**—कोई; **ना**—नहीं; **पाय**—पाता; **दर्शन**—दर्शन।

अनुवाद

तब शचीदेवी के पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु सहसा आँखों से नाटकीय ढंग से ओझल हो गये, और उन्हें कोई ढूँढ नहीं सका।

মহাপ্রভু চলি' আইলা ত্রিপতি-ত্রিমল্লে ।
চতুর্ভুজ মূর্তি দেখি' ব্যেঙ্কটাদ্র্যে চলে ॥৬৪॥

महाप्रभु चलि' आइला त्रिपति-त्रिमल्ले ।
चतुर्भुज मूर्ति देखि' व्येङ्कटाद्र्य्रे चले ॥६४॥

महाप्रभु—श्री चैतन्य महाप्रभु; **चलि' आइला**—चलकर आये; **त्रिपति-त्रिमल्ले**—

तिरुपति और तिरुमल नामक तीर्थ स्थानों पर; **चतुर्-भुज**—चतुर्भुज; **मूर्ति**—मूर्ति; **देखि'**—देखकर; **व्येङ्कट-अद्रये**—वेंकट पर्वत नामक तीर्थस्थान की ओर; **चले**—चलने लगे।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु तिरुपति तथा तिरुमल्ल आये, जहाँ उन्होंने चतुर्भुजी मूर्ति देखी। तत्पश्चात् वे वेंकट पर्वत की ओर चल पड़े।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने वास्तव में महाप्रभु की यात्रा का क्रमबद्ध वर्णन किया है। तिरुपति मन्दिर को कभी-कभी तिरुपटुर कहा जाता है। यह चन्द्रगिरि जिले में आर्कट के दक्षिण की ओर स्थित है। यह प्रसिद्ध तीर्थस्थल है। व्यंकटेश्वर, चतुर्भुज विष्णु के रूप में बालाजी के अर्चाविग्रह हैं, जो अपने नाम के अनुरूप, श्री तथा भू नामक अपनी शक्तियों समेत, तिरुपति से लगभग आठ मील दूरी पर व्यंकट पर्वत पर स्थित हैं। यह व्यंकटेश्वर अर्चाविग्रह भगवान् विष्णु के रूप में है और वह स्थान, जहाँ यह स्थित है, व्यंकटक्षेत्र कहलाता है। यद्यपि दक्षिण भारत में अनेक मन्दिर हैं, किन्तु बालाजी का यह मन्दिर अत्यन्त वैभवशाली है। यहाँ पर आश्विन मास (सितम्बर-अक्टूबर) मास में एक विशाल मेला लगता है। दक्षिणी रेलवे पर तिरुपति नामक रेलवे स्टेशन है। निम्न-तिरुपति व्यंकट पर्वत की घाटी पर स्थित है। वहाँ भी अनेक मन्दिर हैं, जिनमें गोविन्द राज तथा भगवान् रामचन्द्र के मन्दिर हैं।

त्रिपति आसिया कैल श्री-राम दरशन ।
रघुनाथ-आगे कैल प्रणाम स्तवन ॥ ६५॥

त्रिपति आसिया कैल श्री-राम दरशन ।
रघुनाथ-आगे कैल प्रणाम स्तवन ॥ ६५॥

त्रिपति आसिया—तिरुपति आकर; **कैल श्री-राम दरशन**—श्री रामचन्द्र मन्दिर के दर्शन किये; **रघुनाथ-आगे**—भगवान् रामचन्द्र के समक्ष; **कैल**—किया; **प्रणाम**—नमस्कार; **स्तवन**—प्रार्थना।

अनुवाद

तिरुपति पहुँचकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् रामचन्द्र के मन्दिर का दर्शन किया। वहाँ उन्होंने प्रार्थना की और रघुवंशी रामचन्द्र के समक्ष नमस्कार किया।

स्व-प्रभावे लोक-सवार कराञा विस्मय ।
पाना-नृसिंहे आइला प्रभु दया-मय ॥ ६६॥

स्व-प्रभावे लोक-सबार कराञा विस्मय ।
पाना-नृसिंहे आइला प्रभु दया-मय ॥ ६६॥

स्व-प्रभावे—अपने ही प्रभाव से; **लोक-सबार**—सभी लोगों को; **कराञा**—प्ररित किया; **विस्मय**—चमत्कृत कर; **पाना-नृसिंहे**—भगवान् पाना-नृसिंह को; **आइला**—आये; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **दया-मय**—परम दयालु।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जहाँ-जहाँ जाते, वहीं उनके प्रभाव से हर व्यक्ति विस्मित हो उठता। फिर वे पाना-नृसिंह मन्दिर आये। महाप्रभु इतने दयामय हैं।

तात्पर्य

यह पाना-नृसिंह या पानाकल-नरसिंह कृष्णा जिले में मंगलगिरि नामक पर्वत पर विजयवाड़ा शहर से लगभग ७ मील दूरी पर स्थित है। इस मन्दिर तक पहुँचने के लिए ६०० सीढ़ियाँ चढ़नी होती हैं। कहा जाता है कि जब यहाँ भगवान् को चाशनी के साथ भोजन दिया जाता है, तो वे आधे से अधिक नहीं खाते। इसी मन्दिर में वह शंख है, जिसे तंजोर के दिवंगत राजा ने भेंट किया था, और यह कहा जाता है कि भगवान् कृष्ण ने इसी शंख को बजाया था। इस मन्दिर में मार्च के महीने में एक बड़ा मेला लगता है।

नृसिंहे प्रणति-स्तुति प्रेमावेशे कैल ।
प्रभुर प्रभावे लोक चमत्कार हैल ॥ ६७॥

नृसिंहे प्रणति-स्तुति प्रेमावेशे कैल ।
प्रभुर प्रभावे लोक चमत्कार हैल ॥ ६७॥

नृसिंहे—भगवान् नृसिंह को; **प्रणति-स्तुति**—प्रणाम तथा स्तुति करने के बाद; **प्रेम-आवेशे**—प्रेमावेश में; **कैल**—किया; **प्रभुर**—महाप्रभु के; **प्रभावे**—प्रभाव से; **लोक**—लोग; **चमत्कार हैल**—विस्मित हो गये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रेमावेश में आकर भगवान् नृसिंह को नमस्कार किया और उनकी स्तुति की। लोग भगवान् चैतन्य के प्रभाव को देखकर चकित हो गये।

शिव-काञ्ची आसिया कैल शिव दरशन ।
प्रभावे 'वैष्णव' कैल सब शैव-गण ॥ ६८॥

शिव-काञ्ची आसिया कैल शिव दरशन ।
प्रभावे 'वैष्णव' कैल सब शैव-गण ॥ ६८॥

शिव-काञ्ची—शिवकांची नामक तीर्थ स्थान में; **आसिया**—आकर; **कैल**—किये; **शिव दरशन**—शिव मन्दिर के दर्शन; **प्रभावे**—अपने प्रभाव से; **वैष्णव कैल**—वैष्णव बनाया; **सब**—सब; **शैव-गण**—शिवजी के भक्तों को।

अनुवाद

शिवकांची आकर चैतन्य महाप्रभु ने शिवजी के अर्चाविग्रह का दर्शन किया। उन्होंने अपने प्रभाव से सारे शिव-भक्तों को वैष्णव बना दिया।

तात्पर्य

यह शिवकांची कांचीपुरम या दक्षिण भारत की काशी कहलाता है। शिवकांची में सैकड़ों मन्दिर हैं, जिनमें शिवजी के प्रतीक पाये जाते हैं और उनमें से एक तो अत्यन्त प्राचीन मन्दिर माना जाता है।

विष्णु-काञ्ची आसि' देखिल लक्ष्मी-नारायण ।
प्रणाम करिया कैल बहुत स्तवन ॥ ६९॥

विष्णु-काञ्ची आसि' देखिल लक्ष्मी-नारायण ।
प्रणाम करिया कैल बहुत स्तवन ॥ ६९॥

विष्णु-काञ्ची—विष्णुकांची नामक पवित्र स्थान पर; **आसि'**—आकर; **देखिल**—महाप्रभु ने दर्शन किये; **लक्ष्मी-नारायण**—भगवान् नारायण और माता लक्ष्मी के अर्चाविग्रह की; **प्रणाम करिया**—नमस्कार करके; **कैल**—की; **बहुत स्तवन**—बहुत स्तुतियाँ।

अनुवाद

तत्पश्चात् महाप्रभु विष्णुकांची नामक स्थान गये, जहाँ उन्होंने लक्ष्मी-नारायण के अर्चाविग्रह देखे और उन्हें प्रसन्न करने के लिए नमस्कार किया तथा अनेक स्तुतियाँ कीं।

तात्पर्य

विष्णुकांची कांचीपुरम से लगभग पाँच मील की दूरी पर है। यहीं पर भगवान् विष्णु के दूसरे रूप वरदराज रहते हैं। यहाँ पर एक बड़ा सरोवर है, जो अनन्त सरोवर कहलाता है।

प्रेमावेशे नृत्य-गीत बहुत करिल ।
दिन-दुई रहि' लोके 'कृष्ण-भक्त' कैल ॥७०॥

प्रेमावेशे नृत्य-गीत बहुत करिल ।
दिन-दुइ रहि' लोके 'कृष्ण-भक्त' कैल ॥७०॥

प्रेम-आवेशे—प्रेमावेश में; **नृत्य-गीत**—नृत्य और कीर्तन; **बहुत**—बहुत; **करिल**—किया; **दिन-दुइ**—दो दिन; **रहि'**—रहकर; **लोके**—सामान्य लोगों को; **कृष्ण-भक्त**—भगवान् कृष्ण के भक्त; **कैल**—बनाया।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु विष्णुकांची में दो दिन ठहरे, तो उन्होंने भावावेश में नृत्य और कीर्तन किया। जब सारे लोगों ने उन्हें देखा, तो वे कृष्ण-भक्त बन गये।

त्रिमलय देखि' गेला त्रिकाल-हस्ति-स्थाने ।
महादेव देखि' ताँरे करिल प्रणामे ॥७१॥

त्रिमलय देखि' गेला त्रिकाल-हस्ति-स्थाने ।
महादेव देखि' ताँरे करिल प्रणामे ॥७१॥

त्रिमलय देखि'—त्रिमलय देखने के बाद; **गेला**—गये; **त्रिकाल-हस्ति-स्थाने**—त्रिकालहस्ति नामक स्थान पर; **महादेव**—शिवजी; **देखि'**—देखकर; **ताँरे**—उनको; **करिल प्रणामे**—प्रणाम किया।

अनुवाद

त्रिमलय देखने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु त्रिकालहस्ति देखने गये। यहीं पर उन्होंने शिवजी को देखा और उन्हें सभी प्रकार से प्रणाम किया।

तात्पर्य

त्रिकालहस्ति या श्रीकालहस्ति तिरुपति से लगभग २२ मील पूर्व में स्थित है। इसके पश्चिम में सुवर्णमुखी नदी है। त्रिकालहस्ति का मन्दिर नदी की दक्षिण की ओर स्थित है। यह श्रीकालहस्ति या कालहस्ति नाम से प्रसिद्ध है और शिव-मन्दिर के लिए विख्यात है। यहाँ शिवजी वायुलिंग शिव कहलाते हैं।

पक्षि-तीर्थ देखि' कैल शिव दरशन ।
वृद्धकोल-तीर्थे तबे करिला गमन ॥७२॥
पक्षि-तीर्थ देखि' कैल शिव दरशन ।
वृद्धकोल-तीर्थे तबे करिला गमन ॥७२॥

पक्षि-तीर्थ देखि'—पक्षितीर्थ देखकर; **कैल**—किया; **शिव दरशन**—शिवजी के मन्दिर का दर्शन करके; **वृद्धकोल-तीर्थे**—वृद्धकोल नामक तीर्थस्थान को; **तबे**—तब; **करिला गमन**—गये।

अनुवाद

पक्षितीर्थ में श्री चैतन्य महाप्रभु ने शिवजी का मन्दिर देखा। तब वे वृद्धकोल तीर्थ गये।

तात्पर्य

पक्षितीर्थ तिरुकाडिकुण्डम भी कहलाता है और चिमलिपट से नौ मील दक्षिण-पूर्व में स्थित है। यह ५०० फुट ऊँचाई पर वेदगिरि या वेदालचम पर्वतश्रेणी पर बसा है। यहाँ पर शिवजी का मन्दिर है और अर्चाविग्रह वेदगिरीश्वर कहलाता है। कहा जाता है कि नित्य वहाँ पर दो पक्षी मन्दिर के पुजारी से भोजन प्राप्त करने आते हैं, और ऐसा कहा जाता है कि ये पक्षी अनन्त काल से यहाँ आते हैं।

শ্বেত-বরাহ দেখি, তাঁরে নমস্করি' ।
পীতাম্বর-শিব-স্থানে গেলা গৌরহরি ॥৭৩॥

श्वेत-वराह देखि, ताँरे नमस्करि' ।
पीताम्बर-शिव-स्थाने गेला गौरहरि ॥७३॥

श्वेत-वराह—श्वेत वराह अवतार; **देखि**—देखकर; **ताँरे**—उनको; **नमस्करि'**—नमस्कार करके; **पीत-अम्बर**—पीत वस्त्र; **शिव-स्थाने**—शिवजी के मन्दिर को; **गेला**—गये; **गौरहरि**—श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

वृद्धकोल में श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् श्वेतवराह का मन्दिर देखा। उन्हें नमस्कार करने के बाद महाप्रभु शिवजी के मन्दिर गये, जहाँ अर्चाविग्रह को पीले रंग के वस्त्र पहनाये जाते हैं।

तात्पर्य

श्वेतवराह का मन्दिर वृद्धकोल या श्रीमुष्णम में है। यह मन्दिर पत्थर का बना है और बलिपीठम् हरितस्थान से लगभग एक मील दक्षिण में स्थित है। यहाँ पर श्वेतवराह अवतार का विग्रह है, जिसके सिर के ऊपर शेषनाग का छत्र है।

शिवजी का मन्दिर पीताम्बर अथवा चिदाम्बरम् में स्थित है। यह मन्दिर कुडालोर से २६ मील दक्षिण में स्थित है, और यहाँ शिवजी का अर्चाविग्रह आकाशलिंग कहलाता है। यह मन्दिर लगभग ३९ एकड़ भूमि पर स्थित है और यह भूमि एक दीवार और ६० फुट चौड़ी एक सड़क से घिरी है।

শিয়ালী ভৈরবী দেবী করি' দরশন ।
কাবেরীর তীরে আইলা শচীর নন্দন ॥৭৪॥

शियाली भैरवी देवी करि' दरशन ।
कावेरीर तीरे आइला शचीर नन्दन ॥७४॥

शियाली भैरवी—शियाली भैरवी; **देवी**—देवी का; **करि' दरशन**—दर्शन करके; **कावेरीर तीरे**—कावेरी नदी के तट पर; **आइला**—आये; **शचीर नन्दन**—माता शची के पुत्र।

अनुवाद

शियाली भैरवी (दुर्गादेवी का अन्य रूप) मन्दिर देखने के बाद शचीदेवी के पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु कावेरी नदी के किनारे गये।

तात्पर्य

शियाली भैरवी का मन्दिर तंजोर जिले में तंजोर शहर से लगभग ४८ मील उत्तर-पूर्व की ओर स्थित है। यहाँ पर शिवजी का प्रसिद्ध मन्दिर है, और एक विशाल सरोवर भी है। कहा जाता है कि एक बार एक शिव-भक्त छोटा बालक उस मन्दिर में आया और माता दुर्गा ने, जो भैरवी कहलाती हैं, उसे अपना दूध पिलाया। इस मन्दिर को देखने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु त्रिचिनापल्ली जिले से होते हुए कावेरी (कोलिरन) नदी के किनारे पहुँचे। *श्रीमद्भागवत* (११.५.४०) में कावेरी नदी को अत्यन्त पवित्र मानी गई है।

गो-समाजे शिव देखि' आइला वेदावन ।
महादेव देखि' ताँरे करिला वन्दन ॥ ७५ ॥

गो-समाजे शिव देखि' आइला वेदावन ।
महादेव देखि' ताँरे करिला वन्दन ॥ ७५ ॥

गो-समाजे—गो समाज नामक स्थान पर; **शिव देखि'**—शिवजी का अर्चाविग्रह देखकर; **आइला वेदावन**—वेदावन पहुँचे; **महादेव देखि'**—शिवजी के दर्शन करने के बाद; **ताँरे**—उनको; **करिला वन्दन**—वन्दन किया।

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु गोसमाज नामक स्थान गये, जहाँ उन्होंने शिव-मन्दिर देखा। तब वे वेदावन पहुँचे, जहाँ उन्होंने शिवजी का दूसरा अर्चाविग्रह देखा और उन्हें नमस्कार किया।

तात्पर्य

गोसमाज शिव-भक्तों का तीर्थस्थल है। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और वेदवन के निकट स्थित है।

অমৃতলিঙ্গ-শিব দেখি' বন্দন করিল ।
সব শিবালয়ে শৈব 'বৈষ্ণব' হইল ॥৭৬॥

অমৃতলিঙ্গ-শিব দেখি' বন্দন করিল ।
সব শিবালয়ে শৈব 'বৈষ্ণব' হইল ॥৭৬॥

अमृत-लिङ्ग-शिव—अमृतलिंग नामक शिवजी की मूर्ति; **देखि'**—देखकर; **वन्दन करिल**—नमस्कार किया; **सब शिव-आलये**—शिवजी के सभी मन्दिरों में; **शैव**—शिव भक्तों को; **वैष्णव हइल**—भगवान् कृष्ण के भक्त बनाये।

अनुवाद

अमृतलिंग नामक शिव के अर्चाविग्रह को देखने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें नमस्कार किया। इस तरह उन्होंने शिवजी के सारे मन्दिर देखे और शिवजी के भक्तों को वैष्णव बनाये।

দেব-স্থানে আসি' কৈল বিষ্ণু দরশন ।
শ্রী-বৈষ্ণবের সঙ্গে তাহাঁ গোষ্ঠী অনুক্ষণ ॥৭৭॥

দেব-স্থানে আসি' কৈল বিষ্ণু দরশন ।
শ্রী-বৈষ্ণবের সঙ্গে তাহাঁ গোষ্ঠী অনুক্ষণ ॥৭৭॥

देव-स्थाने—देवस्थान नामक स्थान; **आसि'**—आकर; **कैल**—किया; **विष्णु दरशन**—भगवान् विष्णु के मन्दिर का दर्शन; **श्री-वैष्णवेर सङ्गे**—रामानुज गुरु-शिष्य परम्परा में वैष्णवों के साथ; **ताहाँ**—वहाँ; **गोष्ठी**—चर्चा; **अनुक्षण**—सदा।

अनुवाद

देवस्थान आकर चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् विष्णु का मन्दिर देखा और वहाँ रामानुजाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा के वैष्णवों से बातें कीं। ये वैष्णव श्री वैष्णव कहलाते हैं।

কুম্ভকর্ণ-কপালে দেখি' সরোবর ।
শিব-ক্ষেত্রে শিব দেখে গৌরাঙ্গ-সুন্দর ॥৭৮॥

কুম্ভকর্ণ-কপালে দেখি' সরোবর ।
শিব-ক্ষেত্রে শিব দেখে গৌরাঙ্গ-সুন্দর ॥৭৮॥

कुम्भकर्ण-कपाले—कुम्भकरण कपाल में; **देखि'**—देखकर; **सरोवर**—सरोवर; **शिव-क्षेत्रे**—शिवक्षेत्र में; **शिव**—शिवजी; **देखे**—देखे; **गौराङ्ग-सुन्दर**—श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

कुम्भकर्ण-कपाल आकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने एक विशाल सरोवर देखा और फिर शिवक्षेत्र नामक पवित्र स्थान देखा, जहाँ पर शिवजी का मन्दिर है।

तात्पर्य

कुम्भकर्ण रावण के भाई का नाम है। आजकल कुम्भकर्ण-कपाल का शहर कुम्भकोणम के नाम से जाना जाता है। कुम्भकोणम तंजोर शहर से चौबीस मील उत्तर-पूर्व में स्थित है। यहाँ पर शिवजी के १२, विष्णु के ४ तथा ब्रह्माजी का एक मन्दिर है। शिवक्षेत्र तंजोर शहर के भीतर शिवगंगा नामक विशाल सरोवर के तट पर स्थित है। यहाँ पर शिवजी का एक बड़ा मन्दिर बृहतीश्वर-शिव-मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है।

पाप-नाशने विष्णु कैल दरशन ।
श्री-रङ्ग-क्षेत्रे तबे करिला गमन ॥७९॥

पाप-नाशने विष्णु कैल दरशन ।
श्री-रङ्ग-क्षेत्रे तबे करिला गमन ॥ ७९ ॥

पाप-नाशने—पापनाशक स्थान में; **विष्णु**—भगवान् विष्णु का; **कैल**—किया; **दरशन**—दर्शन; **श्री-रङ्ग-क्षेत्रे**—श्री रंगक्षेत्र नामक पावन स्थान में; **तबे**—तब; **करिला**—किया; **गमन**—प्रस्थान।

अनुवाद

शिवक्षेत्र नामक तीर्थ देखने के बाद चैतन्य महाप्रभु पापनाशन आये, जहाँ उन्होंने भगवान् विष्णु के मन्दिर में दर्शन किये। अन्त में वे श्री-रंगक्षेत्र पहुँचे।

तात्पर्य

पापनाशन नाम के दो तीर्थस्थान हैं : एक कुम्भकोणम् से ८ मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित है और दूसरा तिरुनेलवेलि जिले में ताम्रपर्णी नदी के निकट तिरुनेलवेलि (पालमकोटा) शहर से २० मील पश्चिम में है।

श्री-रंगक्षेत्र (श्रीरंगम) अत्यन्त प्रसिद्ध स्थान है। यह तिरुच्चिरापल्ली जिले में कुम्भकोणम के पश्चिम में लगभग दस मील दूर और तिरुच्चिरापल्ली शहर के निकट कावेरी नदी के एक द्वीप में स्थित है। श्रीरंगम मन्दिर भारत का सबसे बड़ा मन्दिर है, और यह सात परकोटों से घिरा है। श्रीरंगम तक सात मार्ग भी जाते हैं। इनके प्राचीन नाम हैं धर्म-मार्ग, राजमहेन्द्र मार्ग, कुलशेखर मार्ग, आलिनाडन मार्ग, तिरुविक्रम मार्ग, माडमाडि गाइस का तिरुबिडि मार्ग तथा अडइयावल इन्दान मार्ग। इस मन्दिर की स्थापना धर्मवर्मा के राज्यकाल से भी पूर्व की गई थी। यह राजा राजमहेन्द्र से भी पहले राज्य करता था। श्रीरंगम मन्दिर में कई विख्यात राजा रह चुके हैं—यथा कुलशेखर, यामुनाचार्य अर्थात् आलबन्दारु आदि। यामुनाचार्य, श्री रामानुज, सुदर्शनाचार्य तथा अन्यों ने भी इस मन्दिर की देखभाल की है।

लक्ष्मी की अवतार गोदादेवी या आंडाल बारह आलवारों में से एक थीं। आलवार मुक्त पुरुष थे और *दिव्य सूरि* कहलाते थे। उनका विवाह श्री-रंगनाथ के अर्चाविग्रह से हुआ था। बाद में वे भगवान् के शरीर में प्रविष्ट कर गईं। कार्मुक के अवतार तिरुमंग (आलवारों में से एक) ने चोरी से कुछ धन प्राप्त करके श्रीरंगम की चौथी चाहारदीवारी बनवा दी। कहा जाता है कि २८९ कलि सम्बत्सर में तोण्डरडिप्पडि नामक आलवार का जन्म हुआ। जब ये भक्ति में लगे थे, तो एक वेश्या के जाल में फँस गये। अपने भक्त को इतना पतित हुआ देखकर श्री-रंगनाथ ने अपने नौकर के हाथ उस वेश्या के पास एक सोने का थाल भेजा। जब मन्दिर में सोने के थाल की खोज की गई, तो वह वेश्या के घर में पाया गया। जब भक्त ने उस वेश्या पर रंगनाथ की कृपा देखी, तो उसकी भूल सुधार ली गई। तब उसने रंगनाथ-मन्दिर की तीसरी चाहारदीवारी बनवाई और वहाँ पर तुलसी का बगीचा लगा दिया।

रामानुजाचार्य का एक विख्यात शिष्य कूरेश था। इनका पुत्र रामपिल्लाइ था, जिसका पुत्र वाग्विजय भट्ट हुआ, जिसका पुत्र वेदव्यास भट्ट या श्री सुदर्शनाचार्य हुए। जब सुदर्शनाचार्य बूढ़े हो गये, तब मुसलमानों ने रंगनाथ के मन्दिर पर हमला कर दिया और लगभग १२०० श्रीवैष्णवों को मार डाला। उस समय रंगनाथ के अर्चाविग्रह को विजयनगर राज्य के तिरुपति मन्दिर में ले जाया

गया। गिंगि के गवर्नर गोप्पणार्य श्री-रंगनाथ को तिरुपति मन्दिर से सिंहब्रह्म नामक स्थान में ले आये, जहाँ वे तीन वर्ष तक रहे। १२९३ शक संवत (१३७१ ई.) में अर्चाविग्रह को पुनः रंगनाथ मन्दिर में स्थापित कर दिया गया। रंगनाथ मन्दिर की पूर्वी दीवाल में वेदान्तदेशिक द्वारा लिखित एक लेख है, जिसमें बतलाया गया है कि किस प्रकार रंगनाथ इस मन्दिर में वापस आये।

कावेरीते स्नान करि' देखि' रङ्गनाथ ।
स्तुति-प्रणति करि' मानिला कृतार्थ ॥८०॥

कावेरीते स्नान करि' देखि' रङ्गनाथ ।
स्तुति-प्रणति करि' मानिला कृतार्थ ॥८०॥

कावेरीते—कावेरी नदी में; **स्नान करि'**—स्नान करने के बाद; **देखि'**—देखकर; **रङ्ग-नाथ**—रंगनाथ मन्दिर; **स्तुति**—स्तुति; **प्रणति**—प्रणाम; **करि'**—करके; **मानिला**—मन में सोचा; **कृत-अर्थ**—सफल।

अनुवाद

कावेरी नदी में स्नान करके श्री चैतन्य महाप्रभु ने रंगनाथ मन्दिर देखा और वहाँ स्तुति की तथा प्रणाम किया। इस तरह उन्होंने अपने आपको कृतार्थ माना।

प्रेमावेशे कैल बहुत गान नर्तन ।
देखि' चमत्कार हैल सब लोकेर मन ॥८१॥

प्रेमावेशे कैल बहुत गान नर्तन ।
देखि' चमत्कार हैल सब लोकेर मन ॥८१॥

प्रेम-आवेशे—प्रेमावेश में; **कैल**—किया; **बहुत**—बहुत; **गान**—गाना; **नर्तन**—नृत्य; **देखि'**—जिसे देखकर; **चमत्कार**—चमत्कार; **हैल**—हो गये; **सब**—सभी; **लोकेर**—लोगों के; **मन**—मन।

अनुवाद

रंगनाथ मन्दिर में श्री चैतन्य महाप्रभु ने भावावेश में आकर नृत्य तथा कीर्तन किया, जिसे देखकर सारे लोग आश्चर्यचकित हो गये।

শ্রী-বৈষ্ণব এক,—'ব্যেঙ্কট ভট্ট' নাম ।
প্রভুরে নিমন্ত্রণ কৈল করিয়া সম্মান ॥ ৮২॥

শ্রী-বৈষ্ণব এক,—'ব্যেঙ্কট ভট্ট' নাম ।
প্রভুরে নিমন্ত্রণ কৈল করিয়া সম্মান ॥ ৮২॥

শ্রী-বৈষ্ণব এক—रामानुज सम्प्रदाय का एक भक्त; **ব্যেঙ্কট ভট্ট**—वेंकट भट; **নাম**—नामक; **প্রভুরে**—चैतन्य महाप्रभु को; **নিমন্ত্রণ**—निमंत्रण; **কৈল**—दिया; **করিয়া**—करके; **সম্মান**—सम्मान।

अनुवाद

तब वेंकट भट्ट नामक एक वैष्णव ने श्री चैतन्य महाप्रभु को बड़े ही आदर के साथ अपने घर आमन्त्रित किया।

तात्पर्य

श्री वेंकट भट्ट वैष्णव ब्राह्मण थे और श्री रंगक्षेत्र के निवासी थे। वे श्री रामानुजाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा में थे। श्रीरंग तामिल नाडु का एक महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थल है। इस प्रान्त के लोग वेंकट नाम नहीं रखते। अतएव यह माना जाता है कि वे उस प्रान्त का नहीं थे, भले ही वे वहाँ दीर्घकाल से रह रहे हो। वेंकट भट्ट श्री रामानुज-सम्प्रदाय की बड़गलइ शाखा से सम्बन्धित थे। उनके भाई, श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती रामानुज-सम्प्रदाय के थे। वेंकट भट्ट के पुत्र बाद में गौड़ीय सम्प्रदाय में गोपाल भट्ट गोस्वामी के नाम से विख्यात हुए, और उन्होंने वृन्दावन में राधारमण मन्दिर की स्थापना की। नरहरि चक्रवर्ती द्वारा लिखित *भक्तिरत्नाकर* ग्रन्थ में उनके विषय में अधिक जानकारी प्राप्त है।

নিজ-ঘরে লঞা কৈল পাদ-প্রক্ষালন ।
সেই জল লঞা কৈল সবংশে ভক্ষণ ॥ ৮৩॥

নিজ-ঘরে লঞা কৈল পাদ-প্রক্ষালন ।
সেই জল লঞা কৈল সবংশে ভক্ষণ ॥ ৮৩॥

নিজ-ঘরে—अपने घर; **লঞা**—लाकर; **কৈল**—किया; **পাদ-প্রক্ষালন**—चरण अभिषेक; **সেই জল**—वही जल; **লঞা**—लेकर; **কৈল**—किया; **সবংশে**—परिवार के सभी सदस्यों के साथ; **ভক্ষণ**—पिया।

अनुवाद

श्री वेंकट भट्ट श्री चैतन्य महाप्रभु को अपने घर ले गये। उन्होंने महाप्रभु के चरण धोये और उस जल को उनके परिवार के सारे लोगों ने पिया।

ভিক্ষা করাঞা কিছু কৈল নিবেদন ।
চাতুর্মাস্য আসি' প্রভু, হৈল উপসন্ন ॥ ৮৪ ॥

भिक्षा कराञा किछु कैल निवेदन ।
चातुर्मास्य आसि' प्रभु, हैल उपसन्न ॥ ८४ ॥

भिक्षा कराञा—भोजन देने के बाद; **किछु**—कुछ; **कैल**—किया; **निवेदन**—निवेदन; **चातुर्मास्य**—चातुर्मास; **आसि'**—आकर; **प्रभु**—मेरे प्रभु; **हैल उपसन्न**—आ गया है।

अनुवाद

महाप्रभु को भोजन कराने के बाद वेंकट भट्ट ने निवेदन किया कि चातुर्मास का समय आ चुका है।

চাতুর্মাস্যে কৃপা করি' রহ মোর ঘরে ।
কৃষ্ণ-কথা কহি' কৃপায় উদ্ধার' আমারে ॥ ৮৫ ॥

चातुर्मास्ये कृपा करि' रह मोर घरे ।
कृष्ण-कथा कहि' कृपाय उद्धार' आमारे ॥ ८५ ॥

चातुर्मास्ये—चतुर्मास की अवधि में; **कृपा करि'**—कृपा करके; **रह**—रहें; **मोर घरे**—मेरे घर पर; **कृष्ण-कथा**—भगवान् कृष्ण की कथाएँ; **कहि'**—कहकर; **कृपाय**—आप की दया से; **उद्धार' आमारे**—मेरा उद्धार करें।

अनुवाद

वेंकट भट्ट ने कहा, "आप मुझ पर कृपा करें, और चातुर्मास-भर मेरे घर पर रहें। आप भगवान् कृष्ण की लीलाएँ कहकर कृपा करके मेरा उद्धार करें।"

তাঁর ঘরে রহিলা প্রভু কৃষ্ণ-কথা-রসে ।
ভট্ট-সঙ্গে গোঙাইল সুখে চারি মাসে ॥ ৮৬ ॥

ताँर घरे रहिला प्रभु कृष्ण-कथा-रसे ।
भट्ट-सङ्गे गोङाइल सुखे चारि मासे ॥ ८६ ॥

ताँर घरे—उनके घर पर; **रहिला**—रहे; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **कृष्ण-कथा-रसे**—कृष्ण कथा की लीलाओं का दिव्य रस लेते हुए; **भट्ट-सङ्गे**—वेंकट भट्ट के साथ; **गोङाइल**—व्यतीत किये; **सुखे**—सुखपूर्वक; **चारि मासे**—चार मास।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु वेंकट भट्ट के घर पर चार महीने तक लगातार रहे। महाप्रभु ने बड़े ही सुखपूर्वक भगवान् कृष्ण की लीलाएँ कहते हुए और दिव्य रस का आस्वादन करते हुए अपने दिन बिताये।

কাবেরীতে স্নান করি' শ্রী-রঙ্গ দর্শন ।
প্রতিদিন প্রেমাবেশে করেন নর্তন ॥ ৮৭ ॥

कावेरीते स्नान करि' श्री-रङ्ग दर्शन ।
प्रतिदिन प्रेमावेशे करेन नर्तन ॥ ८७ ॥

कावेरीते—कावेरी नदी में; **स्नान करि'**—स्नान करके; **श्री-रङ्ग दर्शन**—श्रीरंग मन्दिर में दर्शन करके; **प्रति-दिन**—प्रतिदिन; **प्रेम-आवेशे**—प्रेमावेश में; **करेन**—करते; **नर्तन**—नृत्य।

अनुवाद

वहाँ रहते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने कावेरी नदी में स्नान किया और श्री-रंग मन्दिर देखा। महाप्रभु प्रतिदिन भावावेश में नाचते भी रहे।

সৌন্দর্যাদি প্রেমাবেশ দেখি, সর্ব-লোক ।
দেখিবারে আইসে, দেখে, খণ্ডে দুঃখ-শোক ॥ ৮৮ ॥

सौन्दर्य्यादि प्रेमावेश देखि, सर्व-लोक ।
देखिबारे आइसे, देखे, खण्डे दुःख-शोक ॥ ८८ ॥

सौन्दर्य्य-आदि—शरीर सौन्दर्य आदि; **प्रेम-आवेश**—उनका प्रेमावेश; **देखि**—देखकर; **सर्व-लोक**—सभी लोग; **देखिबारे**—देखने के लिए; **आइसे**—वहाँ आते; **देखे**—और देखते हैं; **खण्डे दुःख-शोक**—और सभी दुःख और शोक से छुटकारा पाते हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के शरीर के सौन्दर्य तथा उनके प्रेमावेश को हर

एक ने देखा। उन्हें देखने अनेक लोग आते रहते थे, और उनका दर्शन करने से ही उनका दु:ख तथा शोक भाग जाता था।

লক্ষ লক্ষ লোক আইল নানা-দেশ হৈতে ।
সবে কৃষ্ণ-নাম কহে প্রভুকে দেখিতে ॥ ৮৯ ॥

লক্ষ লক্ষ লোক আইল নানা-দেশ হৈতে ।
সবে কৃষ্ণ-নাম কহে প্রভুকে দেখিতে ॥ ৮৯ ॥

লক্ষ লক্ষ—लाखों; **লোক**—लोग; **আইল**—वहाँ आयें; **নানা-দেশ**—विभिन्न देशों; **হৈতে**—से; **সবে**—वे सब; **কৃষ্ণ-নাম কহে**—हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करते हैं; **প্রভুকে**—महाप्रभु को; **দেখিতে**—देखकर।

अनुवाद

विभिन्न देशों से लाखों लोग महाप्रभु का दर्शन करने आये और उन्हें देखने के बाद उन्होंने हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन किया।

কৃষ্ণ-নাম বিনা কেহ নাহি কহে আর ।
সবে কৃষ্ণ-ভক্ত হৈল,—লোকে চমৎকার ॥ ৯০ ॥

কৃষ্ণ-নাম বিনা কেহ নাহি কহে আর ।
সবে কৃষ্ণ-ভক্ত হৈল,—লোকে চমৎকার ॥ ৯০ ॥

কৃষ্ণ-নাম বিনা—हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन के अतिरिक्त; **কেহ**—किसी को; **নাহি**—नहीं; **কহে**—बोलते; **আর**—कुछ और; **সবে**—वे सब; **কৃষ্ণ-ভক্ত**—कृष्ण भक्त; **হৈল**—हो गये; **লোকে**—लोग; **চমৎকার**—चकित रह गये।

अनुवाद

वे केवल हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन करने लगे, और सबके सब भगवान् कृष्ण के भक्त बन गये। इस तरह सारी जनता आश्चर्यचकित थी।

শ্রী-রঙ্গ-ক্ষেত্রে বৈসে যত বৈষ্ণব-ব্রাহ্মণ ।
এক এক দিন সবে কৈল নিমন্ত্রণ ॥ ৯১ ॥

श्री-रङ्ग-क्षेत्रे वैसे यत वैष्णव-ब्राह्मण ।
एक एक दिन सबे कैल निमन्त्रण ॥ ९१ ॥

श्री-रङ्ग-क्षेत्रे—श्री रंग क्षेत्र में; **वैसे**—रहने वाले; **यत**—सब; **वैष्णव-ब्राह्मण**—वैष्णव ब्राह्मण; **एक एक दिन**—प्रतिदिन; **सबे**—वे सब; **कैल निमन्त्रण**—महाप्रभु को निमन्त्रण दिया।

अनुवाद

श्री रंगक्षेत्र में रहने वाले सारे वैष्णव ब्राह्मणों ने महाप्रभु को एक-एक दिन अपने अपने घरों में आमन्त्रित किया।

এক এক দিনে চাতুর্মাস্য পূর্ণ হৈল ।
কতক ব্রাহ্মণ ভিক্ষা দিতে না পাইল ॥৯২॥

एक एक दिने चातुर्मास्य पूर्ण हैल ।
कतक ब्राह्मण भिक्षा दिते ना पाइल ॥ ९२ ॥

एक एक दिने—दिन ब दिन; **चातुर्मास्य**—चतुमास की अवधि; **पूर्ण हैल**—पूर्ण हुई; **कतक ब्राह्मण**—कुछ ब्राह्मण; **भिक्षा दिते**—उन्हें भोजन देने के लिए; **ना**—नहीं; **पाइल**—अवसर पाया।

अनुवाद

यद्यपि प्रतिदिन विभिन्न ब्राह्मण महाप्रभु को आमन्त्रित करते रहते, किन्तु कुछ को भोजन कराने का अवसर नहीं मिल पाया, क्योंकि चातुर्मास्य की अवधि बीत गई।

সেই ক্ষেত্রে রহে এক বৈষ্ণব-ব্রাহ্মণ ।
দেবালয়ে আসি' করে গীতা আবর্তন ॥৯৩॥

सेइ क्षेत्रे रहे एक वैष्णव-ब्राह्मण ।
देवालये आसि' करे गीता आवर्तन ॥ ९३ ॥

सेइ क्षेत्रे—उसी पावन स्थान पर; **रहे**—रहता था; **एक**—एक; **वैष्णव-ब्राह्मण**—वैष्णव ब्राह्मण; **देव-आलये**—मन्दिर में; **आसि'**—आकर; **करे**—करता; **गीता**—*भगवद्गीता*; **आवर्तन**—पाठ, उच्चारण।

अनुवाद

श्री रंगक्षेत्र में एक ब्राह्मण वैष्णव नित्य मन्दिर में दर्शन करने आता था, और समूची भगवद्गीता का पाठ करता था।

অষ্টাদশাধ্যায় পড়ে আনন্দ-আবেশে ।
অশুদ্ধ পড়েন, লোক করে উপহাসে ॥ ৯৪ ॥

अष्टादशाध्याय पड़े आनन्द-आवेशे ।
अशुद्ध पड़ेन, लोक करे उपहासे ॥ ९४ ॥

अष्टादश-अध्याय—अठारह अध्याय; **पड़े**—पढ़ता; **आनन्द-आवेशे**—आनन्द के आवेश में; **अशुद्ध पड़ेन**—अशुद्ध उच्चारण में; **लोक**—सामान्य लोग; **करे**—करते; **उपहासे**—उपहास।

अनुवाद

वह ब्राह्मण अत्यन्त भावावेश में भगवद्गीता के अठारहों अध्याय का पाठ करता था। किन्तु वह शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकता था, इसलिए लोग उसका मजाक उड़ाते थे।

কেহ হাসে, কেহ নিন্দে, তাহা নাহি মানে ।
আবিষ্ট হঞা গীতা পড়ে আনন্দিত-মনে ॥ ৯৫ ॥

केह हासे, केह निन्दे, ताहा नाहि माने ।
आविष्ट हञा गीता पड़े आनन्दित-मने ॥ ९५ ॥

केह हासे—कोई हँसता; **केह निन्दे**—कोई आलोचना करता; **ताहा**—वह; **नाहि माने**—उनकी पहवाह नहीं करता; **आविष्ट हञा**—आवेश में होने के कारण; **गीता पड़े**—'भगवद्गीता' पढ़ता है; **आनन्दित**—अत्यन्त सुखपूर्वक; **मने**—अपने मन में।

अनुवाद

अशुद्ध उच्चारण करने से लोग कभी उसकी आलोचना करते और उस पर हँसते थे; किन्तु वह उनकी कोई परवाह नहीं करता था। वह भगवद्गीता का पाठ करने के कारण भावाविष्ट रहता था और मन-ही-मन अत्यन्त सुखी था।

पुलकाश्रु, कम्प, स्वेद,—यावज्जपठन ।
देखि' आनन्दित हैल महाप्रभुर मन ॥९६॥

पुलकाश्रु, कम्प, स्वेद,—यावत्पठन ।
देखि' आनन्दित हैल महाप्रभुर मन ॥ ९६ ॥

पुलक—पुलकित होना; **अश्रु**—अश्रु; **कम्प**—कंपन; **स्वेद**—पसीना; **यावत्**—जब तक; **पठन**—ग्रंथ पढ़ने पर; **देखि'**—यह देखकर; **आनन्दित**—अत्यन्त प्रसन्न होकर; **हैल**—हो गया; **महाप्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **मन**—मन।

अनुवाद

भगवद्गीता पढ़ते समय ब्राह्मण को दिव्य शारीरिक विकारों का अनुभव होता था। उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे, उसकी आँखों से आँसू आते रहते थे, उसका शरीर काँपने लगता था और वह पसीना-पसीना हो जाता था। यह देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त आनन्दित होते थे।

तात्पर्य

यद्यपि निरक्षर होने के कारण वह ब्राह्मण शब्दों का ठीक से उच्चारण नहीं कर पा रहा था, फिर भी भगवद्गीता पढ़ते हुए उसमें भाव प्रकट हो रहे थे। श्री चैतन्य महाप्रभु इन लक्षणों को देखकर अत्यन्त प्रसन्न थे। यह सूचित करता है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भक्ति से प्रसन्न होते हैं, विद्वत्ता से नहीं। यद्यपि वह ब्राह्मण शब्दों का सही-सही उच्चारण नहीं कर रहा था, किन्तु साक्षात् भगवान् कृष्णस्वरूप महाप्रभु ने इसे बुरा नहीं माना, प्रत्युत वे उसके भाव (भक्ति) से प्रसन्न थे। *श्रीमद्भागवत* (१.५.११) में इसकी पुष्टि हुई है :

तद्वाग्विसर्गो जनताघ-विप्लवो
यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यत्
शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः॥

"दूसरी ओर, जो साहित्य अनन्त भगवान् के नाम, यश, रूप तथा लीलाओं की महिमा के वर्णन से पूर्ण है, वह एक भिन्न सृष्टि है, जो ऐसे दिव्य शब्दों से परिपूर्ण होता है, जिससे इस जगत् की पथभ्रष्ट सभ्यता के पापमय जीवनों में

क्रान्ति आ सकती है। ऐसा दिव्य साहित्य कुछ त्रुटि होने पर भी ईमानदार शुद्ध व्यक्तियों द्वारा सुना, गाया और स्वीकार किया जाता है।"

इस विषय पर अधिक जानकारी के लिए कृपया इस श्लोक के तत्पर्य को देखें।

महाप्रभु पुछिल ताँरे, शुन, महाशय ।
कोनर्थ जानि' तोमार एत सुख हय ॥ ९७॥

महाप्रभु पुछिल ताँरे, शुन, महाशय ।
कोनर्थ जानि' तोमार एत सुख हय ॥ ९७॥

महाप्रभु—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **पुछिल**—पूछा; **ताँरे**—उससे; **शुन**—सुनो; **महा-आशय**—हे महाशय; **कोन्**—क्या; **अर्थ**—अर्थ; **जानि'**—जानकर; **तोमार**—आपको; **एत**—इतना अधिक; **सुख**—सुख; **हय**—है।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस ब्राह्मण से पूछा, "हे महोदय, आप ऐसे भावावेश में क्यों हैं? आपको भगवद्गीता के किस अंश से ऐसा दिव्य सुख प्राप्त होता है?"

विप्र कहे,—मूर्ख आमि, शब्दार्थ ना जानि ।
शुद्धाशुद्ध गीता पड़ि, गुरु-आज्ञा मानि' ॥ ९८॥

विप्र कहे,—मूर्ख आमि, शब्दार्थ ना जानि ।
शुद्धाशुद्ध गीता पड़ि, गुरु-आज्ञा मानि' ॥ ९८॥

विप्र कहे—ब्राह्मण ने उत्तर दिया; **मूर्ख आमि**—मैं अनपढ़ हूँ; **शब्द-अर्थ**—शब्दों का अर्थ; **ना जानि**—नहीं जानता; **शुद्ध-अशुद्ध**--कभी शुद्ध कभी अशुद्ध; **गीता**— *भगवद्गीता;* **पड़ि**—पढ़ता हूँ; **गुरु-आज्ञा**—अपने गुरु की आज्ञा; **मानि'**—स्वीकार करके।

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "मैं मूर्ख हूँ, अतएव मैं शब्दों का अर्थ नहीं जानता। मैं कभी भगवद्गीता का शुद्ध पाठ करता हूँ, कभी अशुद्ध, किन्तु ऐसा करके मैं अपने गुरु के आदेश का पालन कर रहा हूँ।"

तात्पर्य

यह ऐसे व्यक्ति का अच्छा उदाहरण है, जो भगवद्गीता का गलत पाठ करते हुए भी श्री चैतन्य महाप्रभु का ध्यान आकृष्ट करने में सफल हो सका। उसके आध्यात्मिक कार्य शब्दों के सही उच्चारण जैसी भौतिक वस्तुओं पर आश्रित नहीं थे, प्रत्युत उसकी सफलता अपने गुरु के उपदेशों का दृढ़ता से पालन करने पर आश्रित थी।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

"केवल उन महात्माओं को ही, जिन्हें भगवान् तथा गुरु में पूर्ण श्रद्धा है, वैदिक ज्ञान का आशय स्वतः प्रकट होता है।" (*श्वेताश्वतर उपनिषद्* ६.२३)

जो व्यक्ति गुरु के आदेशों का दृढ़ता से पालन करते हैं, उन्हें *भगवद्गीता* या *श्रीमद्भागवत* के शब्दों के अर्थ प्रकट होते हैं। इसी तरह जिसे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् में समान श्रद्धा होती है, उसे भी शब्दों के अर्थ प्रकट होते हैं। दूसरे शब्दों में, कृष्ण तथा गुरु दोनों के प्रति श्रद्धा ही आध्यात्मिक जीवन की सफलता का रहस्य है।

अर्जुनेर रथे कृष्ण हय रज्जु-धर ।
वसियाछे हाते तोत्र श्यामल सुन्दर ॥९९॥

अर्जुनेर रथे कृष्ण हय रज्जु-धर ।
वसियाछे हाते तोत्र श्यामल सुन्दर ॥ ९९ ॥

अर्जुनेर—अर्जुन के; **रथे**—रथ में; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **हय**—हैं; **रज्जु-धर**—लगाम पकड़े हुए; **वसियाछे**—वहाँ बैठे हैं; **हाते**—हाथ में; **तोत्र**—लगाम; **श्यामल**—श्यामल; **सुन्दर**—अत्यन्त सुन्दर।

अनुवाद

वह ब्राह्मण कहता गया, "वास्तव में मैं भगवान् कृष्ण के उस चित्र को ही देखता हूँ, जिसमें वे अर्जुन के सारथी के रूप में रथ पर बैठे हैं। वे अपने हाथों में लगाम थामे हुए अत्यन्त सुन्दर तथा साँवले लगते हैं।

অর্জুনেরে কহিতেছেন হিত-উপদেশ ।
তাঁরে দেখি' হয় মোর আনন্দ-আবেশ ॥ ১০০॥

অর্জুনেরে কহিতেছেন হিত-উপদেশ ।
তাঁরে দেখি' হয় মোর আনন্দ-আবেশ ॥ ১০০॥

অর্জুনেরে—अर्जुन को; **কহিতেছেন**—वे बोल रहे हैं; **হিত-উপদেশ**—हितोपदेश; **তাঁরে**—उनको; **দেখি'**—देखकर; **হয়**—है; **মোর**—मेरा; **আনন্দ**—दिव्य आनन्द; **আবেশ**—आवेश।

अनुवाद

"जब मैं रथ में बैठे और अर्जुन को उपदेश देते हुए भगवान् कृष्ण के चित्र को देखता हूँ, तो मैं भावमय आनन्द से पूरित हो उठता हूँ।

যাবত্পড়োঁ, তাবত্পাঙ তাঁর দরশন ।
এই লাগি' গীতা-পাঠ না ছাড়ে মোর মন ॥ ১০১॥

য়াবত্পড়োঁ, তাবত্পাঙ তাঁর দরশন ।
এই লাগি' গীতা-পাঠ না ছাড়ে মোর মন ॥ ১০১॥

য়াবত্—जब तक; **পড়োঁ**—मैं पढ़ता हूँ; **তাবত্**—तब तक; **পাঙ**—पाता हूँ; **তাঁর**—उनका; **দরশন**—दर्शन; **এই লাগি'**—इस कारण; **গীতা-পাঠ**—*भगवद्गीता* का पाठ; **না ছাড়ে**—नहीं छोड़ता; **মোর মন**—मेरा मन।

अनुवाद

"जब तक मैं गीता पढ़ता हूँ, तब तक मैं भगवान् के सुन्दर स्वरूप का ही दर्शन करता हूँ। इसी कारण से मैं भगवद्गीता पढ़ता हूँ और मेरा मन उससे विचलित नहीं होता।"

প্রভু কহে,—গীতা-পাঠে তোমারাই অধিকার ।
তুমি সে জানহ এই গীতার অর্থ-সার ॥ ১০২॥

প্রভু কহে,—গীতা-পাঠে তোমারাই অধিকার ।
তুমি সে জানহ এই গীতার অর্থ-সার ॥ ১০২॥

প্রভু কহে—महाप्रभु ने उत्तर दिया; **গীতা-পাঠে**—गीता-पाठ में; **তোমারাই অধিকার**—तुम उचित अधिकारी हो; **তুমি**—तुम; **সে**—वह; **জানহ**—जानते हो; **এই**—इस; **গীতার**—*भगवद्गीता* का; **অর্থ-সার**—वास्तविक सार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने ब्राह्मण से कहा, "निस्सन्देह, भगवद्गीता पढ़ने के तुम्हीं अधिकारी हो। तुम जो कुछ जानते हो, वही भगवद्गीता का वास्तविक तात्पर्य है।"

तात्पर्य

शास्त्रों के अनुसार— *भक्त्या भागवतं ग्राह्यं न बुद्ध्या न च टीकया।* मनुष्य को शुद्ध भक्त से *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* को सुनकर उन्हें समझना चाहिए। मात्र पाण्डित्य या कुशाग्र बुद्धि से इन्हें नहीं समझा जा सकता। यह भी कहा भी गया है :

गीताधीता च येनापि भक्तिभावेन चेतसा।
वेदशास्त्र पुराणानि तेनाधीतानि सर्वशः॥

जो व्यक्ति श्रद्धा तथा भक्ति के साथ *भगवद्गीता* पढ़ता है, उसे वैदिक ज्ञान का सार प्रकट हो जाता है। *श्वेताश्वतर उपनिषद* (६.२३) के अनुसार :

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

"जिन महात्माओं में भगवान् तथा गुरु के प्रति दृढ़ श्रद्धा होती है, उन्हीं को वैदिक ज्ञान स्वतः प्रकट होता है।"

सारा वैदिक साहित्य श्रद्धा तथा भक्ति से समझा जा सकता है, सांसारिक पाण्डित्य से नहीं। इसीलिए हमने *भगवद्गीता यथारूप* प्रस्तुत की है। ऐसे अनेक विद्वान तथा दार्शनिक हैं, जो *भगवद्गीता* का पाठ पांडित्यपूर्ण ढंग से करते हैं। वे अपना समय तो नष्ट करते ही हैं, किन्तु उनकी टीकाएँ पढ़ने वाले भी दिग्भ्रमित हो जाते हैं।

এত বলি' সেই বিপ্রে কৈল আলিঙ্গন ।
প্রভু-পদ ধরি' বিপ্র করেন রোদন ॥ ১০৩॥

एत बलि' सेइ विप्रे कैल आलिङ्गन ।
प्रभु-पद धरि' विप्र करेन रोदन ॥ १०३॥

एत बलि'—यह कहकर; **सेइ विप्रे**—उस ब्राह्मण का; **कैल आलिङ्गन**—उन्होंने आलिंगन किया; **प्रभु-पद**—श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; **धरि'**—पकड़कर; **विप्र**—ब्राह्मण; **करेन**—करता है; **रोदन**—रोदन, रोता।

अनुवाद

यह कहकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस ब्राह्मण का आलिंगन किया, और वह ब्राह्मण महाप्रभु के चरणकमलों को पकड़कर रोने लगा।

तोमा देखि' ताहा हैते द्वि-गुण सुख हय ।
सेइ कृष्ण तुमि,—हेन मोर मने लय ॥ १०४॥

तोमा देखि' ताहा हैते द्वि-गुण सुख हय ।
सेइ कृष्ण तुमि,—हेन मोर मने लय ॥ १०४॥

तोमा देखि'—आपको देखकर; **ताहा हैते**—भगवान् कृष्ण के दर्शन से; **द्वि-गुण**—दुगना; **सुख**—सुख; **हय**—होता है; **सेइ कृष्ण**—वही भगवान् कृष्ण; **तुमि**—आप हैं; **हेन**—ऐसा; **मोर**—मेरा; **मने**—मन; **लय**—समझता है।

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने कहा, "आपको देखकर मेरा सुख दुगना हो गया है। मैं तो समझता हूँ कि आप ही वे भगवान् कृष्ण हैं।"

कृष्ण-स्फूर्त्ये ताँर मन हञाछे निर्मल ।
अतएव प्रभुर तत्त्व जानिल सकल ॥ १०५॥

कृष्ण-स्फूर्त्ये ताँर मन हञाछे निर्मल ।
अतएव प्रभुर तत्त्व जानिल सकल ॥ १०५॥

कृष्ण-स्फूर्त्ये—कृष्ण की स्फूर्ति से; **ताँर**—उसका; **मन**—मन; **हञाछे**—हो गया; **निर्मल**—निर्मल; **अतएव**—अतएव; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **तत्त्व**—तत्त्व; **जानिल**—समझ सका; **सकल**—सब।

अनुवाद

भगवान् कृष्ण के प्रकाशित होने से ब्राह्मण का मन शुद्ध हो गया, अतएव वह श्री चैतन्य महाप्रभु के तत्त्व को पूरी तरह से समझ सका।

তবে মহাপ্রভু তাঁরে করাইল শিক্ষণ ।
এই বাত্‌কাহাঁ না করিহ প্রকাশন ॥১০৬॥

तबे महाप्रभु ताँरे कराइल शिक्षण ।
एइ बात्‌काहाँ ना करिह प्रकाशन ॥ १०६ ॥

तबे—तब; **महाप्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **ताँरे**—ब्राह्मण को; **कराइल**—दी; **शिक्षण**—शिक्षा; **एइ बात्**—यह बात; **काहाँ**—कहीं भी; **ना**—न; **करिह**—करो; **प्रकाशन**—प्रकट।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस ब्राह्मण को भलीभाँति शिक्षा दी, और उससे अनुरोध किया कि वह यह बात किसी से प्रकट नहीं करे कि वे साक्षात् कृष्ण हैं।

সেই বিপ্র মহাপ্রভুর বড় ভক্ত হৈল ।
চারি মাস প্রভু-সঙ্গ কভু না ছাড়িল ॥১০৭॥

सेइ विप्र महाप्रभुर बड़ भक्त हैल ।
चारि मास प्रभु-सङ्ग कभु ना छाड़िल ॥ १०७ ॥

सेइ विप्र—वह ब्राह्मण; **महाप्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **बड़**—परम; **भक्त**—भक्त; **हैल**—हो गया; **चारि मास**—चार मास के लिए; **प्रभु-सङ्ग**—महाप्रभु का संग; **कभु**—कभी भी; **ना**—नहीं; **छाड़िल**—छोड़ा।

अनुवाद

वह ब्राह्मण श्री चैतन्य महाप्रभु का महान् भक्त बन गया और चतुर्मास के चार महीनों तक लगातार उसने उनका साथ नहीं छोड़ा।

এই-মত ভট্ট-গৃহে রহে গৌরচন্দ্র ।
নিরন্তর ভট্ট-সঙ্গে কৃষ্ণ-কথানন্দ ॥১০৮॥

एइ-मत भट्ट-गृहे रहे गौरचन्द्र ।
निरन्तर भट्ट-सङ्गे कृष्ण-कथानन्द ॥ १०८ ॥

एइ-मत—इस तरह; **भट्ट-गृहे**—वेंकट भट्ट के घर में; **रहे**—रहे; **गौरचन्द्र**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **निरन्तर**—निरन्तर; **भट्ट-सङ्गे**—वेंकट भट्ट के साथ; **कृष्ण-कथा-आनन्द**—कृष्ण कथा का दिव्य आनन्द लेते हुए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु वेंकट भट्ट के घर पर रहे और निरन्तर भगवान् कृष्ण के विषय में बातें करते रहते। इस तरह वे परम आनन्दित थे।

श्री-वैष्णव' भट्ट सेवे लक्ष्मी-नारायण ।
ताँर भक्ति देखि' प्रभुर तुष्ट हैल मन ॥ १०९॥

श्री-वैष्णव' भट्ट सेवे लक्ष्मी-नारायण ।
ताँर भक्ति देखि' प्रभुर तुष्ट हैल मन ॥ १०९॥

श्री-वैष्णव—रामानुज सम्प्रदाय का एक भक्त; **भट्ट**—वेंकट भट्ट; **सेवे**—पूजा करता था; **लक्ष्मी-नारायण**—भगवान् नारायण और भाग्य की देवी लक्ष्मी की; **ताँर**—उसकी; **भक्ति**—भक्ति; **देखि'**—देखकर; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **तुष्ट**—तुष्ट; **हैल**—हो गया; **मन**—मन।

अनुवाद

रामानुज सम्प्रदाय का वैष्णव होने के कारण वेंकट भट्ट लक्ष्मी तथा नारायण के अर्चाविग्रह की पूजा करता था। उसकी शुद्ध भक्ति देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न थे।

निरन्तर ताँर सङ्गे हैल सख्य-भाव ।
हास्य-परिहासे दुँहे सख्येर स्वभाव ॥ ११०॥

निरन्तर ताँर सङ्गे हैल सख्य-भाव ।
हास्य-परिहासे दुँहे सख्येर स्वभाव ॥ ११०॥

निरन्तर—निरन्तर; **ताँर सङ्गे**—उसकी संगति में; **हैल**—था; **सख्य-भाव**—सख्य भाव; **हास्य**—हास्य; **परिहासे**—हँसी मजाक में; **दुँहे**—वे दोनों; **सख्येर**—मित्रता का; **स्वभाव**—स्वभाव।

अनुवाद

एक दूसरे के साथ लगातार रहने से श्री चैतन्य महाप्रभु तथा वेंकट भट्ट में धीरे-धीरे मैत्रीभाव स्थापित हो गया। वे कभी मिलकर हँसते और कभी मजाक करते।

প্রভু কহে,——ভট্ট, তোমার লক্ষ্মী-ঠাকুরাণী ।
কান্ত-বক্ষঃ-স্থিতা, পতিব্রতা-শিরোমণি ॥ ১১১ ॥

প্রভু কহে,——ভট্ট, তোমার লক্ষ্মী-ঠাকুরাণী ।
কান্ত-বক্ষঃ-স্থিতা, পতিব্রতা-শিরোমণি ॥ ১১১ ॥

प्रभु कहे—श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; **भट्ट**—मेरे प्रिय भट्टाचार्य; **तोमार**—तुम्हारी; **लक्ष्मी-ठाकुराणी**—लक्ष्मी देवी; **कान्त**—उनके पति का (नारायण); **वक्षः-स्थिता**—वक्ष, स्थल पर स्थित; **पति-व्रता**—पतिव्रता; **शिरोमणि**—सर्वोच्च।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने भट्ट से कहा, "तुम्हारी आराध्य देवी लक्ष्मी सदैव नारायण के वक्षस्थल पर विराजमान रहती हैं, और वे निश्चय ही सृष्टि की सबसे अधिक पतिव्रता स्त्री हैं।

আমার ঠাকুর কৃষ্ণ——গোপ, গো-চারক ।
সাধ্বী হঞা কেনে চাহে তাঁহার সঙ্গম ॥ ১১২ ॥

আমার ঠাকুর কৃষ্ণ——গোপ, গো-চারক ।
সাধ্বী হঞা কেনে চাহে তাঁহার সঙ্গম ॥ ১১২ ॥

आमार ठाकुर—मेरे पूज्य देव; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **गोप**—गोप; **गो-चारक**—गौएँ चरानेवाले; **साध्वी हञा**—पतिव्रता होकर; **केने**—क्यों; **चाहे**—चाहती हैं; **ताँहार**—उनका; **सङ्गम**—संग।

अनुवाद

"किन्तु मेरे स्वामी तो ग्वालबाल श्रीकृष्ण हैं, जो गायों के चराने में लगे रहते हैं। ऐसा क्यों है कि लक्ष्मी ऐसी पतिव्रता स्त्री होते हुए भी मेरे प्रभु का साथ चाहती हैं?

এই লাগি' সুখ-ভোগ ছাড়ি' চির-কাল ।
ব্রত-নিয়ম করি' তপ করিল অপার ॥ ১১৩ ॥

এই লাগি' সুখ-ভোগ ছাড়ি' চির-কাল ।
ব্রত-নিয়ম করি' তপ করিল অপার ॥ ১১৩ ॥

एइ लागि'—इस कारण; **सुख-भोग**—वैकुण्ठ भोग; **छाड़ि'**—छोड़कर; **चिर-काल**—दीर्घकाल तक; **व्रत-नियम**—व्रतों और नियमों का; **करि'**—पालन करके; **तप**—तप; **करिल अपार**—घोर किया।

अनुवाद

"लक्ष्मीजी ने कृष्ण की संगति प्राप्त करने के लिए ही वैकुण्ठ लोक के सारे सुख त्याग दिये और दीर्घकाल तक व्रत-नियम का पालन करके अपार तपस्या की।"

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे
तवाङ्घ्रि-रेणु-स्परशाधिकारः ।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो
विहाय कामान्सु-चिरं धृत-व्रता ॥ ११४॥

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे
तवाङ्घ्रि-रेणु-स्परशाधिकारः ।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो
विहाय कामान्सु-चिरं धृत-व्रता ॥ ११४॥

कस्य—किसका; **अनुभावः**—परिणाम; **अस्य**—नाग (कालिया) का; **न**—नहीं; **देव**—हे प्रभु; **विद्महे**—हम जानते हैं; **तव अङ्घ्रि**—आपके चरणकमल की; **रेणु**—धूलि; **स्पर्श**—स्पर्श के लिए; **अधिकारः**—अधिकार; **यत्**—जो; **वाञ्छया**—इच्छा करने से; **श्रीः**—भाग्य की देवी लक्ष्मी; **ललना**—सर्वश्रेष्ठ महिला; **अचरत्**—किया; **तपः**—तप; **विहाय**—त्यागकर; **कामान्**—सभी इच्छाओं को; **सु-चिरम्**—लम्बे समय तक; **धृत**—नियम पाला; **व्रता**—व्रत।

अनुवाद

तब चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "'हे प्रभु, हम नहीं जानते कि कालिय नाग को किस तरह आपके चरणकमलों की धूलि प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ। इसके लिए तो लक्ष्मीदेवी को भी समस्त इच्छाओं को त्यागकर और व्रत करके सदियों तक तपस्या करनी पड़ी थी। निस्सन्देह, हम नहीं जानते कि किस तरह कालिय नाग को ऐसा सुअवसर मिल सका।'"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.१६.३६) से है जिसमें कालिय नाग की पत्नियों का कथन है।

ভট্ট কহে, কৃষ্ণ-নারায়ণ—একই স্বরূপ ।
কৃষ্ণেতে অধিক লীলা-বৈদগ্ধ্যাদি-রূপ ॥ ১১৫ ॥

भट्ट कहे, कृष्ण-नारायण—एकइ स्वरूप ।
कृष्णेते अधिक लीला-वैदग्ध्यादि-रूप ॥ ११५ ॥

भट्ट कहे—वेंकट भट्ट ने कहा; **कृष्ण-नारायण**—कृष्ण तथा नारायण; **एकइ स्वरूप**—एक ही स्वरूप हैं; **कृष्णेते**—भगवान् कृष्ण में; **अधिक**—अधिक; **लीला**—लीलाएँ; **वैदग्ध्य-आदि-रूप**—क्रीड़ा रस के कारण।

अनुवाद

तब वेंकट भट्ट ने कहा, "भगवान् कृष्ण तथा भगवान् नारायण एक ही रूप हैं, किन्तु कृष्ण की लीलाएँ अपने क्रीडा रस के कारण अधिक आस्वाद्य हैं।

তার স্পর্শে নাহি যায় পতিব্রতা-ধর্ম ।
কৌতুকে লক্ষ্মী চাহেন কৃষ্ণের সঙ্গম ॥ ১১৬ ॥

तार स्पर्शे नाहि याय पतिव्रता-धर्म ।
कौतुके लक्ष्मी चाहेन कृष्णेर सङ्गम ॥ ११६ ॥

तार स्पर्शे—कृष्ण को लक्ष्मी के स्पर्श के कारण; **नाहि**—नहीं; **याय**—भंग होता; **पतिव्रता-धर्म**—पतिव्रता धर्म; **कौतुके**—अत्यन्त आनन्द में; **लक्ष्मी**—लक्ष्मी; **चाहेन**—चाहती हैं; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण की; **सङ्गम**—संगति।

अनुवाद

"चूँकि कृष्ण तथा नारायण एक ही व्यक्ति हैं, अतएव कृष्ण के साथ लक्ष्मी का संग उनके पतिव्रता धर्म को भंग नहीं करता। प्रत्युत यह तो अत्यन्त आनन्द की बात थी कि लक्ष्मीजी ने भगवान् कृष्ण का साथ करना चाहा।

तात्पर्य

यह श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रश्न का उत्तर है, जिससे हमें पता चलता है कि वेंकट भट्ट को सत्य का पता था। उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को बतलाया कि नारायण दिव्य ऐश्वर्य से पूर्ण कृष्ण के ही एक रूप हैं। यद्यपि कृष्ण द्विभुज हैं और नारायण चतुर्भुज हैं, किन्तु उनमें कोई अन्तर नहीं है। वे एक ही व्यक्ति हैं। नारायण कृष्ण जैसे ही सुन्दर हैं, लेकिन कृष्ण की लीलाएँ अधिक आमोदकारी हैं। ऐसा नहीं है कि इन आमोदकारी लीलाओं के कारण कृष्ण नारायण से अलग हो जाते हैं। कृष्ण के साथ संगति करने की लक्ष्मीजी की कामना पूर्णतया स्वाभाविक है। दूसरे शब्दों में, यह समझ में आने वाली बात है कि एक पतिव्रता स्त्री अपने पति का संग उसकी विभिन्न वेशभूषाओं में करना चाहती है। अतएव यदि लक्ष्मीजी कृष्ण के संग रहना चाहती हैं, तो इसकी आलोचना नहीं की जानी चाहिए।

सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि श्रीश-कृष्ण-स्वरूपयोः ।
रसेनोत्कृष्यते कृष्ण-रूपमेषा रस-स्थितिः ॥ ११७॥

सिद्धान्ततः—वास्तव में; **तु**—किन्तु; **अभेदे**—कोई भेद नहीं है; **अपि**—यद्यपि; **श्री-ईश**—लक्ष्मी के पति नारायण; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण के; **स्वरूपयोः**—स्वरूपों में; **रसेन**—दिव्य रसों से; **उत्कृष्यते**—श्रेष्ठ हैं; **कृष्ण-रूपम्**—भगवान् कृष्ण का स्वरूप; **एषा**—यह; **रस-स्थितिः**—रस के आगार।

अनुवाद

वेंकट भट्ट ने आगे कहा, "दिव्य अनुभूति के अनुसार नारायण तथा कृष्ण के स्वरूपों में कोई अन्तर नहीं है। किन्तु कृष्ण में माधुर्य रस के कारण विशेष दिव्य आकर्षण है, अतएव वे नारायण से बढ़कर हैं। यह दिव्य रसों का निर्णय है।'

तात्पर्य

वेंकट भट्ट द्वारा उद्धृत यह श्लोक *भक्तिरसामृतसिन्धु* (१.२.५९) में भी पाया जाता है।

कृष्ण-सङ्गे पतिव्रता-धर्म नहे नाश ।
अधिक लाभ पाइये, आर रास-विलास ॥ ११८॥

कृष्ण-सङ्गे पतिव्रता-धर्म नहे नाश ।
अधिक लाभ पाइये, आर रास-विलास ॥ ११८॥

कृष्ण-सङ्गे—भगवान् कृष्ण की संगति में; **पति-व्रता**—पतिव्रता; **धर्म**—धर्म; **नहे**—नहीं; **नाश**—नष्ट होता; **अधिक**—अधिक; **लाभ**—लाभ; **पाइये**—मिलता है; **आर**—और; **रास-विलास**—रास नृत्य का आनन्द।

अनुवाद

"लक्ष्मीजी ने विचार किया कि उनका पतिव्रता धर्म कृष्ण के साथ उनका सम्बन्ध होने से नष्ट नहीं होगा। प्रत्युत कृष्ण की संगति करने से वे रासनृत्य के लाभ का आस्वादन कर सकेंगी।"

विनोदिनी लक्ष्मीर हय कृष्णे अभिलाष ।
इहाते कि दोष, केने कर परिहास ॥ ११९॥

विनोदिनी लक्ष्मीर हय कृष्णे अभिलाष ।
इहाते कि दोष, केने कर परिहास ॥ ११९॥

विनोदिनी—भोक्ता; **लक्ष्मीर**—भाग्य की देवी का; **हय**—है; **कृष्णे**—भगवान् कृष्ण के लिए; **अभिलाष**—अभिलाषा; **इहाते**—इसमें; **कि**—क्या; **दोष**—दोष; **केने**—क्यों; **कर**—आप करते हो; **परिहास**—परिहास।

अनुवाद

वेंकट भट्ट ने आगे बतलाया, "माता लक्ष्मी दिव्य आनन्द की भोक्ता भी हैं, अतएव यदि उन्होंने कृष्ण के साथ भोग करना चाहा, तो इसमें कौन-सा दोष है? आप इसका मजाक क्यों उड़ा रहे हैं?"

प्रभु कहे,—दोष नाहि, इहा आमि जानि ।
रास ना पाइल लक्ष्मी, शास्त्रे इहा शुनि ॥ १२०॥

प्रभु कहे,—दोष नाहि, इहा आमि जानि ।
रास ना पाइल लक्ष्मी, शास्त्रे इहा शुनि ॥ १२०॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने उत्तर दिया; **दोष नाहि**—दोष नहीं है; **इहा आमि जानि**—मैं यह जानता हूँ; **रास ना पाइल लक्ष्मी**—भाग्य की देवी लक्ष्मी रास-नृत्य में सम्मिलित न हो सकीं; **शास्त्रे इहा शुनि**—हम प्रामाणिक शास्त्रों से यह जानकारी पाते हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "मुझे पता है कि लक्ष्मीजी में कोई दोष नहीं है, फिर भी वे रासनृत्य में प्रविष्ट नहीं हो पाईं। प्रामाणिक शास्त्रों से हम ऐसा सुनते हैं।

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्त-रतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिन-गन्ध-रुचां कुतोऽन्याः ।
रासोत्सवेऽस्य भुज-दण्ड-गृहीत-कण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद्व्रज-सुन्दरीणाम् ॥ १२१ ॥

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्त-रतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिन-गन्ध-रुचां कुतोऽन्याः ।
रासोत्सवेऽस्य भुज-दण्ड-गृहीत-कण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद्व्रज-सुन्दरीणाम् ॥ १२१ ॥

न—नहीं; **अयम्**—यह; **श्रियः**—भाग्य की देवी लक्ष्मी का; **अङ्गे**—वक्षस्थल पर; **उ**—खेद है; **नितान्त-रतेः**—बहुत अंतरंग भाव से सम्बन्धित; **प्रसादः**—कृपा; **स्वः**—स्वर्ग लोकों की; **योषिताम्**—स्त्रियों का; **नलिन**—कमल की; **गन्ध**—गंध; **रुचाम्**—और शारीरिक चमक; **कुतः**—बहुत कम; **अन्याः**—अन्य; **रास-उत्सवे**—रास नृत्य के उत्सव में; **अस्य**—भगवान् श्रीकृष्ण का; **भुज-दण्ड**—भुजाओं से; **गृहीत**—आलिंगित; **कण्ठ**—उनकी गर्दनें; **लब्ध-आशिषाम्**—जिसने यह आशिष पाई; **यः**—जो; **उदगात्**—प्रकट हो गया; **व्रज-सुन्दरीणाम्**—व्रजभूमि की सुन्दर गोपियों का।

अनुवाद

"'जब भगवान् श्रीकृष्ण रासलीला में गोपियों के साथ नृत्य कर रहे थे, तब उन्होंने गोपियों को अपनी बाहों में भरकर उनका आलिंगन किया। यह दिव्य कृपा लक्ष्मी या वैकुण्ठ की अन्य प्रेयसियों को प्राप्त नहीं हो पाई। न ही स्वर्गलोक की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियों ने, जिनकी शारीरिक कान्ति तथा सुगन्ध कमल-पुष्प जैसी होती हैं, कभी इसकी कल्पना की। तो

भला संसारी स्त्रियों के विषय में क्या कहा जाए, चाहे वे भौतिक अनुमान से कितनी ही सुन्दर क्यों न हों?'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.४७.६०) का है।

लक्ष्मी केने ना पाइल, इहार कि कारण ।
तप करि' कैछे कृष्ण पाइल श्रुति-गण ॥ १२२॥

लक्ष्मी केने ना पाइल, इहार कि कारण ।
तप करि' कैछे कृष्ण पाइल श्रुति-गण ॥ १२२॥

लक्ष्मी—लक्ष्मी ने; **केने**—क्यों; **ना**—नहीं; **पाइल**—पाया; **इहार**—इसका; **कि**—क्या; **कारण**—कारण; **तप करि'**—कठिन तप करके; **ऐछे**—कैसे; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **पाइल**—पाया; **श्रुति-गण**—श्रुति, वैदिक अधिकारी।

अनुवाद

"किन्तु क्या आप मुझे बता सकेंगे कि लक्ष्मी रासनृत्य में क्यों प्रवेश नहीं पा सकीं? वैदिक ज्ञान के अधिकारी नृत्य में प्रवेश करके कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त कर सके।

निभृत-मरून्मनोऽक्ष-दृढ़-योग-युजो हृदि यन्
मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् ।
स्त्रिय उरगेन्द्र-भोग-भुज-दण्ड-विषक्त-धियो
वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रि-सरोज-सुधाः ॥ १२३॥

निभृत-मरुन्मनोऽक्ष-दृढ़-योग-युजो हृदि यन्
मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् ।
स्त्रिय उरगेन्द्र-भोग-भुज-दण्ड-विषक्त-धियो
वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रि-सरोज-सुधाः ॥ १२३॥

निभृत—नियंत्रित; **मरुत्**—प्राणवायु; **मनः**—मन; **अक्ष**—इन्द्रियाँ; **दृढ़**—दृढ़; **योग**—योगाभ्यास में; **युजः**—जो लगे हैं; **हृदि**—हृदय के भीतर; **यत्**—जो; **मुनयः**—मुनि गण; **उपासते**—पूजा करते हैं; **तत्**—वह; **अरयः**—शत्रु; **अपि**—भी; **ययुः**—पाते हैं; **स्मरणात्**—स्मरण करके; **स्त्रियः**—गोपियाँ; **उरग-इन्द्र**—सांपों की; **भोग**—शरीरों की भाँति; **भुज**—भुजाएँ; **दण्ड**—दण्डों की भाँति; **विषक्त**—लिपटी हुई; **धियः**—जिनके मन; **वयम् अपि**—हम

भी; **ते**—आपके; **समाः**—उनके समान; **सम-दृशः**—वैसी ही भावनाओं वाले; **अङ्घ्रि-सरोज**—चरणकमल का; **सुधाः**—अमृत।

अनुवाद

"'बड़े बड़े ऋषि योगाभ्यास तथा श्वास-नियन्त्रण द्वारा मन तथा इन्द्रियों को जीतते हैं। इस तरह योग में रत रहकर तथा अपने हृदयों में परमात्मा का दर्शन करते हुए वे निर्विशेष ब्रह्म में प्रवेश करते हैं। किन्तु भगवान् के शत्रु भी मात्र उनके बारे में सोचने के द्वारा वही पद प्राप्त करते हैं। किन्तु कृष्ण के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर व्रज की गोपियाँ कृष्ण तथा उनकी सर्प जैसी भुजाओं का आलिंगन चाहती हैं। गोपियों को अन्ततः भगवान् के चरणकमलों का अमृत आस्वादन करने को मिला। इसी प्रकार हम उपनिषद् भी गोपियों के चरणचिह्नों का अनुगमन करते हुए भगवान् के चरणकमलों का अमृत आस्वादन सकते हैं।'"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.८७.२३) से है।

श्रुति पाय, लक्ष्मी ना पाय, इथे कि कारण ।
भट्ट कहे,—इहा प्रवेशिते नारे मोर मन ॥ १२४॥

श्रुति पाय, लक्ष्मी ना पाय, इथे कि कारण ।
भट्ट कहे,—इहा प्रवेशिते नारे मोर मन ॥ १२४॥

श्रुति पाय—वैदिक अधिकारी (श्रुतियाँ) ने प्रवेश पाया; **लक्ष्मी ना पाय**—और लक्ष्मी को प्रवेश न मिल सका; **इथे कि कारण**—इसका क्या कारण है; **भट्ट कहे**—वेंकट भट्ट ने उत्तर दिया; **इहा**—इसमें; **प्रवेशिते**—प्रवेश पाना; **नारे**—सम्भव नहीं; **मोर**—मेरे; **मन**—मन के लिए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा यह पूछे जाने पर कि रासनृत्य में लक्ष्मी क्यों प्रवेश नहीं कर पाईं, जबकि वैदिक ज्ञान के अधिकारी कर पाये, तब वेंकट भट्ट ने उत्तर दिया, "मैं इस बर्ताव के रहस्य में प्रवेश नहीं कर सकता।"

आमि जीव,—क्षुद्र-बुद्धि, सहजे अस्थिर ।
ईश्वरेर लीला—कोटि-समुद्र-गम्भीर ॥ १२५ ॥

आमि जीव,—क्षुद्र-बुद्धि, सहजे अस्थिर ।
ईश्वरेर लीला—कोटि-समुद्र-गम्भीर ॥ १२५ ॥

आमि जीव—मैं एक सामान्य जीव हूँ; **क्षुद्र-बुद्धि**—सीमित बुद्धि वाला; **सहजे अस्थिर**—आसानी से उत्तेजित हो जाने वाला; **ईश्वरेर लीला**—भगवान् की लीलाएँ; **कोटि-समुद्र**—लाखों समुद्रों की भाँति; **गम्भीर**—गहन।

अनुवाद

वेंकट भट्ट ने तब स्वीकार किया, "मैं एक सामान्य मनुष्य हूँ। मेरी बुद्धि अत्यन्त सीमित है और मैं सरलता से विचलित हो जाता हूँ, अतएव मेरा मन भगवान् की लीलाओं के अगाध समुद्र में प्रवेश नहीं कर पाता।

तुमि साक्षाज्जेइ कृष्ण, जान निज-कर्म ।
यारे जानाह, सेइ जाने तोमार लीला-मर्म ॥ १२६ ॥

तुमि साक्षात्सेइ कृष्ण, जान निज-कर्म ।
यारे जानाह, सेइ जाने तोमार लीला-मर्म ॥ १२६ ॥

तुमि—आप; **साक्षात्**—साक्षात्; **सेइ**—वे; **कृष्ण**—पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्; **जान**—आप जानते हैं; **निज-कर्म**—अपने कार्यकलाप; **यारे जानाह**—और जिसको आप बताते हैं; **सेइ**—वह व्यक्ति; **जाने**—जानता है; **तोमार**—आपकी; **लीला-मर्म**—लीलाओं का मर्म (भेद)।

अनुवाद

"आप साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं। आप ही अपने कार्यों के प्रयोजन को समझते हैं, या फिर जिसे आप यह ज्ञान प्रदान करें, वह भी आपकी लीलाओं को समझ सकता है।"

तात्पर्य

स्थूल कुंठित इन्द्रियों से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण को तथा उनकी लीलाओं को नहीं जाने जा सकते। भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति करके अपनी इन्द्रियों को निर्मल बनाना आवश्यक है। जब भगवान् प्रसन्न होते हैं और अपने आपको प्रकट करते हैं, तब भगवान् के दिव्य रूप, नाम, गुण तथा लीलाओं

को समझा जा सकता है। इसकी पुष्टि *कठ उपनिषद* (२.२३) तथा *मुण्डक उपनिषद* (३.२.३) द्वारा हुई है— *यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैषआत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्*—"जिस पर पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की कृपा हो जाती है, वही उनके दिव्य नाम, गुण, रूप तथा लीलाओं को समझ सकता है।"

प्रभु कहे,—कृष्णेर एक स्वभाव विलक्षण ।
स्व-माधुर्ये सर्व चित्त करे आकर्षण ॥ १२७॥

प्रभु कहे,—कृष्णेर एक स्वभाव विलक्षण ।
स्व-माधुर्ये सर्व चित्त करे आकर्षण ॥ १२७॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने उत्तर दिया; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण का; **एक**—एक; **स्वभाव**—स्वभाव; **विलक्षण**—विशेष; **स्व-माधुर्ये**—उनका माधुर्य प्रेम; **सर्व**—सभी; **चित्त**—हृदयों को; **करे**—करते हैं; **आकर्षण**—आकर्षित।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा, "भगवान् कृष्ण का एक विशिष्ट स्वभाव है। वे अपने माधुर्य रस द्वारा हर एक के चित्त को आकर्षित कर लेते हैं।

व्रज-लोकेर भावे पाइये ताँहार चरण ।
ताँरे ईश्वर करि' नाहि जाने व्रज-जन ॥ १२८॥

व्रज-लोकेर भावे पाइये ताँहार चरण ।
ताँरे ईश्वर करि' नाहि जाने व्रज-जन ॥ १२८॥

व्रज-लोकेर—गोलोक वृन्दावन के निवासियों के; **भावे**—भावावेश में; **पाइये**—मिलते हैं; **ताँहार**—भगवान् कृष्ण के; **चरण**—चरणकमल; **ताँरे**—उनको; **ईश्वर**—ईश्वर; **करि'**—स्वीकार करके; **नाहि**—नहीं; **जाने**—जानते; **व्रज-जन**—व्रजभूमि के निवासी।

अनुवाद

"व्रजलोक या गोलोक वृन्दावन के निवासियों के चरण चिह्नों का अनुसरण करके मनुष्य भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों का आश्रय प्राप्त सकता है। किन्तु उस लोक के निवासी जानते नहीं हैं कि कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

কেহ তাঁরে পুত্র-জ্ঞানে উদূখলে বান্ধে ।
কেহ সখা-জ্ঞানে জিনি' চড়ে তাঁর কান্ধে ॥ ১২৯॥

কেহ তাঁরে পুত্র-জ্ঞানে উদুখলে বান্ধে ।
কেহ সখা-জ্ঞানে জিনি' চড়ে তাঁর কান্ধে ॥ ১২৯॥

কেহ—কোই; **তাঁরে**—উনকো; **পুত্র-জ্ঞানে**—পুত্র মানকর; **উদুখলে**—এক বড়ী ঊখল মেঁ; **বান্ধে**—বাংধ দেতা হৈ; **কেহ**—কোই; **সখা-জ্ঞানে**—সখা মানকর; **জিনি'**—জীতকর; **চড়ে**—চঢ় জাতা হৈ; **তাঁর**—উনকে; **কান্ধে**—কন্ধে পর।

অনুবাদ

"বহাঁ কোই উন্হেং পুত্র কে রূপ মেং স্বীকার করকে কভী-কভী উন্হেং ওখলী সে বাঁধ দেতা হৈ। কোই উন্হেং অপনা অন্তরংগ সখা মানকর, উন পর বিজয় পাকর উনকে কন্ধোং পর চঢ় জাতা হৈ।

'ব্রজেন্দ্র-নন্দন' বলি' তাঁরে জানে ব্রজ-জন ।
ঐশ্বর্য-জ্ঞানে নাহি কোন সম্বন্ধ-মানন ॥ ১৩০॥

'ব্রজেন্দ্র-নন্দন' বলি' তাঁরে জানে ব্রজ-জন ।
ঐশ্বর্য্য-জ্ঞানে নাহি কোন সম্বন্ধ-মানন ॥ ১৩০॥

ব্রজেন্দ্র-নন্দন—নন্দ মহারাজ কে পুত্র; **বলি'**—কে রূপ মেং; **তাঁরে**—উনকো; **জানে**—জানতে হৈং; **ব্রজ-জন**—ব্রজভূমি কে নিবাসী; **ঐশ্বর্য্য-জ্ঞানে**—আদর ভাব মেং; **নাহি**—নহীং হৈ; **কোন**—কোই; **সম্বন্ধ**—সম্বন্ধ; **মানন**—বারে মেং।

অনুবাদ

"ব্রজভূমি কে নিবাসী কৃষ্ণ কো ব্রজভূমি কে রাজা মহারাজ নন্দ কে পুত্ররূপ মেং জানতে হৈং, ঔর বে মানতে হৈং কি ঐশ্বর্য-রস মেং ভগবান্ কে সাথ কোই সম্বন্ধ নহীং হো সকতা।

ব্রজ-লোকের ভাবে যেই করয়ে ভজন ।
সেই জন পায় ব্রজে ব্রজেন্দ্র-নন্দন ॥ ১৩১॥

ব্রজ-লোকের ভাবে যেই করয়ে ভজন ।
সেই জন পায় ব্রজে ব্রজেন্দ্র-নন্দন ॥ ১৩১॥

व्रज-लोकेर—व्रजभूमि के निवासियों के; **भावे**—भाव में; **येइ**—जो; **करये**—करता है; **भजन**—पूजा; **सेइ जन**—वह व्यक्ति; **पाय**—पाता है; **व्रजे**—व्रज में; **व्रजेन्द्र-नन्दन**—नन्द महाराज के पुत्र भगवान् कृष्ण को।

अनुवाद

"जो व्यक्ति व्रजभूमि के निवासियों के चरणचिह्नों का अनुसरण करता है, वह भगवान् को व्रज के दिव्यलोक में प्राप्त करता है। वहाँ पर वे महाराज नन्द के पुत्र के रूप में विख्यात हैं।"

तात्पर्य

व्रजभूमि या गोलोक वृन्दावन के निवासी कृष्ण को महाराज नन्द के पुत्र के रूप में जानते हैं। वे उन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में नहीं जानते, जैसे सामान्य लोग जानते हैं। भगवान् हर एक के सर्वोपरि पालक हैं और समस्त पुरुषों में प्रधान पुरुष हैं। व्रजभूमि में कृष्ण निश्चित रूप से प्रेम के केन्द्रबिन्दु हैं, किन्तु वहाँ उन्हें कोई पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में नहीं जानता। प्रत्युत वे उन्हें मित्र, पुत्र, प्रेमी या स्वामी के रूप में जानते हैं। प्रत्येक दशा में कृष्ण ही केन्द्रबिन्दु हैं। व्रजभूमि के निवासी भगवान् से दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य रस द्वारा सम्बन्धित हैं। भक्ति में लगा हुआ व्यक्ति उन्हें इनमें से किसी भी दिव्य सम्बन्ध में अर्थात् रस में स्वीकार कर सकता है। जब ऐसा व्यक्ति पूर्णावस्था को प्राप्त कर लेता है, तब वह अपने शुद्ध आध्यात्मिक स्वरूप में कृष्ण के पास लौट जाता है।

नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिका-सुतः ।
ज्ञानिनां चात्म-भूतानां यथा भक्ति-मतामिह ॥ १३२॥

नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिका-सुतः ।
ज्ञानिनां चात्म-भूतानां यथा भक्ति-मतामिह ॥ १३२॥

न—नहीं; **अयम्**—यह भगवान् श्रीकृष्ण; **सुख-आपः**—सुगमता से उपलब्ध; **भगवान्**—पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; **देहिनाम्**—भौतिक व्यक्तियों के लिए, जो स्वयं को शरीर मानते हैं; **गोपिका-सुतः**—माता यशोदा का पुत्र; **ज्ञानिनाम्**—ज्ञानियों (मानसिक तर्क करने वालों) के लिए; **च**—और; **आत्म-भूतानाम्**—घोर तपस्या करनेवाले व्यक्तियों के लिए; **यथा**—यथा; **भक्ति-मताम्**—स्वतःस्फूर्त भक्ति में लगे व्यक्तियों के लिए; **इह**—इस संसार में।

अनुवाद

तब चैतन्य महाप्रभु ने प्रमाण दिया, "'यशोदा-पुत्र पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण उन भक्तों को सुलभ हैं, जो रागानुगा भक्ति में लगे हैं, किन्तु वे ज्ञानियों, तपस्या में रत आत्म-साक्षात्कार के लिए प्रयत्न करने वालों या आत्मा और शरीर को एक मानने वालों को सहज सुलभ नहीं हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१०.९.२१) से लिया गया है और *मध्यलीला* (८.२२७) में भी आया है।

श्रुति-गण गोपी-गणेर अनुगत हञा ।
व्रजेश्वरी-सुत भजे गोपी-भाव लञा ॥ १३३॥

श्रुति-गण गोपी-गणेर अनुगत हञा ।
व्रजेश्वरी-सुत भजे गोपी-भाव लञा ॥ १३३॥

श्रुति-गण—वैदिक मंत्रों के अधिकारी; **गोपी-गणेर**—गोपियों के; **अनुगत हञा**—चरणचिह्नों पर चलकर; **व्रजेश्वरी-सुत**—माता यशोदा के पुत्र; **भजे**—पूजा करते हैं; **गोपी-भाव**—गोपियों के भाव में; **लञा**—स्वीकार करके।

अनुवाद

"वैदिक साहित्य के अधिकारियों ने, जो श्रुतिगण कहलाते हैं, गोपी-भाव में कृष्ण की पूजा की और उनके चरणचिह्नों का अनुसरण किया।

तात्पर्य

वैदिक साहित्य के अधिकारियों ने, जो *श्रुति-गण* कहलाते हैं, भगवान् कृष्ण के रासनृत्य में प्रवेश करना चाहा; अतः उन्होंने गोपियों के भाव में भगवान् की पूजा करनी प्रारम्भ की। प्रारम्भ में वे असफल रहे। जब गोपियों के भाव में मात्र कृष्ण का चिन्तन करने से वे नृत्य में प्रवेश नहीं कर पाये, तो उन्होंने वास्तव में गोपियों जैसा शरीर धारण कर लिया। यहाँ तक कि उन्होंने गोपियों के ही समान व्रजभूमि में जन्म भी लिया और फलस्वरूप वे गोपियों के प्रेम-भाव में निमग्न हो गये। इस तरह उन्हें भगवान् की रासलीला में प्रवेश करने को मिला।

বাহ্যান্তরে গোপী-দেহ ব্রজে যবে পাইল ।
সেই দেহে কৃষ্ণ-সঙ্গে রাস-ক্রীড়া কৈল ॥ ১৩৪॥

বাহ্যান্তরে গোপী-দেহ ব্রজে য়বে পাইল ।
সেই দেহে কৃষ্ণ-সঙ্গে রাস-ক্রীড়া কৈল ॥ ১৩৪॥

बाह्य-अन्तरे—बाह्य तथा आन्तरिक रूप से; **गोपी-देह**—गोपी का शरीर; **व्रजे**—व्रजभूमि में; **य्रबे**—जब; **पाइल**—उन्हें मिला; **सेइ देहे**—उस शरीर में; **कृष्ण-सङ्गे**—कृष्ण के साथ; **रास-क्रीड़ा**—रास नृत्य की लीलाएँ; **कैल**—कीं।

अनुवाद

"वैदिक स्तोत्रों के साकार अधिकारियों ने गोपियों जैसा शरीर प्राप्त किया और व्रजभूमि में जन्म लिया। तब उन शरीरों में उन्हें भगवान् की रासलीला नृत्य में प्रविष्ट होने दिया गया।

গোপ-জাতি কৃষ্ণ, গোপী—প্রেয়সী তাঁহার ।
দেবী বা অন্য স্ত্রী কৃষ্ণ না করে অঙ্গীকার ॥ ১৩৫॥

গোপ-জাতি কৃষ্ণ, গোপী—প্রেয়সী তাঁহার ।
দেবী বা অন্য স্ত্রী কৃষ্ণ না করে অঙ্গীকার ॥ ১৩৫॥

गोप-जाति—गोप-समाज; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **गोपी**—व्रजभूमि की युवतियाँ, गोपियाँ; **प्रेयसी**—सर्वप्रिया; **ताँहार**—उनकी; **देवी**—देवताओं की पत्नियाँ; **वा**—अथवा; **अन्य**—अन्य; **स्त्री**—महिलाएँ; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण; **ना**—नहीं; **करे**—करते; **अङ्गीकार**—स्वीकार।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण गोप जाति के हैं, और गोपियाँ कृष्ण की सर्वप्रिय प्रेमिकाएँ हैं। यद्यपि स्वर्गलोक के निवासियों की पत्नियाँ भौतिक जगत् में सर्वाधिक ऐश्वर्यवान हैं, किन्तु न तो वे, न भौतिक जगत् की अन्य स्त्रियाँ, कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त कर सकती हैं।

লক্ষ্মী চাহে সেই দেহে কৃষ্ণের সঙ্গম ।
গোপিকা-অনুগা হঞা না কৈল ভজন ॥ ১৩৬॥

लक्ष्मी चाहे सेइ देहे कृष्णेर सङ्गम ।
गोपिका-अनुगा हञा ना कैल भजन ॥ १३६ ॥

लक्ष्मी—लक्ष्मीदेवी; **चाहे**—चाहती हैं; **सेइ**—उसी; **देहे**—शरीर में; **कृष्णेर सङ्गम**—कृष्ण का संग; **गोपिका**—गोपियों की; **अनुगा**—अनुगामी; **हञा**—होकर; **ना**—नहीं; **कैल**—की; **भजन**—पूजा।

अनुवाद

"लक्ष्मीजी कृष्ण के साथ भोग करना चाहती थीं, किन्तु साथ ही साथ लक्ष्मी के रूप में अपना आध्यात्मिक शरीर बनाये रखना चाहती थीं। किन्तु उन्होंने कृष्ण की पूजा करने में गोपियों के पदचिह्नों का अनुसरण नहीं किया।

অন্য দেহে না পাইয়ে রাস-বিলাস ।
অতএব 'নায়ং' শ্লোক কহে বেদ-ব্যাস ॥ ১৩৭ ॥

अन्य देहे ना पाइये रास-विलास ।
अतएव 'नायं' श्लोक कहे वेद-व्यास ॥ १३७ ॥

अन्य देहे—गोपियों के शरीर से अतिरिक्त देह में; **ना**—नहीं; **पाइये**—मिलता; **रास-विलास**—रास नृत्य की लीलाएँ; **अतएव**—अतएव; **नायम्**—*नायम* शब्द से आरम्भ करके; **श्लोक**—संस्कृत श्लोक; **कहे**—कहते हैं; **वेद-व्यास**—द्वैपायन वेदव्यास।

अनुवाद

"वैदिक साहित्य के सर्वोपरि अधिकारी व्यासदेव ने *नायं सुखापो भगवान्* से प्रारम्भ होने वाले श्लोक की रचना की, क्योंकि गोपियों के शरीर के अतिरिक्त अन्य कोई शरीर में व्यक्ति रासलीला नृत्य में प्रवेश नहीं कर सकता।"

तात्पर्य

इस श्लोक से *भगवद्गीता* (९.२५) के निम्नलिखित श्लोक की पुष्टि होती है :

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥

भगवान् कृष्ण ने कहा—"देवताओं की पूजा करने वाले देवताओं के मध्य जन्म लेंगे, पूर्वजों की पूजा करने वाले पूर्वजों के पास जाते हैं, भूतप्रेतों की पूजा करने वाले उन्हीं के बीच जन्म लेंगे और जो मेरी पूजा करते हैं, वे मेरे साथ रहेंगे।"

इस भौतिक जगत् में प्रत्येक बद्धात्मा अपना भौतिक शरीर बारम्बार बदलता है, किन्तु जब आत्मा सारे भौतिक आवरणों से शुद्ध हो जाता है, तब उसके दोबारा भौतिक शरीर पाने का कोई अवसर नहीं रहता। ऐसा जीव अपने उस मौलिक आध्यात्मिक स्वरूप में बना रहता है, जिसे कृष्णभावनामृत के अभ्यास के माध्यम से कृष्ण को वास्तविक रूप में समझने से ही पाना सम्भव है। जैसा कृष्ण ने *भगवद्गीता* (४.९) में कहा है :

जन्म कर्म च मे दिव्यं एवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

"हे अर्जुन, जो मेरे आविर्भाव तथा कार्यकलापों के दिव्य स्वभाव को जानता है, वह इस शरीर को त्यागने पर इस भौतिक संसार में पुनः जन्म नहीं लेता है, प्रत्युत मेरे शाश्वत धाम को प्राप्त करता है।"

मनुष्य अपने मूल आध्यात्मिक शरीर को प्राप्त करके ही वैकुण्ठ में प्रवेश कर सकता है। जहाँ तक भगवान् की रासलीला का सम्बन्ध है, इस भौतिक जगत् में रहने वाले के लिए उनके नृत्यों का अनुकरण करने की चेष्टा करना व्यर्थ है। रासलीला में प्रवेश पाने के लिए गोपियों जैसा आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करना आवश्यक है। *नायं सुखापो* श्लोक में भक्तों को *भक्तिमत्* कहा गया है अर्थात् वे भक्ति में पूर्णतः लगे रहते हैं और भौतिक कल्मष से रहित होते हैं। मात्र कृष्ण की रासलीला का अनुकरण करने से या अपने आपको सखी समझने और उसकी तरह वेश बनाने से कोई रासलीला में प्रवेश नहीं कर सकता। कृष्ण की रासलीला नितान्त आध्यात्मिक है। भौतिक कल्मष से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। अतएव कृत्रिम भौतिक साधनों से कृष्ण-लीलाओं में कोई प्रवेश नहीं पा सकता। *नायं सुखापो* श्लोक का यही उपदेश है और इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

পূর্বে ভট্টের মনে এক ছিল অভিমান ।
'শ্রী-নারায়ণ' হয়েন স্বয়ং-ভগবান্ ॥ ১৩৮॥

পূর্বে ভট্টের মনে এক ছিল অভিমান ।
'শ্রী-নারায়ণ' হয়েন স্বয়ং-ভগবান্ ॥ ১৩৮॥

পূর্বে—ইससे पूर्व; **ভট্টের**—वेंकट भट्ट के; **মনে**—मन में; **এক**—एक; **ছিল**—थी; **অভিমান**—धारणा; **শ্রী-নারায়ণ**—नारायण के रूप में भगवान्; **হয়েন**—हैं; **স্বয়ম্**—स्वयं; **ভগবান্**—भगवान्।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा की गई इस विवेचना के पूर्व वेंकट भट्ट मानते थे कि श्री नारायण ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

তাঁহার ভজন সর্বোপরি-কক্ষা হয় ।
শ্রী-বৈষ্ণবে'র ভজন এই সর্বোপরি হয় ॥ ১৩৯॥

তাঁহার ভজন সর্বোপরি-কক্ষা হয় ।
শ্রী-বৈষ্ণবে'র ভজন এই সর্বোপরি হয় ॥ ১৩৯॥

তাঁহার ভজন—नारायण की पूजा; **সর্ব-উপরি**—सर्वोच्च; **কক্ষা**—स्तर; **হয়**—है; **শ্রী-বৈষ্ণবের**—श्री रामानुजाचार्य के अनुयायियों की; **ভজন**—पूजा; **এই**—यह; **সর্ব-উপরি হয়**—सर्वश्रेष्ठ है।

अनुवाद

इस प्रकार सोचते हुए वेंकट भट्ट का विश्वास था कि नारायण की पूजा ही सर्वोपरि पूजा है—भक्ति की अन्य सभी विधियों से सर्वोपरि है, क्योंकि इसका अनुसरण रामानुजाचार्य के श्री वैष्णव शिष्य करते थे।

এই তাঁর গর্ব প্রভু করিতে খণ্ডন ।
পরিহাস-দ্বারে উঠায় এতেক বচন ॥ ১৪০॥

এই তাঁর গর্ব প্রভু করিতে খণ্ডন ।
পরিহাস-দ্বারে উঠায় এতেক বচন ॥ ১৪০॥

এই—यह; **তাঁর**—वेंकट भट्ट का; **গর্ব**—गर्व; **প্রভু**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **করিতে**

खण्डन—टुकड़े टुकड़े करने के लिए; **परिहास-द्वारे**—परिहास के बहाने; **उठाय**—उठाते हैं; **एतेक**—कई; **वचन**—शब्द।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु वेंकट भट्ट की इस भ्रान्ति को समझ गये थे, और इसे सुधारने के उद्देश्य से ही महाप्रभु इस प्रकार परिहास में इतना बोल रहे थे।

প্রভু কহে,—ভট্ট, তুমি না করিহ সংশয় ।
'স্বয়ং-ভগবান্' কৃষ্ণ এই ত' নিশ্চয় ॥ ১৪১ ॥

প্রভু কহে,—ভট্ট, তুমি না করিহ সংশয় ।
'স্বয়ং-ভগবান্' কৃষ্ণ এই ত' নিশ্চয় ॥ ১৪১ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **भट्ट**—प्रिय वेंकट भट्ट; **तुमि**—तुम; **ना करिह**—नहीं करो; **संशय**—सन्देह; **स्वयम्-भगवान्**—पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; **कृष्ण**—कृष्ण हैं; **एइ त' निश्चय**—यही निष्कर्ष है।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने कहा, "हे वेंकट भट्ट, अब अधिक संशय मत करो। कृष्ण ही स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं, और यही वैदिक साहित्य का निर्णय है।

কৃষ্ণের বিলাস-মূর্তি—শ্রী-নারায়ণ ।
অতএব লক্ষ্মী-আদ্যের হরে তেঁহ মন ॥ ১৪২ ॥

কৃষ্ণের বিলাস-মূর্তি—শ্রী-নারায়ণ ।
অতএব লক্ষ্মী-আদ্যের হরে তেঁহ মন ॥ ১৪২ ॥

कृष्णेर विलास-मूर्ति—श्री-नारायण ।
अतएव लक्ष्मी-आद्येर हरे तेंह मन ॥ १४२ ॥

कृष्णेर—भगवान् कृष्ण की; **विलास-मूर्ति**—विलास मूर्ति; **श्री-नारायण**—भगवान् नारायण; **अतएव**—अतएव; **लक्ष्मी-आद्येर**—लक्ष्मी आदि देवियों का; **हरे**—आकर्षित करते हैं; **तेंह**—वे (भगवान् नारायण); **मन**—मन।

अनुवाद

"कृष्ण का ऐश्वर्यशाली रूप, भगवान् नारायण, लक्ष्मी तथा उनकी सखियों के मन को आकृष्ट करता है।

एते चांश-कलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम् ।
इन्द्रारि-व्याकुलं लोकं मृड़यन्ति युगे युगे ॥ १४३॥

एते चांश-कलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम् ।
इन्द्रारि-व्याकुलं लोकं मृड़यन्ति युगे युगे ॥ १४३॥

एते—ये; **च**—और; **अंश**—अंश; **कलाः**—अंशों के अंश; **पुंसः**—पुरुष अवतारों के; **कृष्णः**—भगवान् कृष्ण; **तु**—किन्तु; **भगवान्**—पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; **स्वयम्**—स्वयं; **इन्द्र-अरि**—इन्द्रदेव के शत्रु; **व्याकुलम्**—व्याकुल; **लोकम्**—संसार; **मृड़यन्ति**—प्रसन्न करते हैं; **युगे युगे**—प्रत्येक युग में।

अनुवाद

"'ईश्वर के ये सारे अवतार, पुरुषावतार के अंश या कला हैं। किन्तु कृष्ण साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। जब-जब इन्द्र के शत्रुओं द्वारा यह जगत् व्याकुल होता है, तब-तब हर युग में वे अपने विभिन्न स्वरूपों द्वारा संसार की रक्षा करते हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (१.३.२८) से लिया गया है।

नारायण हैते कृष्णेर असाधारण गुण ।
अतएव लक्ष्मीर कृष्णे तृष्णा अनुक्षण ॥ १४४॥

नारायण हैते कृष्णेर असाधारण गुण ।
अतएव लक्ष्मीर कृष्णे तृष्णा अनुक्षण ॥ १४४॥

नारायण हैते—नारायण से अधिक; **कृष्णेर**—भगवान् कृष्ण के; **असाधारण गुण**—असाधारण गुण; **अतएव**—अतएव; **लक्ष्मीर**—लक्ष्मी की; **कृष्णे**—कृष्ण में; **तृष्णा**—इच्छा; **अनुक्षण**—सदैव।

अनुवाद

"चूँकि कृष्ण में ऐसे चार असाधारण गुण हैं, जो नारायण में नहीं हैं, अतएव लक्ष्मीजी सदैव उनका संग चाहती हैं।

तात्पर्य

भगवान् नारायण में ६० दिव्य गुण होते हैं। किन्तु भगवान् कृष्ण में इनके अतिरिक्त भी चार असाधारण दिव्य गुण पाये जाते हैं। ये हैं—(१) समुद्र के

तुल्य उनकी अद्भुत लीलाएँ, (२) माधुर्य प्रेम में सर्वश्रेष्ठ भक्तों (गोपियों) से घिरा होना, (३) कृष्ण का वंशीवादन, जिसकी ध्वनि तीनों लोकों को आकृष्ट करने वाली है तथा (४) कृष्ण का असाधारण सौन्दर्य, जो तीनों लोकों के परे है। भगवान् कृष्ण का सौन्दर्य अनुपम और अपार है।

तुमि ये पड़िला श्लोक, से हय प्रमाण ।
सेइ श्लोके आइसे 'कृष्ण—स्वयं भगवान्' ॥ १४५ ॥

तुमि ये पड़िला श्लोक, से हय प्रमाण ।
सेइ श्लोके आइसे 'कृष्ण—स्वयं भगवान्' ॥ १४५ ॥

तुमि—तुमने; **ये**—जो; **पड़िला**—पढ़ा है; **श्लोक**—श्लोक; **से**—वह; **हय**—है; **प्रमाण**—प्रमाण; **सेइ श्लोके**—उस श्लोक में; **आइसे कृष्ण**—कृष्ण हैं; **स्वयम् भगवान्**—स्वयं भगवान्।

अनुवाद

"तुमने *सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि* से आरम्भ होने वाला श्लोक सुनाया है। यह श्लोक ही साक्षी है कि कृष्ण स्वयं पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि श्रीश-कृष्ण-स्वरूपयोः ।
रसेनोत्कृष्यते कृष्ण-रूपमेषा रस-स्थितिः ॥ १४६ ॥

सिद्धान्ततस्त्वभेदेऽपि श्रीश-कृष्ण-स्वरूपयोः ।
रसेनोत्कृष्यते कृष्ण-रूपमेषा रस-स्थितिः ॥ १४६ ॥

सिद्धान्ततः—वास्तव में; **तु**—किन्तु; **अभेदे**—कोई भेद नहीं; **अपि**—यद्यपि; **श्री-ईश**—लक्ष्मी के पति श्री नारायण; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण के; **स्वरूपयोः**—रूपों में; **रसेन**—दिव्य रसों से; **उत्कृष्यते**—श्रेष्ठ हैं; **कृष्ण-रूपम्**—भगवान् कृष्ण का रूप; **एषा**—यह; **रस-स्थितिः**—आनन्द का आगार।

अनुवाद

"'दिव्य अनुभूति के अनुसार कृष्ण तथा नारायण के रूपों में कोई अन्तर नहीं है। फिर भी माधुर्य रस के कारण कृष्ण में विशिष्ट दिव्य आकर्षण है। फलतः वे नारायण से बढ़कर हैं। यह दिव्य रसों का निष्कर्ष है।

तात्पर्य

यह श्लोक *भक्तिरसामृत सिन्धु* (१.२.५९) से लिया गया है। यहाँ श्रील कृष्णदास कविराज कहते हैं कि चैतन्य महाप्रभु ने वेंकट भट्ट को यह श्लोक सुनाया, किन्तु इससे पहले उन्होंने कहा कि वेंकट भट्ट ने उन्हें यह श्लोक सुनाया। चूँकि उनकी वार्ता भक्तिरसामृतसिंधु की रचना से काफी पहले हुई थी, अत: यह प्रश्न उठ सकता है कि यह श्लोक उन दोनों ने कैसे सुनाया। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर व्याख्या करते हैं कि यह श्लोक तथा अन्य अनेक श्लोक भक्तिरसामृतसिंधु की रचना के काफी पहले से भक्तों में प्रचलित थे। अत: भक्तगण उन्हें सदा सुनाया करते थे और उनके तात्पर्य भावावेश में आकर स्पष्ट किया करते थे।

स्वयं भगवान् 'कृष्ण' हरे लक्ष्मीर मन ।
गोपिकार मन हरिते नारे 'नारायण' ॥ १४७ ॥

स्वयं भगवान् 'कृष्ण' हरे लक्ष्मीर मन ।
गोपिकार मन हरिते नारे 'नारायण' ॥ १४७ ॥

स्वयम् भगवान्—पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण हैं; **हरे**—आकर्षित करते हैं; **लक्ष्मीर**—लक्ष्मी का; **मन**—मन; **गोपिकार**—गोपियों के; **मन**—मन; **हरिते**—हरने के लिए; **नारे**—नहीं कर सकते; **नारायण**—भगवान् नारायण।

अनुवाद

"पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण लक्ष्मी के मन को आकृष्ट करते हैं, किन्तु भगवान् नारायण गोपियों के मन को आकृष्ट नहीं कर पाते। इससे कृष्ण की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध होती है।

नारायणेर का कथा, श्री-कृष्ण आपने ।
गोपिकारे हास्य कराइते हय 'नारायणे' ॥ १४८ ॥

नारायणेर का कथा, श्री-कृष्ण आपने ।
गोपिकारे हास्य कराइते हय 'नारायणे' ॥ १४८ ॥

नारायणेर—भगवान् नारायण का; **का कथा**—क्या कहा जाए; **श्री-कृष्ण**—भगवान्

श्रीकृष्ण; **आपने**—स्वयं; **गोपिकारे**—गोपियों को; **हास्य कराइते**—प्रसन्न करने के लिए; **हय**—बने; **नारायणे**—नारायण के रूप में।

अनुवाद

"भगवान् नारायण के विषय में क्या कहा जाये, गोपियों के साथ मजाक उड़ाने के लिए भगवान् कृष्ण स्वयं नारायण के रूप में प्रकट हुए।

'चतुर्भुज-मूर्ति' देखाय गोपी-गणेर आगे ।
सेइ 'कृष्णे' गोपिकार नहे अनुरागे ॥ १४९॥

'चतुर्भुज-मूर्ति' देखाय गोपी-गणेर आगे ।
सेइ 'कृष्णे' गोपिकार नहे अनुरागे ॥ १४९ ॥

चतुर्-भुज-मूर्ति—चतुर्भुज मूर्ति; **देखाय**—दिखाते हैं; **गोपी-गणेर**—गोपियों के; **आगे**—समक्ष; **सेइ कृष्णे**—उन कृष्ण में; **गोपिकार**—गोपियों का; **नहे**—नहीं; **अनुरागे**—आकर्षण।

अनुवाद

"यद्यपि कृष्ण ने नारायण का चतुर्भुज स्वरूप धारण कर लिया, किन्तु वे गोपिकाओं की प्रेमदृष्टि को आकृष्ट नहीं कर सके।

गोपीनां पशुपेन्द्र-नन्दन-जुषो भावस्य कस्तां कृती
विज्ञातुं क्षमते दुरूह-पदवी-सञ्चारिणः प्रक्रियाम् ।
आविष्कुर्वति वैष्णवीमपि तनुं तस्मिन्भुजैर्जिष्णुभिर्
यासां हन्त चतुर्भिरद्भुत-रुचिं रागोदयः कुञ्चति ॥ १५०॥

गोपीनां पशुपेन्द्र-नन्दन-जुषो भावस्य कस्तां कृती
विज्ञातुं क्षमते दुरूह-पदवी-सञ्चारिणः प्रक्रियाम् ।
आविष्कुर्वति वैष्णवीमपि तनुं तस्मिन्भुजैर्जिष्णुभिर्
यासां हन्त चतुर्भिरद्भुत-रुचिं रागोदयः कुञ्चति ॥ १५० ॥

गोपीनाम्—गोपियों का; **पशुप-इन्द्र-नन्दन-जुषः**—व्रज के राजा महाराज नन्द के पुत्र की सेवा के; **भावस्य**—भाव का; **कः**—क्या; **ताम्**—उसे; **कृती**—विद्वान; **विज्ञातुम्**—समझने के लिए; **क्षमते**—समर्थ हैं; **दुरूह**—समझना कठिन; **पदवी**—स्थिति; **सञ्चारिणः**—जो प्रेरित करती है; **प्रक्रियाम्**—कार्यकलाप; **आविष्कुर्वति**—वे प्रकट करते हैं; **वैष्णवीम्**—विष्णु

का; **अपि**—निश्चित रूप से; **तनुम्**—शरीर; **तस्मिन्**—उसमें; **भुजैः**—भुजाओं से; **जिष्णुभिः**—अति सुन्दर; **ग्रासाम्**—जिनका (गोपियों का); **हन्त**—खेद है; **चतुर्भिः**—चार; **अद्भुत**—अद्भुत; **रुचिम्**—सुन्दर; **राग-उदयः**—राग प्रेम का उदय (भावनाएँ); **कुञ्चति**—कम हो गई।

अनुवाद

"'एक बार भगवान् कृष्ण ने चतुर्भुजी नारायण का अत्यन्त सुन्दर स्वरूप धारण किया। किन्तु जब गोपियों ने उनके इस भव्य स्वरूप को देखा, तो उनके भाव कुंठित हो गये। इसलिए विद्वान व्यक्ति भी गोपियों के ऊर्मिमय भावों को नहीं समझ सकता, क्योंकि वे नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण के आदि स्वरूप पर पूरी तरह स्थिर हैं। कृष्ण के साथ गोपियों का परम रस आध्यात्मिक जीवन का सबसे बड़ा रहस्य है।"

तात्पर्य

यह श्लोक श्रील रूप गोस्वामी कृत *ललित-माधव-नाटक* (६.१४) का है, जिसे नारद मुनि ने कहा था।

এত কহি' প্রভু তাঁর গর্ব চূর্ণ করিয়া ।
তাঁরে সুখ দিতে কহে সিদ্ধান্ত ফিরাইয়া ॥ ১৫১ ॥

এত কহি' প্রভু তাঁর গর্ব চূর্ণ করিয়া ।
তাঁরে সুখ দিতে কহে সিদ্ধান্ত ফিরাইয়া ॥ ১৫১ ॥

এত কহি'—यह कहकर; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **তাঁর**—वेंकट भट्ट का; **गर्व**—गर्व; **चूर्ण करिया**—भंग किया; **তাঁরে**—उसको; **सुख दिते**—सुख देने के लिए; **कहे**—कहते हैं; **सिद्धान्त फिराइया**—सारी बात को बदलकर।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने वेंकट भट्ट के गर्व को चूर्ण कर दिया, किन्तु उन्हें पुनः प्रसन्न करने के उद्देश्य से वे इस प्रकार बोले।

দুঃখ না ভাবিহ, ভট্ট, কৈলুঁ পরিহাস ।
শাস্ত্র-সিদ্ধান্ত শুন, যাতে বৈষ্ণব-বিশ্বাস ॥ ১৫২ ॥

দুঃখ না ভাবিহ, ভট্ট, কৈলুঁ পরিহাস ।
শাস্ত্র-সিদ্ধান্ত শুন, যাতে বৈষ্ণব-বিশ্বাস ॥ ১৫২ ॥

दुःख—दुःख; **ना**—नहीं; **भाविह**—करना; **भट्ट**—मेरे प्रिय भट्ट; **कैलुँ परिहास**—मैं तो मात्र मजाक कर रहा था; **शास्त्र-सिद्धान्त**—शास्त्रों के निष्कर्ष; **शुन**—सुनो; **याते**—जिनमें; **वैष्णव-विश्वास**—वैष्णवों की श्रद्धा।

अनुवाद

महाप्रभु ने वेंकट भट्ट को यह कहकर सान्त्वना दी, "वास्तव में मैंने जो कुछ कहा, वह परिहास था। अब तुम मुझसे शास्त्रों का निष्कर्ष सुन सकते हो, जिसमें हर वैष्णव भक्त का दृढ़ विश्वास होता है।

कृष्ण-नारायण, यैछे एकइ स्वरूप ।
गोपी-लक्ष्मी-भेद नाहि हय एक-रूप ॥ १५३ ॥

कृष्ण-नारायण, ग्रैछे एकइ स्वरूप ।
गोपी-लक्ष्मी-भेद नाहि हय एक-रूप ॥ १५३ ॥

कृष्ण-नारायण—भगवान् कृष्ण और भगवान् नारायण; **ग्रैछे**—जैसे; **एकइ**—एक; **स्वरूप**—स्वरूप; **गोपी**—गोपियाँ; **लक्ष्मी**—लक्ष्मी; **भेद**—अन्तर; **नाहि**—नहीं है; **हय**—है; **एक-रूप**—समान रूप।

अनुवाद

"भगवान् कृष्ण तथा भगवान् नारायण में कोई भेद नहीं है, क्योंकि दोनों एकरूप हैं। इसी प्रकार गोपियों तथा लक्ष्मी में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि वे भी एकरूप हैं।

गोपी-द्वारे लक्ष्मी करे कृष्ण-सङ्गास्वाद ।
ईश्वरत्वे भेद मानिले हय अपराध ॥ १५४ ॥

गोपी-द्वारे लक्ष्मी करे कृष्ण-सङ्गास्वाद ।
ईश्वरत्वे भेद मानिले हय अपराध ॥ १५४ ॥

गोपी-द्वारे—गोपियों द्वारा; **लक्ष्मी**—लक्ष्मी; **करे**—करती हैं; **कृष्ण-सङ्ग-आस्वाद**—भगवान् कृष्ण की संगति की मधुरता का आस्वादन; **ईश्वरत्वे**—भगवान् में; **भेद**—भेद; **मानिले**—यदि कोई माने; **हय**—है; **अपराध**—अपराध।

अनुवाद

"लक्ष्मीजी गोपियों के माध्यम से कृष्ण संग का आस्वादन करती

हैं। हमें चाहिए कि भगवान् के स्वरूपों में भेदभाव न बरतें, क्योंकि ऐसा करना अपराध है।

एक ईश्वर—भक्तेर ध्यान-अनुरूप ।
एकइ विग्रहे करे नानाकार रूप ॥ १५५॥

एक ईश्वर—भक्तेर ध्यान-अनुरूप ।
एकइ विग्रहे करे नानाकार रूप ॥ १५५॥

एक ईश्वर—भगवान् एक हैं; **भक्तेर**—भक्तों के; **ध्यान**—ध्यान; **अनुरूप**—अनुरूप; **एकइ**—एक ही; **विग्रहे**—अर्चाविग्रह में; **करे**—प्रकट होते हैं; **नाना-आकार**—विविध; **रूप**—रूप।

अनुवाद

"भगवान् के दिव्य रूपों में कोई अन्तर नहीं होता। विभिन्न भक्तों की विभिन्न अनुरक्तियों के कारण विभिन्न रूप प्रकट होते हैं। वास्तव में भगवान् एक हैं, लेकिन वे अपने भक्तों को सन्तुष्ट करने के लिए विविध रूपों में प्रकट होते हैं।

तात्पर्य

ब्रह्म-संहिता (५.३३) में कहा गया है :

अद्वैतमच्युतमनादिमनन्त रूपम्
आद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनं च।

भगवान् अद्वैत हैं। कृष्ण, राम, नारायण तथा विष्णु रूपों में कोई अन्तर नहीं है। वे सभी एक हैं। कभी-कभी मूर्ख लोग हमसे हरे कृष्ण मन्त्र में आने वाले "राम" के विषय में पूछते हैं कि यह भगवान् रामचन्द्र के लिए है, या भगवान् बलराम के लिए। यदि कोई भक्त यह कहे कि हरे कृष्ण महामन्त्र का राम नाम बलराम के लिए आया है, तो कोई मूर्ख व्यक्ति नाराज हो उठेगा, क्योंकि वह राम से भगवान् रामचन्द्र समझता है। वास्तव में बलराम तथा भगवान् राम में कोई अन्तर नहीं है। हरे राम कीर्तन में राम शब्द चाहे रामचन्द्र का द्योतक हो या बलराम का, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि उन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। किन्तु यह सोचना अपराध है कि बलराम राम से या

राम बलराम से श्रेष्ठ हैं। नये भक्त इस शास्त्रीय सिद्धान्त को नहीं समझते; इसलिए वे कभी-कभी अनावश्यक अपराधपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। श्लोक १५४ में इसको श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त सरल ढंग से स्पष्ट करते हैं—*ईश्वरत्वे भेद मानिले हय अपराध*—"ईश्वर के विविध रूपों में अन्तर करना अपराध है।" किन्तु यह भी नहीं सोचना चाहिए कि भगवान् के विविध रूप तथा देवताओं के रूप एक ही हैं। यह निश्चित रूप से अपराध है, जैसी कि *वैष्णव-तन्त्र* में पुष्टि हुई है :

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादिदैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद् ध्रुवम्॥

"जो ब्रह्माजी तथा शिवजी जैसे बड़े-बड़े देवताओं को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् नारायण के समान मानता है, वह पाषण्डी है" (हरिभक्ति विलास ७.११७)।

अतः हमें भगवान् के स्वरूपों में अन्तर नहीं करना चाहिए। किन्तु हमें यह भी समझना चाहिए कि भगवान् के विविध रूपों को देवताओं या मनुष्यों के तुल्य न मानें। उदाहरणार्थ, कभी-कभी मूर्ख संन्यासी नारायण की समता दरिद्र नारायण से करते हैं, क्योंकि वे भगवान् के शरीर को भौतिक समझते हैं, जो सरासर अपराध है। प्रामाणिक गुरु से उपदेश प्राप्त किये बिना इन विभिन्न स्वरूपों को पूरी तरह से नहीं समझा जा सकता। *ब्रह्म-संहिता* में पुष्टि हुई है—*वेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ।* केवल अध्ययन या वैदिक अध्ययन से भगवान् के विभिन्न रूपों को नहीं समझा जा सकता। स्वरूपसिद्ध भक्त से इसे सीखना होगा। तभी भगवान् के विभिन्न रूपों में अन्तर करना सीखा जा सकता है। निष्कर्ष यह है कि भगवान् के रूपों में अन्तर नहीं है, किन्तु उनके स्वरूपों तथा देवताओं के स्वरूपों में अन्तर अवश्य है।

मणिर्यथा विभागेन नील-पीतादिभिर्युतः ।
रूप-भेदमवाप्नोति ध्यान-भेदात्तथाच्युतः ॥ १५६॥

मणिर्यथा विभागेन नील-पीतादिभिर्युतः ।
रूप-भेदमवाप्नोति ध्यान-भेदात्तथाच्युतः ॥ १५६॥

मणिः—मणि, विशेषकर वैदुर्य मणि; **यथा**—जैसे; **विभागेन**—अलग अलग; **नील**—

नीला; **पीत**—पीला; **आदिभिः**—और दूसरे रंगों वाला; **युतः**—मिलाकर; **रूप-भेदम्**—रूपों के भेद; **अवाप्नोति**—मिलते हैं; **ध्यान-भेदात्**—ध्यान भेद से; **तथा**—तथा; **अच्युतः**—अच्युत भगवान्।

अनुवाद

"'जब वैदूर्य मणि अन्य वस्तुओं का स्पर्श करता है, तो यह विभिन्न रंगों में विभक्त होता प्रतीत होता है, फलतः उसके रूप भी भिन्न लगने लगते हैं। इसी प्रकार भक्त के ध्यान-भाव के अनुसार अच्युत भगवान् एक होते हुए भी विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं।'"

तात्पर्य

यह श्लोक *श्री नारद पञ्चरात्र* से लिया गया है।

ভট্ট কহে,—কাহাঁ আমি জীব পামর ।
কাহাঁ তুমি সেই কৃষ্ণ,—সাক্ষাতীশ্বর ॥১৫৭॥

भट्ट कहे,—काहाँ आमि जीव पामर ।
काहाँ तुमि सेइ कृष्ण,—साक्षातीश्वर ॥१५७॥

भट्ट कहे—वेंकट भट्ट ने कहा; **काहाँ**—कहाँ; **आमि**—मैं; **जीव**—एक साधारण जीव; **पामर**—पतित; **काहाँ**—कहाँ; **तुमि**—आप; **सेइ कृष्ण**—वही पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् कृष्ण; **साक्षात् ईश्वर**—साक्षात् ईश्वर।

अनुवाद

तब वेंकट भट्ट ने कहा, "मैं सामान्य पतित जीव हूँ, किन्तु आप तो साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं।

অগাধ ঈশ্বর-লীলা কিছুই না জানি ।
তুমি যেই কহ, সেই সত্য করি' মানি ॥১৫৮॥

अगाध ईश्वर-लीला किछुइ ना जानि ।
तुमि येइ कह, सेइ सत्य करि' मानि ॥१५८॥

अगाध—अगाध; **ईश्वर-लीला**—भगवान् की लीलाएँ; **किछुइ**—कुछ भी; **ना जानि**—मैं नहीं जानता; **तुमि**—आप; **येइ**—जो कुछ; **कह**—कहते हैं; **सेइ सत्य**—वह सत्य है; **करि' मानि**—मैं स्वीकार करता हूँ।

अनुवाद

"भगवान् की लीलाएँ अगाध हैं और मैं उनके विषय में कुछ भी नहीं जानता। आप जो भी कहते हैं मैं उन्हें ही सत्य के रूप में स्वीकार करता हूँ।

तात्पर्य

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विषयक सत्य जानने की यही विधि है। अर्जुन ने *भगवद्गीता* सुनने के बाद यही बात कही थी (१०.१४) :

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।
न हि ते भगवन् व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः॥

"हे कृष्ण, आपने मुझसे जो कुछ भी कहा है, उसे मैं सत्य के रूप में स्वीकार करता हूँ। हे प्रभु, आपके व्यक्तित्व को न देवता समझ सकते हैं न असुर।"

केवल अपने तर्क, दलील तथा शिक्षा से भगवान् की लीलाओं के सत्य को समझ पाना सम्भव नहीं है। हमें पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् से प्रामाणिक सूचना प्राप्त करनी चाहिए, जिस तरह अर्जुन ने कृष्ण से *भगवद्गीता* के प्रवचन करने पर प्राप्त की। हमें *भगवद्गीता* या किसी भी अन्य वैदिक साहित्य पर विश्वास करना होगा। ये वैदिक ग्रंथ भगवान् के विषय में ज्ञान के एकमात्र स्रोत हैं। हमें यह समझ लेना चाहिए कि हम तर्क की प्रक्रिया से परम सत्य को नहीं जान सकते।

মোরে পূর্ণ কৃপা কৈল লক্ষ্মী-নারায়ণ ।
তাঁর কৃপায় পাইনু তোমার চরণ-দরশন ॥ ১৫৯॥

मोरे पूर्ण कृपा कैल लक्ष्मी-नारायण ।
ताँर कृपाय पाइनु तोमार चरण-दरशन ॥ १५९॥

मोरे—मुझ पर; **पूर्ण**—पूर्ण; **कृपा**—कृपा; **कैल**—की; **लक्ष्मी-नारायण**—लक्ष्मी नारायण ने; **ताँर कृपाय**—उनकी कृपा से; **पाइनु**—मैंने पाया है; **तोमार**—आपके; **चरण-दरशन**—चरणकमलों का दर्शन।

अनुवाद

"मैं लक्ष्मी-नारायण की सेवा में लगा हुआ था और उन्हीं की कृपा से मैं आपके चरणकमलों का दर्शन कर सका हूँ।

কৃপা করি' কহিলে মোরে কৃষ্ণের মহিমা ।
যাঁর রূপ-গুণৈশ্বর্যের কেহ না পায় সীমা ॥ ১৬০ ॥

কৃপা করি' কহিলে মোরে কৃষ্ণের মহিমা ।
যাঁর রূপ-গুণৈশ্বর্যের কেহ না পায় সীমা ॥ ১৬০ ॥

কৃপা করি'—अहैतुकी कृपा दिखाकर; **কহিলে**—आपने बताई; **মোরে**—मुझे; **কৃষ্ণের**—भगवान् कृष्ण की; **মহিমা**—महिमाएँ; **যাঁর**—जिनके; **রূপ-গুণ-ঐশ্বর্যের**—रूप, गुण और ऐश्वर्य की; **কেহ**—कोई; **না**—नहीं; **পায়**—पाता; **সীমা**—सीमा।

अनुवाद

"अपनी अहैतुकी कृपा से आपने मुझे भगवान् कृष्ण की महिमा बतलाई। भगवान् के ऐश्वर्य, गुण तथा रूप का कोई भी अन्त नहीं पा सकता।

এবে সে জানিনু কৃষ্ণ-ভক্তি সর্বোপরি ।
কৃতার্থ করিলে, মোরে কহিলে কৃপা করি' ॥ ১৬১ ॥

এবে সে জানিনু কৃষ্ণ-ভক্তি সর্বোপরি ।
কৃতার্থ করিলে, মোরে কহিলে কৃপা করি' ॥ ১৬১ ॥

এবে—अब; **সে**—वह; **জানিনু**—मैं समझता हूँ; **কৃষ্ণ-ভক্তি**—कृष्ण भक्ति; **সর্ব-উপরি**—सर्वश्रेष्ठ ; **কৃত-অর্থ**—सफल; **করিলে**—आपने की है; **মোরে**—मुझे; **কহিলে**—आपने कहा है; **কৃপা করি'**—अपनी अहैतुकी कृपा से।

अनुवाद

"अब मैं समझ सका हूँ कि भगवान् कृष्ण की भक्ति ही सर्वोपरि पूजा है। आपने अहैतुकी कृपा करते हुए तथ्यों की व्याख्या करके ही मेरे जीवन को कृतार्थ कर दिया।"

এত বলি' ভট্ট পড়িলা প্রভুর চরণে ।
কৃপা করি' প্রভু তাঁরে কৈলা আলিঙ্গনে ॥ ১৬২ ॥

এত বলি' ভট্ট পড়িলা প্রভুর চরণে ।
কৃপা করি' প্রভু তাঁরে কৈলা আলিঙ্গনে ॥ ১৬২ ॥

एत बलि'—यह कहकर; **भट्ट**—वेंकट भट्ट; **पड़िला**—गिर पड़े; **प्रभुर चरणे**—महाप्रभु के चरणकमलों पर; **कृपा करि'**—उन पर कृपा करके; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **ताँरे**—उनका; **कैला**—किया; **आलिङ्गने**—आलिंगन।

अनुवाद

यह कहकर वेंकट भट्ट महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े और महाप्रभु ने अपनी अहैतुकी कृपा करते हुए उनका आलिंगन किया।

चातुर्मास्य पूर्ण हैल, भट्ट-आज्ञा लञा ।
दक्षिण चलिला प्रभु श्री-रङ्ग देखिया ॥ १६३ ॥

चातुर्मास्य पूर्ण हैल, भट्ट-आज्ञा लञा ।
दक्षिण चलिला प्रभु श्री-रङ्ग देखिया ॥ १६३ ॥

चातुर्मास्य—चतुर्मास की अवधि; **पूर्ण हैल**—पूर्ण हुई; **भट्ट-आज्ञा लञा**—वेंकट भट्ट से आज्ञा लेकर; **दक्षिण**—दक्षिण; **चलिला**—चले गये; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **श्री-रङ्ग देखिया**—श्रीरंग मन्दिर का दर्शन करके।

अनुवाद

जब चातुर्मास्य का काल व्यतीत हो गया, तब पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रस्थान करने के लिए वेंकट भट्ट से अनुमति माँगी, और श्रीरंग का दर्शन करने के बाद वे दक्षिण भारत की ओर आगे बढ़ गये।

सङ्गेते चलिला भट्ट, ना याय भवने ।
ताँरे विदाय दिला प्रभु अनेक यतने ॥ १६४ ॥

सङ्गेते चलिला भट्ट, ना याय भवने ।
ताँरे विदाय दिला प्रभु अनेक यतने ॥ १६४ ॥

सङ्गेते—उनके साथ; **चलिला**—चलने लगे; **भट्ट**—वेंकट भट्ट; **ना याय भवने**—अपने घर वापस नहीं जाते; **ताँरे**—उनको; **विदाय दिला**—विदा दी; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **अनेक यतने**—अत्यन्त प्रयास से (बहुत मुश्किल से)।

अनुवाद

वेंकट भट्ट घर लौटना नहीं चाहते थे, किन्तु उनके साथ जाना चाह रहे थे। श्री चैतन्य महाप्रभु ने बड़े ही प्रयत्न से उन्हें विदा किया।

প্রভুর বিয়োগে ভট্ট হৈল অচেতন ।
এই রঙ্গ-লীলা করে শচীর নন্দন ॥১৬৫॥

প্রভুর বিয়োগে ভট্ট হৈল অচেতন ।
এই রঙ্গ-লীলা করে শচীর নন্দন ॥ ১৬৫ ॥

প্রভুর বিয়োগে—श्री चैतन्य महाप्रभु के वियोग के कारण; **भट्ट**—वेंकट भट्ट; **हैल**—हो गये; **अचेतन**—अचेत; **एइ**—यह; **रङ्ग-लीला**—श्री रंगक्षेत्र में लीलाएँ; **करे**—करते हैं; **शचीर नन्दन**—माता शची के पुत्र।

अनुवाद

महाप्रभु के चले जाने पर वेंकट भट्ट बेहोश होकर गिर पड़े। श्री-रंगक्षेत्र में शचीपुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ ऐसी थीं।

ঋষভ-পর্বতে চলি' আইলা গৌরহরি ।
নারায়ণ দেখিলা তাঁহা নতি-স্তুতি করি' ॥১৬৬॥

ঋষভ-পর্বতে চলি' আইলা গৌরহরি ।
নারায়ণ দেখিলা তাঁহা নতি-স্তুতি করি' ॥ ১৬৬ ॥

ऋषभ-पर्वते—ऋषभ पर्वत को; **चलि'**—पैदल चलकर; **आइला**—पहुँचे; **गौरहरि**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **नारायण**—भगवान् नारायण के अर्चाविग्रह को; **देखिला**—देखा; **ताँहा**—वहाँ; **नति-स्तुति करि'**—प्रणाम तथा स्तुति करके।

अनुवाद

महाप्रभु ने ऋषभ पर्वत पहुँचकर भगवान् नारायण का मन्दिर देखा और नमस्कार किया। साथ ही विविध स्तुतियाँ कीं।

तात्पर्य

दक्षिण तामिलनाडु के मदुरई जिले में ऋषभ पर्वत है। मदुरई शहर से बारह मील उत्तर की ओर आनागड़-मलय-पर्वत है, जिसे ऋषभ पर्वत भी कहते हैं और जो कुटकाचल पर्वतों में से एक है। इसी के निकट वाले जंगल में भगवान् ऋषभदेव ने आत्मदाह कर लिया था।

পরমানন্দ-পুরী তাহাঁ রহে চতুর্মাস ।
শুনি' মহাপ্রভু গেলা পুরী-গোসাঞির পাশ ॥১৬৭॥

परमानन्द-पुरी ताहाँ रहे चतुर्मास ।
शुनि' महाप्रभु गेला पुरी-गोसाञिर पाश ॥ १६७॥

परमानन्द-पुरी—परमानन्द पुरी; **ताहाँ**—वहाँ; **रहे**—रहे; **चतुर्-मास**—चार मास; **शुनि'**—सुनकर; **महाप्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **गेला**—गये; **पुरी**—परमानन्द पुरी; **गोसाञिर**—गोसांई ; **पाश**—के पास।

अनुवाद

परमानन्द पुरी चतुर्मास में इसी ऋषभ पर्वत में रह रहे थे और जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह सुना, तो वे तुरन्त उन्हें मिलने गये।

पूरी-गोसाञिर प्रभु कैल चरण वन्दन ।
प्रेमे पूरी गोसाञि ताँरे कैल आलिङ्गन ॥ १६८॥

पुरी-गोसाञिर प्रभु कैल चरण वन्दन ।
प्रेमे पुरी गोसाञि ताँरे कैल आलिङ्गन ॥ १६८॥

पुरी-गोसाञिर—परमानन्द पुरी की; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **कैल**—किया; **चरण वन्दन**—चरण वन्दना; **प्रेमे**—प्रेम में; **पुरी गोसाञि**—परमानन्द पुरी; **ताँरे**—उनको; **कैल**—किया; **आलिङ्गन**—आलिंगन।

अनुवाद

परमानन्द पुरी से मिलने पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनका पाद-स्पर्श करके सम्मान किया और परमानन्द पुरी ने प्रेमवश महाप्रभु का आलिंगन किया।

तिन-दिन प्रेमे दोँहे कृष्ण-कथा-रङ्गे ।
सेइ विप्र-घरे दोँहे रहे एक-सङ्गे ॥ १६९॥

तिन-दिन प्रेमे दोँहे कृष्ण-कथा-रङ्गे ।
सेइ विप्र-घरे दोँहे रहे एक-सङ्गे ॥ १६९॥

तिन-दिन—तीन दिन; **प्रेमे**—प्रेम में; **दोँहे**—दोनों; **कृष्ण-कथा**—कृष्ण कथाओं की चर्चा करते रहे; **रङ्गे**—आनन्द में; **सेइ विप्र-घरे**—एक ब्राह्मण के घर में; **दोँहे**—वे दोनों; **रहे**—रहे; **एक-सङ्गे**—एक साथ।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु परमानन्द पुरी के साथ उसी ब्राह्मण के घर रुके, जहाँ परमानन्द पुरी रह रहे थे। दोनों ने कृष्ण-कथा की चर्चा में तीन दिन बिताये।

पूरी-गोसाञि बले,——आमि याब पूरुषोत्तमे ।
पूरुषोत्तम देखि' गौड़े याब गङ्गा-स्नाने ॥ १७० ॥

पुरी-गोसाञि बले,——आमि य्राब पुरुषोत्तमे ।
पुरुषोत्तम देखि' गौड़े य्राब गङ्गा-स्नाने ॥ १७० ॥

पुरी-गोसाञि—परमानन्द पुरी; **बले**—कहा; **आमि**—मैं; **य्राब**—जाऊँगा; **पुरुषोत्तमे**—जगन्नाथ पुरी; **पुरुषोत्तम देखि'**—जगन्नाथ पुरी देखकर; **गौड़े य्राब**—बंगाल जाऊँगा; **गङ्गा-स्नाने**—गंगा-स्नान के लिए।

अनुवाद

परमानन्द पुरी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को बतलाया कि वे जगन्नाथ पुरी स्थित पुरुषोत्तम का दर्शन करने जा रहे हैं। वहाँ भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने के बाद वे गंगास्नान करने बंगाल जायेंगे।

प्रभु कहे,——तुमि पुनः आइस नीलाचले ।
आमि सेतुबन्ध हैते आसिव अल्प-काले ॥ १७१ ॥

प्रभु कहे,——तुमि पुनः आइस नीलाचले ।
आमि सेतुबन्ध हैते आसिब अल्प-काले ॥ १७१ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **तुमि**—आप; **पुनः**—दोबारा; **आइस**—आना; **नीलाचले**—जगन्नाथ पुरी में; **आमि**—मैं; **सेतुबन्ध हैते**—रामेश्वर से; **आसिब**—लौट आऊँगा; **अल्प-काले**—अति शीघ्र।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे कहा, "कृपा करके जगन्नाथ पुरी फिर आयें, क्योंकि मैं शीघ्र ही रामेश्वर (सेतुबन्ध) से वहाँ लौट आऊँगा।

তোমার নিকটে রহি,—হেন বাঞ্ছা হয় ।
নীলাচলে আসিবে মোরে হঞা সদয় ॥ ১৭২॥

তোমার নিকটে রহি,—হেন বাञ্ছা হয় ।
নীলাচলে আসিবে মোরে হঞা সদয় ॥ ১৭২ ॥

তোমার নিকটে—आपके साथ; **রহি**—मैं रहूँ; **হেন**—ऐसी; **বাञ্ছা হয়**—मेरी इच्छा है; **নীলাচলে**—जगन्नाथ पुरी; **আসিবে**—आओ; **মোরে**—मुझ पर; **হঞা**—होकर; **স-দয়**—दयालु।

अनुवाद

"मेरी इच्छा है कि आपके साथ रहूँ, अतएव यदि आप जगन्नाथ पुरी वापस आ सकें, तो यह मेरे ऊपर महान् कृपा होगी।"

এত বলি' তাঁর ঠাঞি এই আজ্ঞা লঞা ।
দক্ষিণে চলিলা প্রভু হরষিত হঞা ॥ ১৭৩॥

এত বলি' তাঁর ঠাঞি এই আজ্ঞা লঞা ।
দক্ষিণে চলিলা প্রভু হরষিত হঞা ॥ ১৭৩ ॥

এত বলি'—यह कहकर; **তাঁর ঠাঞি**—उनसे ; **এই আজ্ঞা লঞা**—आज्ञा लेकर; **দক্ষিণে চলিলা**—दक्षिण भारत चल पड़े; **প্রভু**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **হরষিত হঞা**—अत्यन्त प्रसन्न होकर।

अनुवाद

परमानन्द पुरी से इस तरह बातें करके महाप्रभु ने उनसे प्रस्थान करने की आज्ञा माँगी और अत्यन्त प्रसन्न चित्त से दक्षिण भारत के लिए रवाना हो गये।

পরমানন্দ পুরী তবে চলিলা নীলাচলে ।
মহাপ্রভু চলি চলি আইলা শ্রী-শৈলে ॥ ১৭৪॥

পরমানন্দ পুরী তবে চলিলা নীলাচলে ।
মহাপ্রভু চলি চলি আইলা শ্রী-শৈলে ॥ ১৭৪ ॥

পরমানন্দ পুরী—परमानन्द पुरी; **তবে**—तब; **চলিলা নীলাচলে**—जगन्नाथ पुरी की ओर चल पड़े; **মহাপ্রভু**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **চলি চলি**—चलते चलते; **আইলা**—आ गये; **শ্রী-শৈলে**—श्री शैल।

अनुवाद

इस तरह परमानन्द पुरी जगन्नाथ पुरी चले गये, और श्री चैतन्य महाप्रभु श्री शैल की ओर चल पड़े।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है, "कृष्णदास कविराज गोस्वामी किस श्री शैल का संकेत कर रहे हैं, यह स्पष्ट नहीं है। इस क्षेत्र में मल्लिकार्जुन का कोई मन्दिर नहीं है, क्योंकि धारवाड़ जिले में स्थित श्री शैल यहाँ पर नहीं हो सकता। वह श्री शैल बेलगाम के दक्षिण में है और मल्लिकार्जुन का शिव-मन्दिर यहीं पर स्थित है (इस अध्याय का श्लोक १५ देखें)। कहा जाता है कि इस पर्वत पर शिवजी देवी के साथ रहते थे। यही नहीं, ब्रह्माजी भी सारे देवताओं के साथ यहाँ रहते थे।"

शिव-दुर्गा रहे ताहाँ ब्राह्मणेर वेशे ।
महाप्रभु देखि' दोंहार हइल उल्लासे ॥ १७५ ॥

शिव-दुर्गा रहे ताहाँ ब्राह्मणेर वेशे ।
महाप्रभु देखि' दोंहार हइल उल्लासे ॥ १७५ ॥

शिव-दुर्गा—शिवजी और उनकी पत्नी दुर्गा; **रहे ताहाँ**—वहाँ रहते थे; **ब्राह्मणेर वेशे**—ब्राह्मण के वेश में; **महाप्रभु देखि'**—श्री चैतन्य महाप्रभु को देखकर; **दोंहार**—दोनों को; **हइल**—हुआ; **उल्लासे**—अत्यन्त हर्ष।

अनुवाद

इसी श्री शैल पर शिवजी तथा उनकी पत्नी दुर्गा ब्राह्मण-वेश में रहते थे, और जब उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु को देखा तो अत्यन्त प्रसन्न हुए।

तिन दिन भिक्षा दिल करि' निमन्त्रण ।
निभृते वसि' गुप्त-वार्ता कहे दुइ जन ॥ १७६ ॥

तिन दिन भिक्षा दिल करि' निमन्त्रण ।
निभृते वसि' गुप्त-वार्ता कहे दुइ जन ॥ १७६ ॥

तिन दिन—तीन दिन; **भिक्षा दिल**—भिक्षा दी; **करि' निमन्त्रण**—उन्हें निमन्त्रित करके;

निभृते—एकान्त स्थान में; **वसि'**—इकट्ठे बैठकर; **गुप्त-वार्ता**—गुप्त बातचीत; **कहे**—करते; **दुइ जन**—वे दोनों।

अनुवाद

ब्राह्मण वेशधारी शिवजी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को भिक्षा दी, और एकान्त में तीन दिन बिताने का आमन्त्रण दिया। दोनों वहाँ पर साथ बैठकर गुप्त बातें करते रहे।

ताँर सङ्गे महाप्रभु करि इष्टगोष्ठी ।
ताँर आज्ञा लञा आइला पुरी कामकोष्ठी ॥ १७७॥

ताँर सङ्गे महाप्रभु करि इष्टगोष्ठी ।
ताँर आज्ञा लञा आइला पुरी कामकोष्ठी ॥ १७७॥

ताँर सङ्गे—उनके साथ; **महाप्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **करि इष्ट-गोष्ठी**—आध्यात्मिक विषयों की चर्चा करके; **ताँर**—उनकी; **आज्ञा**—आज्ञा; **लञा**—लेकर; **आइला**—आ गये; **पुरी कामकोष्ठी**—कामकोष्ठी पुरी को।

अनुवाद

शिवजी से वार्तालाप करने के बाद महाप्रभु ने उनसे विदा ली और कामकोष्ठी-पुरी गये।

दक्षिण-मथुरा आइला कामकोष्ठी हैते ।
ताहाँ देखा हैल एक ब्राह्मण-सहिते ॥ १७८॥

दक्षिण-मथुरा आइला कामकोष्ठी हैते ।
ताहाँ देखा हैल एक ब्राह्मण-सहिते ॥ १७८॥

दक्षिण-मथुरा—दक्षिणी मथुरा में; **आइला**—पहुँचे; **कामकोष्ठी हैते**—कामकोष्ठी से; **ताहाँ**—वहाँ; **देखा हैल**—वे मिले; **एक**—एक; **ब्राह्मण-सहिते**—ब्राह्मण से।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु कामकोष्ठी से दक्षिण-मथुरा पहुँचे, तो वहाँ उनकी भेंट एक ब्राह्मण से हुई।

तात्पर्य

यह दक्षिण मथुरा, जिसे आजकल मदुरई कहा जाता है, भागाइ नदी के

किनारे स्थित है। यह तीर्थस्थान विशेषतया शिव-भक्तों के लिए है, इसीलिए यह शैवक्षेत्र कहलाता है। इस क्षेत्र में पहाड़ तथा जंगल हैं। इसमें दो शिव-मन्दिर भी हैं—एक है रामेश्वर का और दूसरा है सुन्दरेश्वर का। एक देवी का—मीनाक्षी देवी का—मन्दिर भी है, जो स्थापत्य कला की दृष्टि से महान् है। इसे पांड्यवंशी राजाओं ने बनवाया था और मुसलमानों के आक्रमण से इसे तथा सुन्दरेश्वर मन्दिर को भारी क्षति पहुँची। १३७२ ई. में मदुरई के सिंहासन पर कम्पन्न उदैयर नामक राजा राज्य करता था। बहुत पहले सम्राट कुलशेखर इस क्षेत्र में राज्य करते थे, जिन्होंने ब्राह्मणों की एक बस्ती बसाई थी। कुलशेखर की ग्याहरवीं पीढ़ी का राजा अनन्तगुण पांड्य के नाम से विख्यात हुआ।

सेइ विप्र महाप्रभुके कैल निमन्त्रण ।
राम-भक्त सेइ विप्र—विरक्त महाजन ॥ १७९॥

सेइ विप्र महाप्रभुके कैल निमन्त्रण ।
राम-भक्त सेइ विप्र—विरक्त महाजन ॥ १७९॥

सेइ विप्र—उस ब्राह्मण ने; **महाप्रभुके**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **कैल**—किया; **निमन्त्रण**—निमन्त्रण; **राम-भक्त**—भगवान् रामचन्द्र का भक्त; **सेइ**—वह; **विप्र**—ब्राह्मण; **विरक्त**—विरक्त; **महाजन**—एक महान् भक्त और अधिकारी था।

अनुवाद

उस ब्राह्मण ने महाप्रभु को अपने घर आमन्त्रित किया। यह ब्राह्मण महान् भक्त था और श्री रामचन्द्र भगवान् के बारे में विशेषज्ञ अधिकारी था। वह भौतिक कार्यकलापों से सदा विरक्त रहता था।

कृतमालाय स्नान करि' आइला ताँर घरे ।
भिक्षा कि दिबेन विप्र,—पाक नाहि करे ॥ १८०॥

कृतमालाय स्नान करि' आइला ताँर घरे ।
भिक्षा कि दिबेन विप्र,—पाक नाहि करे ॥ १८०॥

कृतमालाय—कृतमाला नदी में; **स्नान करि'**—स्नान करके; **आइला**—आये; **ताँर**—ब्राह्मण के; **घरे**—घर को; **भिक्षा**—भिक्षा देने; **कि दिबेन**—क्या दूँ; **विप्र**—ब्राह्मण; **पाक**—भोजन; **नाहि करे**—नहीं बनाया था।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कृतमाला नदी में स्नान करके उस ब्राह्मण के घर भोजन करने गये, किन्तु उन्होंने देखा कि भोजन तैयार नहीं था—अभी ब्राह्मण ने उसे पकाया नहीं था।

महाप्रभु कहे ताँरे,—शुन महाशय ।
मध्याह्न हैल, केने पाक नाहि हय ॥ १८१ ॥

महाप्रभु कहे—श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; **ताँरे**—उसको; **शुन महाशय**—कृपया सुनो महाशय; **मध्याह्न हैल**—अब दोपहर हो गई है; **केने**—क्यों; **पाक नाहि हय**—तुमने भोजन नहीं बनाया।

अनुवाद

यह देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "हे महाशय, मुझे बतायें कि आपने भोजन क्यों नहीं पकाया है। अब तो दोपहर हो चुकी है।"

विप्र कहे,—प्रभु, मोर अरण्ये वसति ।
पाकेर सामग्री वने ना मिले सम्प्रति ॥ १८२ ॥

विप्र कहे—ब्राह्मण ने उत्तर दिया; **प्रभु**—हे प्रभु; **मोर**—मेरा; **अरण्ये**—वन में; **वसति**—निवास है; **पाकेर सामग्री**—भोजन बनाने की सामग्री; **वने**—वन में; **ना मिले**—उपलब्ध नहीं है; **सम्प्रति**—इस समय।

अनुवाद

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, हम वन में रहते हैं। इस समय हमें भोजन की सारी सामग्री वन में प्राप्त नहीं हो सकती।

वन्य शाक-फल-मूल आनिबे लक्ष्मण ।
तबे सीता करिबेन पाक-प्रयोजन ॥ १८३ ॥

वन्य शाक-फल-मूल आनिबे लक्ष्मण ।
तबे सीता करिबेन पाक-प्रयोजन ॥ १८३ ॥

वन्य—वन की; **शाक**—सब्जियाँ; **फल-मूल**—फल फूल; **आनिबे**—लायेंगे; **लक्ष्मण**—लक्ष्मण; **तबे**—तब; **सीता**—सीता माता; **करिबेन**—करेगी; **पाक-प्रयोजन**—भोजन पकाना।

अनुवाद

"जब लक्ष्मण जंगल से शाक-सब्जियाँ, फल तथा कन्दमूल लायेंगे, तब सीताजी भोजन पकाने का प्रबन्ध करेंगी।"

তাঁর উপাসনা শুনি' প্রভু তুষ্ট হৈলা ।
আস্তে-ব্যস্তে সেই বিপ্র রন্ধন করিলা ॥ ১৮৪ ॥

তাঁর উপাসনা শুনি' প্রভু তুষ্ট হৈলা ।
আস্তে-ব্যস্তে সেই বিপ্র রন্ধন করিলা ॥ ১৮৪ ॥

তাঁর—उसकी; **उपासना**—उपासना विधि; **शुनि'**—सुनकर; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **तुष्ट हैला**—बहुत सन्तुष्ट हुए; **आस्ते-व्यस्ते**—जल्दी जल्दी से; **सेइ**—वह; **विप्र**—ब्राह्मण; **रन्धन करिला**—भोजन पकाने लगा।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु उस ब्राह्मण की पूजा-विधि सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। अन्त में ब्राह्मण ने त्वरित भोजन पकाने की व्यवस्था की।

প্রভু ভিক্ষা কৈল দিনের তৃতীয়-প্রহরে ।
নির্বিণ্ণ সেই বিপ্র উপবাস করে ॥ ১৮৫ ॥

প্রভু ভিক্ষা কৈল দিনের তৃতীয়-প্রহরে ।
নির্বিণ্ণ সেই বিপ্র উপবাস করে ॥ ১৮৫ ॥

प्रभु—श्री चैतन्य महाप्रभु; **भिक्षा कैल**—अपना भोजन किया; **दिनेर**—दिन का; **तृतीय-प्रहरे**—तीसरे पहरे, लगभग तीन बजे; **निर्विण्ण**—दुःखी होकर; **सेइ**—उस; **विप्र**—ब्राह्मण ने; **उपवास करे**—उपवास किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने तीन बजे के लगभग दोपहर का भोजन किया। किन्तु दुःखी होने के कारण वह ब्राह्मण उपवास पर रह गया।

প্রভু কহে,—বিপ্র কাঁহে কর উপবাস ।
কেনে এত দুঃখ, কেনে করহ হুতাশ ॥ ১৮৬ ॥

প্রভু কহে,—বিপ্র কাঁহে কর উপবাস ।
কেনে এত দুঃখ, কেনে করহ হুতাশ ॥ ১৮৬ ॥

प्रभु कहे—चैतन्य महाप्रभु ने कहा; **विप्र**—मेरे प्रिय ब्राह्मण; **काँहे**—क्यों; **कर उपवास**—उपवास कर रहे हो; **केने**—क्यों; **एत**—इतना; **दुःख**—दुःख; **केने**—क्यों; **करह हुताश**—इतने चिन्तित हो।

अनुवाद

ब्राह्मण को उपवास किए देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उससे पूछा, "आप उपवास क्यों कर रहे हैं? आप दुःखी क्यों हैं? आप इतने चिन्तित क्यों हैं?"

বিপ্র কহে,—জীবনে মোর নাহি প্রয়োজন ।
অগ্নি-জলে প্রবেশিয়া ছাড়িব জীবন ॥ ১৮৭ ॥

বিপ্র কহে,—জীবনে মোর নাহি প্রয়োজন ।
অগ্নি-জলে প্রবেশিয়া ছাড়িব জীবন ॥ ১৮৭ ॥

विप्र कहे—ब्राह्मण ने कहा; **जीवने मोर**—मेरे जीवन के लिए; **नाहि**—नहीं है; **प्रयोजन**—आवश्यकता; **अग्नि**—अग्नि में; **जले**—जल में; **प्रवेशिया**—प्रवेश करके; **छाड़िब**—मैं त्याग दूँगा; **जीवन**—जीवन।

अनुवाद

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "मेरे जीने का कोई प्रयोजन नहीं है। मैं या तो अग्नि में या जल में प्रवेश करके अपने प्राण त्याग दूँगा।

জগন্মাতা মহা-লক্ষ্মী সীতা-ঠাকুরাণী ।
রাক্ষসে স্পর্শিল তাঁরে,—ইহা কানে শুনি ॥ ১৮৮ ॥

जगन्माता महा-लक्ष्मी सीता-ठाकुराणी ।
राक्षसे स्पर्शिल ताँरे,—इहा काने शुनि ॥ १८८ ॥

जगत्-माता—जगत् माता; **महा-लक्ष्मी**—महालक्ष्मी; **सीता-ठाकुराणी**—माता सीता; **राक्षसे**—राक्षस रावण ने; **स्पर्शिल**—स्पर्श किया; **ताँरे**—उन्हें; **इहा**—यह; **काने शुनि**—मैंने सुना है।

अनुवाद

"हे महाशय, सीताजी जगज्जननी और महालक्ष्मी हैं। उनका स्पर्श राक्षस रावण ने किया है और मैं यह समाचार सुनकर अत्यन्त क्षुब्ध हूँ।

এ শরীর ধরিবারে কভু না যুয়ায় ।
এই দুঃখে জ্বলে দেহ, প্রাণ নাহি যায় ॥ ১৮৯ ॥

ए शरीर धरिबारे कभु ना य़ुयाय ।
एइ दुःखे ज्वले देह, प्राण नाहि य़ाय ॥ १८९ ॥

ए शरीर—यह शरीर; **धरिबारे**—धारण करने के लिए; **कभु**—कभी; **ना**—नहीं; **य़ुयाय**—योग्य हूँ; **एइ दुःखे**—इस दुःख में; **ज्वले देह**—मेरा शरीर जल रहा है; **प्राण**—मेरे प्राण; **नाहि य़ाय**—निकलते नहीं।

अनुवाद

"हे महाशय, इस दुःख के कारण अब मैं जीवित नहीं रह सकता। यद्यपि मेरा शरीर जल रहा है, किन्तु प्राण निकल नहीं रहे।"

প্রভু কহে,—এ ভাবনা না করিহ আর ।
পণ্ডিত হঞা কেনে না করহ বিচার ॥ ১৯০ ॥

प्रभु कहे,—ए भावना ना करिह आर ।
पण्डित हञा केने ना करह विचार ॥ १९० ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **ए भावना**—इस प्रकार की भावना; **ना**—न; **करिह**—करो; **आर**—अब; **पण्डित हञा**—एक विद्वान पण्डित होकर; **केन**—क्यों; **ना करह**—नहीं करते; **विचार**—विचार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने उत्तर दिया, "आप अब इस तरह न सोचें। आप तो विद्वान पंडित हैं। आप इस समस्या पर विचार क्यों नहीं करते?"

ঈশ্বর-প্রেয়সী সীতা—চিদানন্দ-মূর্তি ।
প্রাকৃত-ইন্দ্রিয়ের তাঁরে দেখিতে নাহি শক্তি ॥ ১৯১ ॥

ईश्वर-प्रेयसी सीता—चिदानन्द-मूर्ति ।
प्राकृत-इन्द्रियेर तारे देखिते नाहि शक्ति ॥ १९१ ॥

ईश्वर-प्रेयसी—भगवान् की प्रियतम पत्नी; **सीता**—माता सीता; **चित्-आनन्द-मूर्ति**—चिदानन्द मूर्ति; **प्राकृत**—भौतिक; **इन्द्रियेर**—इन्द्रियों में; **तारे**—उनको; **देखिते**—देखने के लिए; **नाहि**—नहीं है; **शक्ति**—शक्ति।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कहते रहे, "भगवान् रामचन्द्र की प्रियतमा सीतादेवी का रूप निश्चय ही आनन्दमय एवं आध्यात्मिक है। उन्हें कोई भी व्यक्ति अपनी भौतिक आँखों से नहीं देख सकता, क्योंकि किसी भी भौतिक प्राणी में वह शक्ति नहीं है।

স্পর্শিবার কার্য আছুক, না পায় দর্শন ।
সীতার আকৃতি-মায়া হরিল রাবণ ॥ ১৯২ ॥

स्पर्शिबार कार्य्य आछुक, ना पाय दर्शन ।
सीतार आकृति-माया हरिल रावण ॥ १९२ ॥

स्पर्शिबार—स्पर्श करने के लिए; **कार्य्य**—कार्य; **आछुक**—छोड़ो; **ना**—नहीं; **पाय**—पाता; **दर्शन**—दर्शन; **सीतार**—माता सीता का; **आकृति-माया**—माया की आकृति (रूप); **हरिल**—हरकर ले गया; **रावण**—राक्षस रावण।

अनुवाद

"माता सीता को स्पर्श करने की तो बात ही दूर रही, भौतिक इन्द्रिय वाला व्यक्ति उन्हें देख तक नहीं सकता। रावण ने तो उनके भौतिक मायारूप का ही हरण किया था।

রাবণ আসিতেই সীতা অন্তর্ধান কৈল ।
রাবণের আগে মায়া-সীতা পাঠাইল ॥ ১৯৩ ॥

रावण आसितेइ सीता अन्तर्धान कैल ।
रावणेर आगे माया-सीता पाठाइल ॥ १९३ ॥

रावण—दैत्य रावण; **आसितेइ**—जैसे ही वहाँ पहुँचा; **सीता**—माता सीता; **अन्तर्धान कैल**—अन्तर्धान हो गईं; **रावणेर आगे**—राक्षस रावण के समक्ष; **माया-सीता**—सीता की माया मूर्ति; **पाठाइल**—भेज दी।

अनुवाद

"ज्योंही रावण सीताजी के सम्मुख आया, वे अप्रकट हो गईं। उन्होंने रावण को धोखा देने के लिए ही अपना मायारूप भेजा।

अप्राकृत वस्तु नहे प्राकृत-गोचर ।
वेद-पुराणेते एई कहे निरन्तर ॥ १९४॥

अप्राकृत वस्तु नहे प्राकृत-गोचर ।
वेद-पुराणेते एइ कहे निरन्तर ॥ १९४॥

अप्राकृत—आध्यात्मिक; **वस्तु**—वस्तु; **नहे**—नहीं; **प्राकृत**—भौतिक; **गोचर**—क्षेत्र के भीतर; **वेद-पुराणेते**—वेद और पुराण; **एइ**—यह; **कहे**—कहते हैं; **निरन्तर**—सदा।

अनुवाद

"आध्यात्मिक वस्तु कभी-भी भौतिक अनुभूति के सीमा-क्षेत्र में नहीं रहती। यही वेदों और पुराणों का निर्णय है।"

तात्पर्य

जैसाकि *कठ उपनिषद* (२.३.९, १२) में कहा गया है :

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य
न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो
य एतद् विदुरामृतास्ते भवन्ति।
नैव वाचा न मनसा
प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।

"आत्मा न तो भौतिक नेत्रों, न शब्दों, न ही मन की सीमा के अन्तर्गत है।"

इसी प्रकार से *श्रीमद्भागवत* (१०.८४.१३) में कहा गया है :

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः।

यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्
जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥

"जो मनुष्य तीन तत्त्वों से बने अपने शरीर की पहचान आत्मा से करता है, जो अपने शरीर के उत्पादों को अपने कुटुम्बी समझता है, जो अपनी जन्मभूमि को पूज्य समझता है, और जो तीर्थस्थान पर मात्र स्नान करने जाता है, न कि दिव्य ज्ञानीजनों को मिलने के लिए, उसे एक गधे या गाय जैसा समझना चाहिए।"

आध्यात्मिक वस्तु के बारे में कुछ वैदिक कथन हैं। आध्यात्मिक वस्तुओं को बुद्धिहीन व्यक्ति नहीं देख सकते, क्योंकि आत्मा को देखने के लिए उनके पास न तो आँखें हैं, न मन। फलतः वे सोचते हैं कि आत्मा जैसी कोई वस्तु नहीं है। किन्तु वेदों के अनुयायी *श्रीमद्भागवत* तथा *कठ उपनिषद* में प्राप्य उपरिलिखित श्लोकों जैसे वैदिक वाक्यों से जानकारी प्राप्त करते हैं।

বিশ্বাস করহ তুমি আমার বচনে ।
পুনরপি কু-ভাবনা না করিহ মনে ॥ ১৯৫॥

विश्वास करह तुमि आमार वचने ।
पुनरपि कु-भावना ना करिह मने ॥ १९५॥

विश्वास करह—विश्वास करो; **तुमि**—तुम; **आमार**—मेरे; **वचने**—वचन में; **पुनरपि**—दोबारा; **कु-भावना**—दुर्भावना; **ना करिह**—न करो; **मने**—मन में।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु ने उस ब्राह्मण को आश्वस्त किया, "मेरे वचनों में विश्वास रखें, और अपने मन को इस कुभावना से बोझिल मत करें।"

तात्पर्य

आध्यात्मिक ज्ञान की यही विधि है। *अचिन्त्या खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्* । "हमें तर्क-वितर्क द्वारा अपनी भौतिक अनुभूति से परे की वस्तुओं को समझने का प्रयास नहीं करना चाहिए।" *महाजनो येन गतः स पन्थाः*— "हमें परम्परा से चले आ रहे महापुरुषों के पदचिह्नों का अनुसरण करना

चाहिए।" यदि हम किसी प्रामाणिक आचार्य के पास जायें और उनके वचनों में श्रद्धा रखें, तो आध्यात्मिक साक्षात्कार सरल हो सकेगा।

प्रभुर वचने विप्रेर हइल विश्वास ।
भोजन करिल, हैल जीवनेर आश ॥ १९६॥

प्रभुर वचने विप्रेर हइल विश्वास ।
भोजन करिल, हैल जीवनेर आश ॥ १९६॥

प्रभुर वचने—श्री चैतन्य महाप्रभु के वचनों में; **विप्रेर**—ब्राह्मण का; **हइल**—था; **विश्वास**—विश्वास; **भोजन करिल**—भोजन किया; **हैल**—हो गई; **जीवनेर**—जीने के लिए; **आश**—आशा।

अनुवाद

यद्यपि वह ब्राह्मण उपवास कर रहा था, किन्तु उसे श्री चैतन्य महाप्रभु के शब्दों पर विश्वास था, अतएव उसने भोजन ग्रहण किया और इस तरह उसकी जान बच गई।

तांरे आश्वासिया प्रभु करिला गमन ।
कृतमालाय स्नान करि आइला दुर्वशन ॥ १९७॥

तांरे आश्वासिया प्रभु करिला गमन ।
कृतमालाय स्नान करि आइला दुर्वशन ॥ १९७॥

तांरे आश्वासिया—उसको विश्वास दिलाया; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **करिला गमन**—प्रस्थान किया; **कृतमालाय**—कृतमाला नदी में; **स्नान करि**—स्नान करके; **आइला**—आये; **दुर्वशन**—दुर्वशन।

अनुवाद

ब्राह्मण को आश्वासन देने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु दक्षिण भारत में और आगे बढ़ते गये और अन्त में दुर्वशन पहुँचे, जहाँ उन्होंने कृतमाला नदी में स्नान किया।

तात्पर्य

आजकल यह कृतमाला नदी भागाइ अथवा वैगइ नदी कहलाती है। इसकी

तीन शाखा नदियाँ हैं—सुरुली, वराह नदी तथा बट्टिलागुण्डु। करभाजन ऋषि ने *श्रीमद्भागवत* (११.५.३९) में कृतमाला नदी का उल्लेख किया है।

दुर्वशने रघुनाथे कैल दरशन ।
महेन्द्र-शैले परशुरामेर कैल वन्दन ॥ १९८॥

दुर्वशने रघुनाथे कैल दरशन ।
महेन्द्र-शैले परशुरामेर कैल वन्दन ॥ १९८॥

दुर्वशने—दुर्वशन में; **रघुनाथे**—भगवान् रामचन्द्र का; **कैल दरशन**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने दर्शन किया; **महेन्द्र-शैले**—महेन्द्र शैल पर्वत पर; **परशु-रामेर**—भगवान् परशुराम की; **कैल वन्दन**—वन्दना की।

अनुवाद

दुर्वशन में श्री चैतन्य महाप्रभु ने भगवान् रामचन्द्र के मन्दिर का दर्शन किया। इसी तरह महेन्द्र-शैल नामक पर्वत पर उन्होंने भगवान् परशुराम के दर्शन किये।

तात्पर्य

दुर्वशन या दर्भशयन में, जो आजकल तिरुप्पुल्लनि कहलाता है, और जो रमनद से सात मील पूर्व स्थित है, भगवान् रामचन्द्र का एक मन्दिर है। महेन्द्र-शैल तिरुनेलवेलि के निकट है और जहाँ यह पर्वत समाप्त होता है, वहाँ तिरुचेन्दुर नामक शहर है। महेन्द्र-शैल के पश्चिम में त्रिबाँकुर का प्रदेश है। *रामायण* में महेन्द्र-शैल का उल्लेख हुआ है।

सेतुबन्धे आसि' कैल धनुष्तीर्थे स्नान ।
रामेश्वर देखि' ताहाँ करिल विश्राम ॥ १९९॥

सेतुबन्धे आसि' कैल धनुस्तीर्थे स्नान ।
रामेश्वर देखि' ताहाँ करिल विश्राम ॥ १९९॥

सेतुबन्धे आसि'—सेतुबन्ध पहुँचकर; **कैल**—किया; **धनुः-तीर्थे स्नान**—धनुस्तीर्थ पर स्नान; **रामेश्वर देखि'**—रामेश्वर तीर्थस्थान को देखकर; **ताहाँ**—वहाँ; **करिल विश्राम**—विश्राम किया।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु सेतुबन्ध (रामेश्वर) गये, जहाँ उन्होंने धनुस्तीर्थ नामक स्थान पर स्नान किया। वहाँ से वे रामेश्वर मन्दिर देखने गये और तब विश्राम किया।

तात्पर्य

मण्डपम से पम्बम नामक द्वीप तक समुद्र से होकर जाने वाला मार्ग कहीं रेतीला तथा कहीं जल से युक्त है। पम्बम द्वीप लगभग १७ मील लम्बा तथा छः मील चौड़ा है। इसी द्वीप में पम्बम बन्दरगाह से चार मील उत्तर दिशा में सेतुबन्ध है, जहाँ रामेश्वर का मन्दिर आया हुआ है। यह शिवजी का मन्दिर है और रामेश्वर नाम सूचित करता है कि शिवजी एक ऐसे महापुरुष हैं, जिनके इष्टदेव भगवान् राम हैं। इस तरह रामेश्वर के मन्दिर में स्थापित शिवजी भगवान् रामचन्द्र के बड़े भक्त हैं। कहा जाता है—*देवीपत्तनमारभ्य गच्छेयुः सेतुबन्धनम्*—"दुर्गा देवी का मन्दिर देखने के बाद ही रामेश्वर मन्दिर में जाना चाहिए।" इस क्षेत्र में चौबीस भिन्न-भिन्न तीर्थस्थान हैं, जिनमें से धनुस्तीर्थ एक है और यह रामेश्वर से लगभग १२ मील दक्षिण पूर्व में स्थित है। यह दक्षिण भारतीय रेल के अन्तिम स्टेशन रमनद के निकट है। कहा जाता है कि रावण के छोटे भाई विभीषण के कहने पर भगवान् रामचन्द्र ने अयोध्या लौटते समय इस स्थान पर अपने धनुष से लंका जाने वाले पुल को नष्ट किया था। यह भी कहा जाता है कि जो कोई धनुस्तीर्थ जाता है, वह जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है और जो यहाँ स्नान करता है, वह अग्निष्टोम नामक यज्ञ करने के सारे फल प्राप्त करता है।

বিপ্র-সভায় শুনে তাঁহা কূর্ম-পুরাণ ।
তার মধ্যে আইলা পতিব্রতা-উপাখ্যান ॥২০০॥

विप्र-सभाय शुने ताँहा कूर्म-पुराण ।
तार मध्ये आइला पतिव्रता-उपाख्यान ॥ २०० ॥

विप्र-सभाय—ब्राह्मणों की सभा में; **शुने**—सुना; **ताँहा**—वहाँ; **कूर्म-पुराण**—कूर्म पुराण; **तार मध्ये**—उस ग्रंथ में; **आइला**—आया; **पति-व्रता**—पतिव्रता का; **उपाख्यान**—व्याख्यान।

अनुवाद

वहाँ पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने ब्राह्मणों के संग में कूर्म-पुराण सुना, जिसमें पतिव्रता स्त्री की कथा का आख्यान है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है कि *कूर्म-पुराण* के केवल दो खण्ड वर्तमान समय में उपलब्ध हैं—पूर्व खण्ड तथा उत्तर खण्ड। कभी-कभी कहा जाता है कि *कूर्म-पुराण* में ६,००० श्लोक हैं, किन्तु *श्रीमद्भागवत* के अनुसार मूल कूर्म-पुराण में १७,००० श्लोक हैं और यह अठारह महा-पुराणों में पन्द्रहवाँ माना जाता है।

पतिव्रता-शिरोमणि जनक-नन्दिनी ।
जगतेर माता सीता——रामेर गृहिणी ॥२०१॥

पतिव्रता-शिरोमणि जनक-नन्दिनी ।
जगतेर माता सीता——रामेर गृहिणी ॥ २०१ ॥

पति-व्रता—पतिव्रता; **शिरोमणि**—सर्वोच्च; **जनक-नन्दिनी**—राजा जनक की पुत्री है; **जगतेर**—तीनों जगतों की; **माता**—माता; **सीता**—सीता; **रामेर**—भगवान् रामचन्द्र की; **गृहिणी**—पत्नी।

अनुवाद

श्रीमती सीतादेवी तीनों लोकों की माता तथा भगवान् रामचन्द्र की पत्नी हैं। वे पतिव्रता स्त्रियों में सर्वोच्च हैं और राजा जनक की पुत्री हैं।

रावण देखिया सीता लैल अग्निर शरण ।
रावण हैते अग्नि कैल सीताके आवरण ॥२०२॥

रावण देखिया सीता लैल अग्निर शरण ।
रावण हैते अग्नि कैल सीताके आवरण ॥ २०२ ॥

रावण देखिया—रावण को देखने के बाद; **सीता**—माता सीता; **लैल**—ले लिया; **अग्निर**—अग्नि का; **शरण**—आश्रय; **रावण**—रावण; **हैते**—से; **अग्नि**—अग्नि ने; **कैल**—किया; **सीताके**—माता सीता को; **आवरण**—ढक लिया।

अनुवाद

जब रावण माता सीता का हरण करने आया और उन्होंने उसे देखा तो उन्होंने अग्नि-देवता की शरण ग्रहण कर ली। अग्निदेव ने माता सीता के शरीर को ढक लिया और इस तरह रावण से उनकी रक्षा हो सकी।

'माया-सीता' रावण निल, शुनिला आख्याने ।
शुनि' महाप्रभु हैल आनन्दित मने ॥ २०३॥

'माया-सीता' रावण निल, शुनिला आख्याने ।
शुनि' महाप्रभु हैल आनन्दित मने ॥ २०३॥

माया-सीता—माया सीता; **रावण**—दैत्य रावण; **निल**—लिया; **शुनिला**—सुना; **आख्याने**—कूर्म पुराण के प्रसंग में; **शुनि'**—सुनकर; **महाप्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **हैल**—हो गये; **आनन्दित**—आनन्दित; **मने**—मन में।

अनुवाद

कूर्म-पुराण में यह सुनकर कि किस तरह रावण ने माता सीता के माया रूप का हरण किया, श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त आनन्दित हुए।

सीता लञा राखिलेन पार्वतीर स्थाने ।
'माया-सीता' दिया अग्नि वञ्चिला रावणे ॥ २०४॥

सीता लञा राखिलेन पार्वतीर स्थाने ।
'माया-सीता' दिया अग्नि वञ्चिला रावणे ॥ २०४॥

सीता लञा—माता सीता को लेकर; **राखिलेन**—रखा; **पार्वतीर स्थाने**—माता पार्वती अथवा दुर्गादेवी के पास; **माया-सीता**—माया निर्मित सीता को; **दिया**—दिया; **अग्नि**—अग्नि; **वञ्चिला**—ठग लिया; **रावणे**—दैत्य रावण को।

अनुवाद

अग्नि-देव वास्तविक सीता को देवी दुर्गा अर्थात् पार्वती के स्थान पर ले आये और रावण को सीता का माया-रूप दे दिया। इस तरह रावण को ठगा गया।

রঘুনাথ আসি' যবে রাবণে মারিল ।
অগ্নি-পরীক্ষা দিতে যবে সীতারে আনিল ॥২০৫॥

রঘুনাথ আসি' য়বে রাবণে মারিল ।
অগ্নি-পরীক্ষা দিতে য়বে সীতারে আনিল ॥ ২০৫ ॥

রঘুনাথ—भगवान् रामचन्द्र; **আসি'**—आकर; **য়বে**—जब; **রাবণে**—रावण को; **মারিল**—मारा; **অগ্নি-পরীক্ষা**—अग्नि परीक्षा; **দিতে**—देने के लिए; **য়বে**—जब; **সীতারে**—सीता को; **আনিল**—लाये।

अनुवाद

जब भगवान् रामचन्द्रजी ने रावण को मार डाला, तब उसके बाद सीतादेवी परीक्षा हेतु अग्नि के समक्ष लायी गईं।

তবে মায়া-সীতা অগ্নি করি অন্তর্ধান ।
সত্য-সীতা আনি' দিল রাম-বিদ্যমান ॥২০৬॥

তবে মায়া-সীতা অগ্নি করি অন্তর্ধান ।
সত্য-সীতা আনি' দিল রাম-বিদ্যমান ॥ ২০৬ ॥

তবে—उस समय; **মায়া-সীতা**—माया की सीता; **অগ্নি**—अग्निदेव; **করি**—करके; **অন্তর্ধান**—अन्तर्धान; **সত্য-সীতা**—असली सीता; **আনি'**—लाकर; **দিল**—दे दिया; **রাম**—रामचन्द्र की; **বিদ্যমান**—उपस्थिति में।

अनुवाद

जब रामचन्द्रजी द्वारा अग्नि के समक्ष माया सीता लाई गईं तो अग्नि ने इस माया-रूप को अप्रकट कर दिया और भगवान् रामचन्द्र को वास्तविक सीता लाकर प्रदान कीं।

শুনিঞা প্রভুর আনন্দিত হৈল মন ।
রামদাস-বিপ্রের কথা হইল স্মরণ ॥২০৭॥

শুনিঞা প্রভুর আনন্দিত হৈল মন ।
রামদাস-বিপ্রের কথা হইল স্মরণ ॥ ২০৭ ॥

শুনিঞা—सुनकर; **প্রভুর**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **আনন্দিত**—आनन्दित; **হৈল**—हो

गया; **मन**—मन; **रामदास-विप्रेर**—रामदास ब्राह्मण की; **कथा**—कथा; **हइल स्मरण**—उन्हें याद आई।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने यह कहानी सुनी, तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें रामदास विप्र के शब्द याद आये।

এ-সব সিদ্ধান্ত শুনি' প্রভুর আনন্দ হৈল ।
ব্রাহ্মণের স্থানে মাগি' সেই পত্র নিল ॥২০৮॥

ए-सब सिद्धान्त शुनि' प्रभुर आनन्द हैल ।
ब्राह्मणेर स्थाने मागि' सेइ पत्र निल ॥ २०८ ॥

ए-सब सिद्धान्त—ये सब निर्णायक कथन; **शुनि'**—सुनकर; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **आनन्द**—आनन्द; **हैल**—हुआ; **ब्राह्मणेर स्थाने**—ब्राह्मणों से; **मागि'**—माँगकर; **सेइ**—वे; **पत्र**—पत्र; **निल**—ले लिए।

अनुवाद

जब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कूर्म-पुराण से इन निश्चयात्मक सिद्धान्तों को सुना, तो उन्हें अतीव प्रसन्नता हुई। उन्होंने ब्राह्मण की अनुमति से कूर्म-पुराण के इन हस्तलिखित पन्नों को ले लिया।

নূতন পত্র লেখাঞা পুস্তকে দেওয়াইল ।
প্রতীতি লাগি' পুরাতন পত্র মাগি' নিল ॥২০৯॥

नूतन पत्र लेखाञा पुस्तके देओयाइल ।
प्रतीति लागि' पुरातन पत्र मागि' निल ॥ २०९ ॥

नूतन—नूतन; **पत्र**—पत्र; **लेखाञा**—लिखवाकर; **पुस्तके**—पुस्तक में; **देओयाइल**—उन्होंने दिया; **प्रतीति लागि'**—स्पष्ट प्रमाण के रूप में; **पुरातन**—पुरातन; **पत्र**—पत्र; **मागि'**—माँगकर; **निल**—ले लिए।

अनुवाद

चूँकि कूर्म-पुराण अत्यन्त प्राचीन है, अतएव उसकी पाण्डुलिपि भी अत्यन्त प्राचीन थी। श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रत्यक्ष साक्ष्य के लिए मूल पन्ने

रख लिए और नये पन्नों पर मूल की प्रतिलिपि करके *कूर्म पुराण* में लगा दी।

পত্র লঞা পুনঃ দক্ষিণ-মথুরা আইলা ।
রামদাস বিপ্রে সেই পত্র আনি দিলা ॥২১০॥

पत्र लञा पुनः दक्षिण-मथुरा आइला ।
रामदास विप्रे सेइ पत्र आनि दिला ॥ २१० ॥

पत्र लञा—उन पत्रों को लेकर; **पुनः**—पुनः; **दक्षिण-मथुरा**—दक्षिण मथुरा; **आइला**—आये; **रामदास विप्रे**—रामदास ब्राह्मण को; **सेइ पत्र**—उन्हीं पत्रों को; **आनि**—लाकर; **दिला**—दे दिया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तब लौटकर दक्षिण मथुरा (मदुरई) आये और *कूर्म पुराण* की मूल पाण्डुलिपि रामदास विप्र को दी।

সীতয়ারাধিতো বহ্নিশ্ছায়া-সীতামজীজনৎ ।
তাং জহার দশ-গ্রীবঃ সীতা বহ্নি-পুরং গতা ॥২১১॥
পরীক্ষা-সময়ে বহ্নিং ছায়া-সীতা বিবেশ সা ।
বহ্নিঃ সীতাং সমানীয় তৎপুরস্তাদনীনয়ৎ ॥২১২॥

सीतयाराधितो वह्निश्छाया-सीतामजीजनत् ।
तां जहार दश-ग्रीवः सीता वह्नि-पुरं गता ॥ २११ ॥
परीक्षा-समये वह्निं छाया-सीता विवेश सा ।
वह्निः सीतां समानीय तत्पुरस्तादनीनयत् ॥ २१२ ॥

सीतया—माता सीता द्वारा; **आराधितः**—बुलाने पर; **वह्निः**—अग्नि देवता; **छाया-सीताम्**—माता सीता का माया रूप; **अजीजनत्**—निर्मित किया; **ताम्**—उसको; **जहार**—अगवा करके; **दश-ग्रीवः**—दस मुखी रावण ने; **सीता**—माता सीता; **वह्नि-पुरम्**—अग्नि देवता के निवास ; **गता**—चली गईं; **परीक्षा-समये**—परीक्षा के समय; **वह्निम्**—अग्नि; **छाया-सीता**—माया रूपी सीता; **विवेश**—प्रवेश कर गईं; **सा**—वह; **वह्निः**—अग्नि देवता; **सीताम्**—मूल सीता को; **समानीय**—वापस लाकर; **तत्-पुरस्तात्**—उनकी उपस्थिति में; **अनीनयत्**—वापस लाया।

अनुवाद

"जब सीताजी ने अग्निदेव का आवाहन किया, तो वे सीता का मायारूप ले आये, और दस सिरों वाले रावण ने इस माया-सीता का अपहरण कर लिया। तब मूल सीता अग्निदेव के घर चली गईं। जब भगवान् रामचन्द्र ने सीता के शरीर की परीक्षा ली, तो वह माया-सीता थी जो अग्नि में प्रवेश कर गईं। उसी समय अग्निदेव ने मूल सीता को अपने घर से लाकर भगवान् रामचन्द्र को अर्पित कर दीं।

तात्पर्य

ये दोनों श्लोक *कूर्म-पुराण* के हैं।

पत्र पाञा विप्रेर हैल आनन्दित मन ।
प्रभुर चरणे धरि' करये क्रन्दन ॥२१३॥

पत्र पाञा विप्रेर हैल आनन्दित मन ।
प्रभुर चरणे धरि' करये क्रन्दन ॥ २१३॥

पत्र पाञा—पत्र पाकर; **विप्रेर**—ब्राह्मण का; **हैल**—हो गया; **आनन्दित**—आनन्दित; **मन**—मन; **प्रभुर चरणे**—श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमल; **धरि'**—पकड़कर; **करये**—करने लगा; **क्रन्दन**—रुदन।

अनुवाद

रामदास विप्र कूर्म पुराण के मूल पन्ने पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह तुरन्त श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिरकर रुदन करने लगा।

विप्र कहे,—तुमि साक्षाच्छ्री-रघुनन्दन ।
सन्न्यासीर वेषे मोरे दिला दरशन ॥२१४॥

विप्र कहे,—तुमि साक्षात्श्री-रघुनन्दन ।
सन्न्यासीर वेषे मोरे दिला दरशन ॥ २१४॥

विप्र कहे—ब्राह्मण ने कहा; **तुमि**—आप; **साक्षात्**—साक्षात्; **श्री-रघुनन्दन**—भगवान् श्री रामचन्द्र; **सन्न्यासीर वेषे**—संन्यासी के वेष में; **मोरे**—मुझे; **दिला**—दिया; **दरशन**—दर्शन।

अनुवाद

पाण्डुलिपि पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ब्राह्मण ने कहा, "आप साक्षात् भगवान् रामचन्द्र हैं, और संन्यासी के वेश में मुझे दर्शन देने आये हैं।

মহা-দুঃখ হইতে মোরে করিলা নিস্তার ।
আজি মোর ঘরে ভিক্ষা কর অঙ্গীকার ॥২১৫॥

महा-दुःख हइते मोरे करिला निस्तार ।
आजि मोर घरे भिक्षा कर अङ्गीकार ॥ २१५ ॥

महा-दुःख—महान् दुःख; **हइते**—से; **मोरे**—मुझे; **करिला निस्तार**—आपने छुड़ाया; **आजि**—आज; **मोर**—मेरे; **घरे**—घर पर; **भिक्षा**—भोजन; **कर**—करें; **अङ्गीकार**—स्वीकार।

अनुवाद

"हे मान्यवर, आपने मुझे अत्यन्त दुःखद परिस्थिति से उबारा है। मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे घर भोजन करें। कृपया मेरा यह निमन्त्रण स्वीकार करें।

মনো-দুঃখে ভাল ভিক্ষা না দিল সেই দিনে ।
মোর ভাগ্যে পুনরপি পাইলুঁ দরশনে ॥২১৬॥

मनो-दुःखे भाल भिक्षा ना दिल सेइ दिने ।
मोर भाग्ये पुनरपि पाइलुँ दरशने ॥ २१६ ॥

मनो-दुःखे—मानसिक दुःख के कारण; **भाल भिक्षा**—अच्छा भोजन; **ना दिल**—आपको नहीं दे सका; **सेइ दिने**—उस दिन; **मोर भाग्ये**—अपने सौभाग्य से; **पुनरपि**—पुनः; **पाइलुँ**—मैंने पाया है; **दरशने**—दर्शन।

अनुवाद

"मानसिक क्षोभ के कारण उस दिन मैं आपको अच्छा भोजन नहीं करा सका। अब सौभाग्यवश आप पुनः मेरे घर पधारे हैं।"

এত বলি' সেই বিপ্র সুখে পাক কৈল ।
উত্তম প্রকারে প্রভুকে ভিক্ষা করাইল ॥২১৭॥

एत बलि' सेइ विप्र सुखे पाक कैल ।
उत्तम प्रकारे प्रभुके भिक्षा कराइल ॥ २१७ ॥

एत बलि'—यह कहकर; **सेइ विप्र**—वह ब्राह्मण; **सुखे**—खुश होकर; **पाक कैल**—भोजन बनाने लगा; **उत्तम प्रकारे**—उत्तम प्रकार से; **प्रभुके**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **भिक्षा**—भोजन; **कराइल**—दिया।

अनुवाद

यह कहकर उस ब्राह्मण ने सुखपूर्वक भोजन बनाया और श्री चैतन्य महाप्रभु को उत्तम कोटि का भोजन कराया।

सेइ रात्रि ताहाँ रहि' ताँरे कृपा करि' ।
पाण्ड्य-देशे ताम्रपर्णी गेला गौरहरि ॥ २१८ ॥
सेइ रात्रि ताहाँ रहि' ताँरे कृपा करि' ।
पाण्ड्य-देशे ताम्रपर्णी गेला गौरहरि ॥ २१८ ॥

सेइ रात्रि—उस रात; **ताहाँ**—वहाँ; **रहि'**—रहकर; **ताँरे**—ब्राह्मण पर; **कृपा करि'**—कृपा करके; **पाण्ड्य देशे**—पाण्ड्यदेश नामक स्थान में; **ताम्रपर्णी**—ताम्रपर्णी नामक नदी को; **गेला**—चले गये; **गौरहरि**—श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने वह रात उस ब्राह्मण के घर बिताई। उस पर कृपा करने के बाद महाप्रभु ने पाण्ड्य देश में ताम्रपर्णी नदी की ओर यात्रा प्रारम्भ की।

तात्पर्य

पाण्ड्य देश दक्षिण भारत में है और केरल और चोल के नाम से प्रसिद्ध है। इस सारे प्रदेश में पाण्ड्य पदवीधारी अनेक राजा हुए, जिन्होंने मदुरई तथा रामेश्वर नामक स्थानों पर राज्य किया। *रामायण* में ताम्रपर्णी नदी का नाम आया है। यह पुरुणई के नाम से प्रसिद्ध है, और तिरुनेल्वेली से होकर बहती है और बाद में बंगाल की खाड़ी में गिरती है। *श्रीमद्भागवत* (११.५.३९) में भी ताम्रपर्णी नदी का उल्लेख है।

তাম্রপর্ণী স্নান করি' তাম্রপর্ণী-তীরে ।
নয় ত্রিপতি দেখি' বুলে কুতূহলে ॥২১৯॥

তাম্রপর্ণী স্নান করি' তাম্রপর্ণী-তীরে ।
নয় ত্রিপতি দেখি' বুলে কুতূহলে ॥ ২১৯ ॥

তাম্রপর্ণী—তাম্রপরণী नदी में; **স্নান করি'**—स्नान करके; **তাম্রপর্ণী-তীরে**—তাম্রপর্ণী नदी के तट पर; **নয় ত্রিপতি**—नय त्रिपती; **দেখি'**—देखने के बाद; **বুলে**—भ्रमण करने लगे; **কুতূহলে**—उत्सुकतापूर्वक।

अनुवाद

ताम्रपर्णी नदी के तट पर नयत्रिपति नामक स्थान में भगवान् विष्णु के नौ मन्दिर थे। महाप्रभु ने नदी में स्नान करने के बाद अत्यन्त उत्सुकता से अर्चाविग्रह देखे और वहाँ विचरण किया।

तात्पर्य

नयत्रिपति (नव-तिरुपति) नामक विष्णु के ये नौ मन्दिर आल्वार तिरुनगरइ के चारों ओर स्थित हैं। यह तिरुनेल्वेली से लगभग १७ मील दक्षिण पूर्व में स्थित एक कस्बा है। वार्षिक उत्सव के समय इन मन्दिरों के अर्चाविग्रह इस कस्बे में एकत्र होते हैं।

চিয়ড়তলা তীর্থে দেখি' শ্রী-রাম-লক্ষ্মণ ।
তিল-কাঞ্চী আসি' কৈল শিব দরশন ॥২২০॥

চিয়ড়তলা তীর্থে দেখি' শ্রী-রাম-লক্ষ্মণ ।
তিল-কাঞ্চী আসি' কৈল শিব দরশন ॥ ২২০ ॥

চিয়ড়তলা—चियड़तला; **তীর্থে**—तीर्थ स्थान; **দেখি'**—देखकर; **শ্রী-রাম-লক্ষ্মণ**—राम लक्ष्मण के विग्रह को; **তিল-কাঞ্চী**—तिलकांची आकर किया; **আসি'**—आकर; **কৈল**—किया; **শিব দরশন**—शिवजी के मन्दिर का दर्शन।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु चियड़तला नामक तीर्थस्थान गये, जहाँ उन्होंने रामचन्द्र तथा लक्ष्मण दोनों भाइयों के अर्चाविग्रह देखे। तब वे तिलकांची गये, जहाँ उन्होंने शिवजी का मन्दिर देखा।

तात्पर्य

कभी-कभी चियड़तला को छेरतला कहा जाता है। यह कैल शहर के निकट है। यहाँ पर श्री रामचन्द्र तथा उनके भाई लक्ष्मण को समर्पित एक मन्दिर है। तिलकांची (तेनकशी) तिरुनेल्वली शहर से लगभग तीस मील उत्तर पूर्व की ओर है।

गजेन्द्र-मोक्षण-तीर्थे देखि विष्णु-मूर्ति ।
पानागड़ि-तीर्थे आसि' देखिल सीतापति ॥२२१॥

गजेन्द्र-मोक्षण-तीर्थे देखि विष्णु-मूर्ति ।
पानागड़ि-तीर्थे आसि' देखिल सीतापति ॥ २२१ ॥

गजेन्द्र-मोक्षण-तीर्थे—गर्जेन्द्र मोक्षण नामक तीर्थस्थान; **देखि**—देखकर; **विष्णु-मूर्ति**—भगवान् विष्ण की मूर्ति; **पानागड़ि-तीर्थे**—पाणागढ़ी तीर्थस्थल को; **आसि'**—आकर; **देखिल**—देखा; **सीता-पति**—भगवान् रामचन्द्र और सीतादेवी।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु गजेन्द्रमोक्षण नामक तीर्थस्थान गये, जहाँ उन्होंने भगवान् विष्णु का मन्दिर देखा। फिर वे पानागड़ि नामक पवित्र स्थल पर आये, जहाँ उन्होंने भगवान् रामचन्द्र तथा सीताजी के अर्चाविग्रह देखे।

तात्पर्य

कभी-कभी भ्रमवश लोग गजेन्द्रमोक्षण मन्दिर को शिव-मन्दिर समझ बैठते हैं। यह कैवेर (नगेरकोइल) शहर से लगभग दो मील दक्षिण में है। वस्तुतः इसमें जो अर्चाविग्रह है, वह शिवजी का नहीं, अपितु भगवान् विष्णु का है।

पानागड़ि (पन्नकुड़ी) तिरुनेल्वेलि से लगभग तीस मील दक्षिण में है। पहले यहाँ के मन्दिर में श्री रामचन्द्र का अर्चाविग्रह था, किन्तु बाद में शैवों ने रामचन्द्र के स्थान में शिवजी का अर्चाविग्रह रख दिया, जिसका नाम रामेश्वर या रामलिंग शिव है।

चाम्तापुरे आसि' देखि' श्री-राम-लक्ष्मण ।
श्री-वैकुण्ठे आसि' कैल विष्णु दरशन ॥२२२॥

चाम्तापुरे आसि' देखि' श्री-राम-लक्ष्मण ।
श्री-वैकुण्ठे आसि' कैल विष्णु दरशन ॥ २२२॥

चाम्तापुरे—चम्तापुर में; **आसि'**—आकर; **देखि'**—देखा; **श्री-राम-लक्ष्मण**—श्री रामचन्द्र और लक्ष्मण; **श्री-वैकुण्ठे आसि'**—श्री वैकुण्ठ आकर; **कैल**—किया; **विष्णु दरशन**—भगवान् विष्णु के मन्दिर का दर्शन।

अनुवाद

बाद में महाप्रभु चाम्तापुर गये, जहाँ उन्होंने श्री रामचन्द्र तथा लक्ष्मण के अर्चाविग्रह के दर्शन किये। इसके बाद वे श्री वैकुण्ठ गये, और वहाँ भगवान् विष्णु का मन्दिर देखा।

तात्पर्य

कभी-कभी चाम्तापुर को चेंगानुर भी कहा जाता है। यह केरल रियासत में स्थित है। यहाँ भगवान् रामचन्द्र तथा लक्ष्मण का एक मन्दिर है। श्री वैकुण्ठ ताम्रपर्णी नदी के तट पर स्थित है और आल्वार तिरुनगरइ से लगभग ४ मील उत्तर तथा तिरुनेल्वेलि से १६ मील दक्षिण पूर्व है।

मलय-पर्वते कैल अगस्त्य-वन्दन ।
कन्या-कुमारी ताहाँ कैल दरशन ॥२२३॥

मलय-पर्वते कैल अगस्त्य-वन्दन ।
कन्या-कुमारी ताहाँ कैल दरशन ॥ २२३॥

मलय-पर्वते—मलय पर्वत में; **कैल**—की; **अगस्त्य-वन्दन**—अगस्त्य मुनि की वंदना; **कन्या-कुमारी**—कन्याकुमारी; **ताहाँ**—वहाँ; **कैल दरशन**—दर्शन किया।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु मलय पर्वत गये और उन्होंने अगस्त्य मुनि की वन्दना की। तत्पश्चात् उन्होंने कन्याकुमारी (केप केमोरिन) नामक स्थान की मुलाकात ली।

तात्पर्य

दक्षिण भारत में वह पर्वतों की माला, जो केरल से प्रारम्भ होकर

कन्याकुमारी तक फैली हुई है, मलय पर्वत कहलाती है। अगस्त्य के सम्बन्ध में चार प्रकार के मत हैं : (१) तंजोर जिले में अगस्त्यमपल्ली नामक गाँव में अगस्त्य मुनि का मन्दिर है। (२) शिवगिरि नामक पर्वत पर भगवान् स्कन्द का मन्दिर है, जिसकी स्थापना अगस्त्य मुनि द्वारा की गई बताई जाती है। (३) कुछ लोग कहते हैं कि कन्याकुमारी के पास पठिया नामक पर्वत है, जहाँ अगस्त्य मुनि रहते थे। (४) अगस्त्यमलय नामक एक अन्य स्थान भी है, जो ताम्रपर्णी नदी के दोनों किनारे में फैली हुई एक पर्वत माला है। केप केमोरिन कन्याकुमारी भी कहलाता है।

आम्लितलाय देखि' श्री-राम गौरहरि ।
मल्लार-देशेते आइला यथा भट्टथारि ॥२२४॥

आम्लितलाय देखि' श्री-राम गौरहरि ।
मल्लार-देशेते आइला यथा भट्टथारि ॥ २२४॥

आम्लितलाय—आम्लितला; **देखि'**—देखकर; **श्री-राम**—श्री रामचन्द्र का अर्चाविग्रह; **गौरहरि**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **मल्लार-देशेते**—मल्लार देश; **आइला**—आये; **यथा**—जहाँ; **भट्टथारि**—भट्टाथारि जाति।

अनुवाद

कन्याकुमारी देख चुकने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु आम्लितल आये, जहाँ उन्होंने श्री रामचन्द्र के अर्चाविग्रह का दर्शन किया। तत्पश्चात् वे मल्लार देश गये, जहाँ भट्टथारि जाति के लोग रहते थे।

तात्पर्य

मल्लार देश के उत्तर में दक्षिण कनर है। इसके पूर्व में कुर्ग तथा मैसूर है। दक्षिण में कोचिन तथा पश्चिम में अरब सागर है। भट्टथारि लोग खानाबदोश जाति के हैं। वे इच्छानुसार डेरा डालकर रहते हैं। उनके रहने का कोई स्थायी स्थान नहीं है। बाहर से तो वे संन्यासियों का वेश धारण करते हैं, किन्तु उनका असली काम चोरी और ठगी है। वे दूसरों को अपने डेरों में स्त्रियाँ लाने को फँसाते हैं, और अनेक स्त्रियों को ठगते हैं और अपनी जाति में रख लेते हैं। इस तरह उनकी जनसंख्या बढ़ती है। बंगाल में भी ऐसी ही एक जाति है।

वस्तुत: विश्वभर में खानाबदोश जातियाँ हैं, जिनका कार्य फुसलाना, ठगना और अबोध स्त्रियों को चुराना है।

तमाल-कार्तिक देखि' आइल वेतापनि ।
रघुनाथ देखि' ताहाँ वञ्चिला रजनी ॥२२५॥

तमाल-कार्तिक देखि' आइल वेतापनि ।
रघुनाथ देखि' ताहाँ वञ्चिला रजनी ॥ २२५॥

तमाल-कार्तिक—तमाल कार्तिक स्थान; **देखि'**—देखकर; **आइल**—आये; **वेतापनि**—वेतापनि; **रघुनाथ देखि'**—भगवान् रामचन्द्र का मन्दिर देखकर; **ताहाँ**—वहाँ; **वञ्चिला रजनी**—रात व्यतीत की।

अनुवाद

मल्लार देश घूमने के बाद महाप्रभु तमालकार्तिक गये, और वहाँ से वेतापनि गये। वहाँ उन्होंने रघुनाथ अर्थात् रामचन्द्र का मन्दिर देखा और वहीं रात बिताई।

तात्पर्य

तमालकार्तिक तिरुनेल्वेलि से ४४ मील दक्षिण तथा अरमवल्ली पर्वत से २ मील दक्षिण की ओर स्थित है। यह तोवलइ जिले में स्थित है। वहाँ सुब्रह्मण्य अर्थात् शिवपुत्र कार्तिक का मन्दिर है।

वेतापनि या वातापाणी तामिलनाडु रियासत में कैल के उत्तर में है। यह भूतपण्डि नाम से भी विख्यात है और तोबल जिले के अन्तर्गत है। ऐसा माना जाता है कि यहाँ पर पहले भगवान् रामचन्द्र का अर्चाविग्रह था। बाद में इसके स्थान पर शिवजी का अर्चाविग्रह स्थापित कर दिया गया, जो रामेश्वर या भूतनाथ के नाम से विख्यात है।

গোসাঞির সঙ্গে রহে কৃষ্ণদাস ব্রাহ্মণ ।
ভট্টথারি-সহ তাহাঁ হৈল দরশন ॥২২৬॥

গোসাঞির সঙ্গে রহে কৃষ্ণদাস ব্রাহ্মণ ।
ভট্টথারি-সহ তাহাঁ হৈল দরশন ॥ ২২৬॥

गोसाञि—महाप्रभु; **सङ्गे**—के साथ; **रहे**—था; **कृष्णदास ब्राह्मण**—कृष्णदास नामक एक ब्राह्मण सेवक; **भट्टथारि-सह**—भट्टाथारि के साथ; **ताहाँ**—वहाँ; **हैल**—तक; **दरशन**—भेंट।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु के साथ उनका सेवक था, जिसका नाम कृष्णदास था। वह ब्राह्मण था, किन्तु वहाँ उसकी भेंट भट्टथारियों से हो गई।

स्त्री-धन देखाञा ताँर लोभ जन्माइल ।
आर्य सरल विप्रेर बुद्धि-नाश कैल ॥२२७॥

स्त्री-धन देखाञा ताँर लोभ जन्माइल ।
आर्य्य सरल विप्रेर बुद्धि-नाश कैल ॥ २२७॥

स्त्री-धन—महिलाएँ; **देखाञा**—दिखाकर; **ताँर**—उसको; **लोभ**—आकर्षण; **जन्माइल**—उन्होंने उत्पन्न किया; **आर्य्य**—आर्य (पुरुष); **सरल**—सरल; **विप्रेर**—ब्राह्मण की; **बुद्धि-नाश**—बुद्धि नाश; **कैल**—की।

अनुवाद

भट्टथारियों ने ब्राह्मण कृष्णदास को स्त्रियों के माध्यम से लोभ में फँसा लिया, क्योंकि वह सरल एवं भला आदमी था। उन्होंने अपनी बुरी संगति से उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी।

प्रातेउठि' आइला विप्र भट्टथारि-घरे ।
ताहार उद्देशे प्रभु आइला सत्वरे ॥२२८॥

प्राते उठि' आइला विप्र भट्टथारि-घरे ।
ताहार उद्देशे प्रभु आइला सत्वरे ॥ २२८॥

प्राते—प्रातः काल; **उठि'**—बिस्तर से उठकर; **आइला**—आया; **विप्र**—ब्राह्मण कृष्णदास; **भट्टथारि-घरे**—भट्टाथारियों के स्थान पर; **ताहार उद्देशे**—उसके लिए; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **आइला**—आये; **सत्वरे**—अति शीघ्र।

अनुवाद

भट्टथारियों से फुसलाया हुआ कृष्णदास प्रातःकाल उठते ही उनके घर गया और महाप्रभु भी उसे ढूँढने के लिए तेजी से वहाँ गये।

आसिया कहेन सब भट्टथारि-गणे ।
आमार ब्राह्मण तुमि राख कि कारणे ॥२२९॥
आसिया कहेन सब भट्टथारि-गणे ।
आमार ब्राह्मण तुमि राख कि कारणे ॥ २२९ ॥

आसिया—आकर; **कहेन**—उन्होंने कहा; **सब**—सब; **भट्टथारि-गणे**—भट्टाथारियों को; **आमार**—मेरा; **ब्राह्मण**—ब्राह्मण सहायक; **तुमि**—तुम; **राख**—रख रहे हो; **कि**—किस; **कारणे**—कारण से।

अनुवाद

भट्टथारियों के पास आकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे पूछा, "तुम लोग मेरे ब्राह्मण सहायक को अपने यहाँ क्यों रखे हुए हो?

आमिह सन्न्यासी देख, तुमिह सन्न्यासी ।
मोरे दुःख देह,—तोमार 'न्याय' नाहि बासि ॥२३०॥
आमिह सन्न्यासी देख, तुमिह सन्न्यासी ।
मोरे दुःख देह,—तोमार 'न्याय' नाहि बासि ॥ २३० ॥

आमिह—मैं; **सन्न्यासी**—संन्यासी; **देख**—तुम देखते हो; **तुमिह**—तुम भी; **सन्न्यासी**—संन्यासी; **मोरे**—मुझे; **दुःख**—दुःख; **देह**—देते हो; **तोमार**—तुम्हारा; **न्याय**—न्याय; **नाहि बासि**—मुझे नहीं दिखता।

अनुवाद

"मैं संन्यासी हूँ और तुम लोग भी हो। फिर भी तुम लोग जान-बूझकर मुझे कष्ट दे रहे हो। मुझे इसमें कोई अच्छा कारण नहीं दिखता।"

शुनि' सब भट्टथारि उठे अस्त्र लञा ।
मारिबारे आइल सबे चारि-दिके धाञा ॥२३१॥

शुनि' सब भट्टथारि उठे अस्त्र लञा ।
मारिबारे आइल सबे चारि-दिके धाञा ॥ २३१ ॥

शुनि'—यह सुनकर; **सब**—सब; **भट्टथारि**—भट्टथारी; **उठे**—उठे; **अस्त्र**—शस्त्र; **लञा**—लेकर; **मारिबारे**—मारने के लिए; **आइल**—आये; **सबे**—सब; **चारि-दिके**—चारों ओर से; **धाञा**—दौड़कर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की बात सुनकर सारे भट्टथारि सभी दिशाओं से अपने-अपने हाथों में हथियार लिए महाप्रभु को मारने के लिए दौड़े आये।

তার অস্ত্র তার অঙ্গে পড়ে হাত হৈতে ।
খণ্ড খণ্ড হৈল ভট্টথারি পলায় চারি ভিতে ॥২৩২॥

तार अस्त्र तार अङ्गे पड़े हात हैते ।
खण्ड खण्ड हैल भट्टथारि पलाय चारि भिते ॥ २३२ ॥

तार अस्त्र—उनके शस्त्र; **तार अङ्गे**—उनके शरीरों पर; **पड़े**—गिरते हैं; **हात हैते**—उनके हाथों से; **खण्ड खण्ड**—खण्ड खण्ड हो गये; **हैल**—हो गये; **भट्टथारि**—भट्टाथारी; **पलाय**—भाग गये; **चारि भिते**—चारों दिशाओं में।

अनुवाद

किन्तु उनके हथियार उनके हाथों से छूटकर गिर पड़े, और उन्हीं के शरीरों पर जा लगे। इस तरह जब कुछ भट्टथारि कटकर टुकड़े-टुकड़े हो गये, तो अन्य लोग चारों दिशाओं में भाग गये।

ভট্টথারি-ঘরে মহা উঠিল ক্রন্দন ।
কেশে ধরি' বিপ্রে লঞা করিল গমন ॥২৩৩॥

भट्टथारि-घरे महा उठिल क्रन्दन ।
केशे धरि' विप्रे लञा करिल गमन ॥ २३३ ॥

भट्टथारि-घरे—भट्टथारियों के घर पर; **महा**—जोरदार; **उठिल**—उठा; **क्रन्दन**—रोना; **केशे धरि'**—बालों से पकड़कर; **विप्रे**—ब्राह्मण कृष्णदास; **लञा**—लेकर; **करिल**—किया; **गमन**—प्रस्थान।

अनुवाद

जब भट्टथारि जाति में चीख-चीत्कार मच गई, तब श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्णदास के बाल पकड़कर उसे बाहर ले आये।

সেই দিন চলি' আইলা পয়স্বিনী-তীরে ।
স্নান করি' গেলা আদি-কেশব-মন্দিরে ॥২৩৪॥

सेइ दिन चलि' आइला पयस्विनी-तीरे ।
स्नान करि' गेला आदि-केशव-मन्दिरे ॥ २३४॥

सेइ दिन—उसी दिन; **चलि'**—चलकर; **आइला**—आये; **पयस्विनी-तीरे**—पयस्विनी नदी के तट पर; **स्नान करि'**—स्नान करके; **गेला**—गये; **आदि-केशव-मन्दिरे**—आदि केशव मन्दिर को।

अनुवाद

उसी रात श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनका सहायक कृष्णदास पयस्विनी नदी के तट पर आये। उन्होंने स्नान किया और फिर वे आदि-केशव का मन्दिर देखने गये।

কেশব দেখিয়া প্রেমে আবিষ্ট হৈলা ।
নতি, স্তুতি, নৃত্য, গীত, বহুত করিলা ॥২৩৫॥

केशव देखिया प्रेमे आविष्ट हैला ।
नति, स्तुति, नृत्य, गीत, बहुत करिला ॥ २३५॥

केशव देखिया—भगवान् केशव के विग्रह को देखकर; **प्रेमे**—प्रेमावेश में; **आविष्ट हैला**—अभिभूत हो गये; **नति**—प्रणाम; **स्तुति**—स्तुति; **नृत्य**—नृत्य; **गीत**—गान; **बहुत करिला**—कई प्रकार से किया।

अनुवाद

आदि-केशव मन्दिर को देखते ही महाप्रभु भावाविष्ट हो गये। वे विविध नमस्कार तथा स्तुतियाँ करके कीर्तन करने लगे और नाचने लगे।

প্রেম দেখি' লোকে হৈল মহা-চমৎকার ।
সর্ব-লোক কৈল প্রভুর পরম সৎকার ॥২৩৬॥

प्रेम देखि' लोके हैल महा-चमत्कार ।
सर्व-लोक कैल प्रभुर परम सत्कार ॥ २३६ ॥

प्रेम देखि'—उनके प्रेमभाव को देखकर; **लोके**—लोग; **हैल**—हो गये; **महा-चमत्कार**—अत्यन्त चकित; **सर्व-लोक**—सभी लोग; **कैल**—किया; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **परम सत्कार**—बड़ा सत्कार।

अनुवाद

वहाँ के सारे लोग श्री चैतन्य महाप्रभु की भावमयी लीलाओं को देखकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने महाप्रभु का अच्छे से सत्कार किया।

महा-भक्त-गण-सह ताहाँ गोष्ठी कैल ।
'ब्रह्म-संहिताध्याय'-पुँथि ताहाँ पाइल ॥ २३७ ॥

महा-भक्त-गण-सह ताहाँ गोष्ठी कैल ।
'ब्रह्म-संहिताध्याय'-पुँथि ताहाँ पाइल ॥ २३७ ॥

महा-भक्त-गण-सह—उच्च भक्तों के साथ; **ताहाँ**—वहाँ; **गोष्ठी कैल**—चर्चा की; **ब्रह्म-संहिता-अध्याय**—*ब्रह्म-संहिता* का एक अध्याय; **पुँथि**—शास्त्र; **ताहाँ** वहाँ; **पाइल** पाया।

अनुवाद

आदि-केशव के मन्दिर में श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्नत भक्तों के बीच आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा की। वहाँ रहते हुए उन्हें *ब्रह्म-संहिता* का एक अध्याय मिला।

पुँथि पाञा प्रभुर हैल आनन्द अपार ।
कम्पाश्रु-स्वेद-स्तम्भ-पुलक विकार ॥ २३८ ॥

पुँथि पाञा प्रभुर हैल आनन्द अपार ।
कम्पाश्रु-स्वेद-स्तम्भ-पुलक विकार ॥ २३८ ॥

पुँथि पाञा—उस शास्त्र को पाकर; **प्रभुर**—चैतन्य महाप्रभु का; **हैल**—था; **आनन्द**—आनन्द; **अपार**—अपार; **कम्प**—कम्पन; **अश्रु**—अश्रु; **स्वेद**—पसीना; **स्तम्भ**—जड़ता; **पुलक**—पुलकित होना; **विकार**—विकार।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु इस शास्त्र का एक अध्याय प्राप्त करके अत्यन्त प्रसन्न थे और उनके शरीर में कम्प, अश्रु, पसीना, समाधि तथा प्रसन्नता के भावरूपी विकार प्रकट हो आये।

सिद्धान्त-शास्त्र नाहि 'ब्रह्म-संहिता'र सम ।
गोविन्द-महिमा ज्ञानेर परम कारण ॥२३९॥
अल्पाक्षरे कहे सिद्धान्त अपार ।
सकल-वैष्णव-शास्त्र-मध्ये अति सार ॥२४०॥

सिद्धान्त-शास्त्र नाहि 'ब्रह्म-संहिता'र सम ।
गोविन्द-महिमा ज्ञानेर परम कारण ॥ २३९ ॥
अल्पाक्षरे कहे सिद्धान्त अपार ।
सकल-वैष्णव-शास्त्र-मध्ये अति सार ॥ २४० ॥

सिद्धान्त-शास्त्र—निर्णायक शास्त्र; **नाहि**—नहीं है; **ब्रह्म-संहितार सम**—*ब्रह्म-संहिता* जैसा; **गोविन्द-महिमा**—भगवान् गोविन्द की महिमाएँ; **ज्ञानेर**—ज्ञान का; **परम**—अन्तिम; **कारण**—कारण; **अल्प-अक्षरे**—संक्षिप्त में; **कहे**—वर्णन है; **सिद्धान्त**—सिद्धान्त; **अपार**—असीम; **सकल**—सब; **वैष्णव-शास्त्र**—वैष्णव शास्त्र; **मध्ये**—मध्य; **अति सार**—अत्यन्त आवश्यक।

अनुवाद

जहाँ तक अन्तिम आध्यात्मिक सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, *ब्रह्म-संहिता* के समान अन्य कोई शास्त्र नहीं है। निस्सन्देह, यह शास्त्र भगवान् गोविन्द की महिमाओं का परम प्रकाश है, क्योंकि यह उनके विषय में सर्वोच्च ज्ञान प्रकट करता है। चूँकि सारे सिद्धान्त *ब्रह्म-संहिता* में संक्षेप में दिये हैं, अतएव यह सारे वैष्णव ग्रंथों का सार है।

तात्पर्य

ब्रह्म-संहिता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शास्त्र है। श्री चैतन्य महाप्रभु को आदि-केशव मन्दिर से इसका पाँचवा अध्याय प्राप्त हुआ था। पाँचवे अध्याय में *अचिन्त्य भेदाभेद-तत्त्व* (एक साथ ऐक्य तथा विभिन्नता) का दार्शनिक सिद्धान्त

प्रस्तुत हुआ है। इसी अध्याय में भक्ति की विधियाँ, अठारह अक्षरी वैदिक स्तुति, आत्मा विषयक वार्ता, परमात्मा तथा सकाम कर्म, काम-गायत्री की व्याख्या, काम-बीज तथा आदि महाविष्णु, आध्यात्मिक जगत् का विशेषत: गोलोक-वृन्दावन का वर्णन इत्यादि भी दिये हुए हैं। *ब्रह्म-संहिता* में देवता गणेश, गर्भोदकशायी विष्णु, गायत्री-मन्त्र की उत्पत्ति, गोविन्द का स्वरूप तथा उनकी दिव्य स्थिति तथा धाम, जीव, सर्वोच्च लक्ष्य, देवी दुर्गा, तपस्या का अर्थ, पाँच स्थूल तत्त्व, भगवत्प्रेम, निर्विशेष ब्रह्म, ब्रह्माजी की दीक्षा तथा भगवान् का दर्शन करने के लिए दिव्य प्रेम-दृष्टि की भी व्याख्या हुई है। भक्ति के चरणों की भी व्याख्या है। मन, योगनिद्रा, लक्ष्मी, रागानुगा भक्ति, रामचन्द्रादि अवतार, अर्चाविग्रह, बद्धजीव तथा उनके कर्तव्य, विष्णु विषयक तत्त्व, स्तुतियाँ, वैदिक स्तुतियाँ, शिवजी, वैदिक ग्रंथ, साकारवाद तथा निर्विशेषवाद, अच्छा आचरण तथा अन्य अनेक विषयों की व्याख्या की गई है। इसके अतिरिक्त सूर्य तथा भगवान् के विश्वरूप का भी वर्णन भी मिलता है। ये सारे विषय *ब्रह्म-संहिता* में संक्षेप में दिये हुए हैं।

बहु यत्ने सेइ पुँथि निल लेखाइया ।
'अनन्त पद्मनाभ' आइला हरषित हञा ॥२४१॥

बहु यत्ने सेइ पुँथि निल लेखाइया ।
'अनन्त पद्मनाभ' आइला हरषित हञा ॥ २४१ ॥

बहु यत्ने—बड़ी सावधानी से; **सेइ पुँथि**—वह शास्त्र; **निल**—लिया; **लेखाइया**—नकल करवाकर; **अनन्त-पद्मनाभ**—अनन्त पद्मनाभ; **आइला**—आये; **हरषित**—अत्यन्त प्रसन्न; **हञा**—होकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने यत्नपूर्वक *ब्रह्म-संहिता* की प्रतिलिपि उतारी और बाद में वे हर्षित होकर अनन्त-पद्मनाभ नामक स्थान गये।

तात्पर्य

अनन्त पद्मनाभ के लिए मध्यलीला, प्रथम अध्याय श्लोक ११५ देखना चाहिए।

দিন-দুই পদ্মনাভের কৈল দরশন ।
আনন্দে দেখিতে আইলা শ্রী-জনার্দন ॥২৪২॥

दिन-दुइ पद्मनाभेर कैल दरशन ।
आनन्दे देखिते आइला श्री-जनार्दन ॥ २४२॥

दिन-दुइ—दो दिन; **पद्मनाभेर**—पद्मनाभ अर्चाविग्रह का; **कैल दरशन**—मन्दिर का दर्शन किया; **आनन्दे**—आनन्दपूर्वक; **देखिते**—देखने के लिए; **आइला**—आये; **श्री-जनार्दन**—श्री जनार्दन मन्दिर को।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अनन्त-पद्मनाभ में दो-तीन दिन रहे, और उन्होंने वहाँ का मन्दिर देखा। फिर हर्षपूर्वक वे श्री जनार्दन मन्दिर देखने गये।

तात्पर्य

श्री जनार्दन मन्दिर त्रिवेन्द्रम से २६ मील उत्तर वरकल रेलवे स्टेशन के पास स्थित है।

দিন-দুই তাহাঁ করি' কীর্তন-নর্তন ।
পয়স্বিনী আসিয়া দেখে শঙ্কর নারায়ণ ॥২৪৩॥

दिन-दुइ ताहाँ करि' कीर्तन-नर्तन ।
पयस्विनी आसिया देखे शङ्कर नारायण ॥ २४३॥

दिन-दुइ—दो दिन; **ताहाँ**—वहाँ; **करि'**—करके; **कीर्तन-नर्तन**—कीर्तन और नृत्य; **पयस्विनी आसिया**—पयस्विनी नदी के तट पर आकर; **देखे**—देखा; **शङ्कर नारायण**—शंकर नारायण का मन्दिर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु श्री जनार्दन में दो दिन तक कीर्तन तथा नृत्य करते रहे। फिर वे पयस्विनी नदी के किनारे गये और वहाँ उन्होंने शंकर-नारायण का मन्दिर देखा।

শৃঙ্গেরি-মঠে আইলা শঙ্করাচার্য-স্থানে ।
মধ্য-তীর্থ দেখি' কৈল তুঙ্গভদ্রায় স্নানে ॥২৪৪॥

शृङ्गेरि-मठे आइला शङ्कराचार्य्य-स्थाने ।
मत्स्य-तीर्थ देखि' कैल तुङ्गभद्राय स्नाने ॥ २४४॥

शृङ्गेरि-मठे—शृंगेरि मठ में; **आइला**—आये; **शङ्कराचार्य्य-स्थाने**—शंकराचार्य के स्थान पर; **मत्स्य-तीर्थ**—मत्स्य-तीर्थ नामक स्थान; **देखि'**—देखकर; **कैल**—किया; **तुङ्गभद्राय स्नाने**—तुंगभद्रा नदी में स्नान ।

अनुवाद

वहाँ उन्होंने शृंगेरी मठ देखा जो शंकराचार्य का निवास है। फिर उन्होंने मत्स्य-तीर्थ देखा और तुंगभद्रा नदी में स्नान किया।

तात्पर्य

शृंगेरी-मठ कर्नाटक प्रान्त के चिकमगलुर जिले में स्थित है। यह मठ तुंग तथा भद्रा नदियों के संगम पर हरिहरपुर से ७ मील दक्षिण में स्थित है। इस स्थान का असली नाम शृंगगिरि या शृंगवेरपुरी है और यह शंकराचार्य का मुख्यालय है।

शंकराचार्य के चार मुख्य शिष्य थे और उन्होंने उनकी देख-रेख में चार केन्द्रों की स्थापना की। उत्तर भारत में बदरिकाश्रम में ज्योतिर्मठ की स्थापना की गई थी। पुरुषोत्तम में भोगवर्धन या गोवर्धन मठ की, द्वारका में सारदा मठ की तथा दक्षिण भारत में शृंगेरी मठ की स्थापना की गई। शृंगेरी मठ के संन्यासी सरस्वती, भारती तथा पुरी उपाधियाँ धारण करते हैं। वे सभी *एकदण्डी संन्यासी* कहलाते हैं, जबकि वैष्णव संन्यासी त्रिदण्डी संन्यासी कहलाते हैं। शृंगेरी मठ दक्षिण भारत के आन्ध्र, द्रविड़, कर्णाट तथा केरल प्रदेश में स्थित है। इनकी जाति *भूरिवार* कहलाती है और वंश भूर्भुवः कहलाता है। यह स्थान रामेश्वर कहलाता है और उनका नारा है *अहं ब्रह्मास्मि।* इनके अर्चाविग्रह वराह हैं, इनकी शक्ति कामाक्षी है, आचार्य हस्तामलक हैं और इन संन्यासियों के ब्रह्मचारी सहायक चैतन्य कहलाते हैं। तीर्थस्थल तुंगभद्रा कहलाता है और ये यजुर्वेद पाठी हैं।

शंकराचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा की सूची उपलब्ध है। आचार्यों के नाम और उनके संन्यास लेने की तारीख शकाब्दानुसार (ईसवी सन के लिए इसमें ७८ वर्ष जोड़ें) इस प्रकार है : शंकराचार्य, ६२२ शक; सुरेश्वराचार्य, ६३०;

बोधनाचार्य, ६८०; ज्ञानधनाचार्य, ७६८; ज्ञानोत्तम शिवाचार्य, ८२७; ज्ञानगिरि आचार्य, ८७१; सिंहगिरि आचार्य, ९५८; ईश्वर तीर्थ, १०१९; नरसिंह तीर्थ, १०६७; विद्यातीर्थ विद्याशंकर, ११५०; भारतीकृष्ण तीर्थ, १२५०; विद्यारण्य भारती, १२५३; चन्द्रशेखर भारती, १२९०; नरसिंह भारती, १३०९; पुरुषोत्तम भारती, १३२८; शंकरानन्द, १३५०; चन्द्रशेखर भारती, १३७१; नरसिंह भारती, १३८६; पुरुषोत्तम भारती, १३९८; रामचन्द्र भारती, १४३०; नरसिंह भारती, १४७९; नरसिंह भारती, १४८५; धनमडि नरसिंह भारती, १४९८; अभिनव नरसिंह भारती, १५२१; सच्चिदानन्द भारती, १५४४; नरसिंह भारती, १५८५; सच्चिदानन्द भारती, १६२७; अभिनव सच्चिदानन्द भारती, १६६३; नृसिंह भारती, १६८९; सच्चिदानन्द भारती, १६९२; अभिनव सच्चिदानन्द भारती, १७३०; नरसिंह भारती, १७३९; सच्चिदानन्द शिवाभिनव विद्यानरसिंह भारती, १७८८।

ऐसा माना जाता है कि शंकराचार्य का जन्म ६०८ शकाब्द में वैशाख मास की शुक्ल तृतीया को कालाडि नामक स्थान में दक्षिण भारत में हुआ था। उनके पिता का नाम शिवगुरु था, जिनका देहान्त उनके बाल्यकाल में ही हो गया था। जब शंकराचार्य केवल आठ वर्ष के थे, तभी उन्होंने सारे शास्त्रों का अध्ययन पूर्ण कर लिया था और गोविन्द से संन्यास ले लिया था, जो नर्मदा के तट पर निवास करते थे। संन्यास ग्रहण करने के बाद शंकराचार्य कुछ दिनों तक अपने गुरु के साथ रहे। फिर उन्होंने गुरु से वाराणसी जाने की आज्ञा माँगी, जहाँ से वे बदरिकाश्रम गये और वहाँ १२ वर्ष की अवस्था तक रहे। वहाँ रहकर उन्होंने *ब्रह्मसूत्र,* दस उपनिषदों तथा *भगवद्गीता* पर भाष्य लिखे। उन्होंने *सनत्-सुजातीय* भी लिखी तथा *नृसिंह-तापिनि* पर भाष्य भी लिखा। उनके अनेक शिष्यों में से पद्मपाद, सुरेश्वर, हस्तामलक तथा त्रोटक चार प्रमुख हैं। शंकराचार्य वाराणसी से प्रयाग आये, जहाँ महान् विद्वान कुमारिल भट्ट से उनकी भेंट हुई। शंकराचार्य उनसे शास्त्रार्थ करना चाहते थे, किन्तु मृत्युशय्या पर होने के कारण कुमारिल भट्ट ने उन्हें अपने शिष्य मण्डन के पास माहिष्मती नगर में भेज दिया। यहीं पर शंकराचार्य ने मण्डन मिश्र को शास्त्रार्थ में हराया। मण्डन मिश्र की पत्नी सरस्वती या उभयभारती थी, जिसने शंकराचार्य तथा

उसके पति के बीच के शास्त्रार्थ में मध्यस्थ का काम किया। कहा जाता है कि उसने शंकराचार्य से शृंगार कला तथा प्रेम के विषयों पर वार्ता करनी चाही, किन्तु शंकराचार्य बाल ब्रह्मचारी थे, अतएव उन्हें ऐसे विषयों का कोई अनुभव न था। अत: उन्होंने उभयभारती से एक मास का अवकाश माँगा और वे अपनी योगशक्ति से एक राजा के शरीर में प्रवेश कर गये, जो अभी अभी मरा था। इस तरह शंकराचार्य को शृंगार-विषयक ज्ञान प्राप्त हुआ। इस अनुभव के बाद उन्होंने उभयभारती से शास्त्रार्थ करना चाहा, किन्तु उसने शास्त्रार्थ किए बिना उन्हें आशीर्वाद दे दिया और शृंगेरी मठ की क्रमागत स्थिति के सम्बन्ध में आश्वस्त किया। तत्पश्चात् वह भौतिक जीवन से विरक्त हो गई। बाद में मण्डन मिश्र ने शंकराचार्य से संन्यास ग्रहण किया और सुरेश्वर नाम से विख्यात हुए। शंकराचार्य ने भारत-भर के अनेक विद्वानों को परास्त करके उन्हें अपने मायावाद-दर्शन में दीक्षित किया। उन्होंने ३३ वर्ष की अवस्था में अपने भौतिक शरीर का त्याग किया।

ऐसा माना जाता है कि मत्स्यतीर्थ मालाबार जिले में समुद्र के किनारे स्थित था।

মধ্বাচার্য-স্থানে আইলা যাঁহা 'তত্ত্ববাদী'।
উডুপীতে 'কৃষ্ণ' দেখি, তাহাঁ হৈল প্রেমোন্মাদী ॥২৪৫॥

मध्वाचार्य-स्थाने आइला याँहा 'तत्त्ववादी'।
उडुपीते 'कृष्ण' देखि, ताहाँ हैल प्रेमोन्मादी ॥ २४५ ॥

मध्व-आचार्य-स्थाने—मध्वाचार्य के स्थान पर; **आइला**—आये; **याँहा**—जहाँ; **तत्त्व-वादी**—तत्त्ववादी नामक दार्शनिक; **उडुपीते**—उडुपी नामक स्थान पर; **कृष्ण**—भगवान् कृष्ण के विग्रह; **देखि**—देखकर; **ताहाँ**—वहाँ; **हैल**—हो गये; **प्रेम-उन्मादी**—प्रेम में उन्मत्त।

अनुवाद

तत्पश्चात् चैतन्य महाप्रभु मध्वाचार्य के स्थान उडुपी पर पहुँचे, जहाँ तत्त्ववादी के नाम से जाने जाने वाले दार्शनिक रहते थे। वे वहाँ भगवान् कृष्ण के अर्चाविग्रह को देखकर भावविह्वल हो उठे।

तात्पर्य

श्रीपाद मध्वाचार्य का जन्म उडुपी के निकट हुआ, जो दक्षिण भारत के दक्षिण कनर जिले में सह्याद्रि के पश्चिम में स्थित है। यह दक्षिण कनर प्रान्त का मुख्य शहर है और उडुपी से दक्षिण की ओर स्थित मंगलोर शहर के निकट है। उडुपी शहर के निकट पाजका-क्षेत्र है, जहाँ मध्वाचार्य ने शिवाल्ली ब्राह्मण-वंश में मध्यगेह भट्ट के पुत्र-रूप में १०४० शकाब्द (१११८ ई.) में जन्म लिया। कुछ लोगों के मतानुसार उनका जन्म ११६० शकाब्द (१२३८ ई.) में हुआ।

बचपन में मध्वाचार्य वासुदेव कहलाते थे और उनके विषय में कुछ अद्‌भुत कहानियाँ कही जाती हैं। कहा जाता है कि उनके पिता पर अधिक ऋण था और मध्वाचार्य ने इमली के बीजों को सिक्कों में बदलकर ऋण चुकाया। अभी वे पाँच ही वर्ष के थे तो उनका जनेऊ संस्कार किया गया। मणिमान नामक एक असुर साँप के रूप में उनके घर के पास रहता था, जिसे मध्वाचार्य ने पाँच वर्ष की आयु में अपने बाँये पाँव के अंगूठे से मार डाला। जब उनकी माता चिन्तित होतीं, तो वे एक छलांग में उनके सामने प्रकट हो जाते। वे बचपन से ही प्रकाण्ड विद्वान थे और उनके पिता के न चाहने पर भी उन्होंने १२ वर्ष की आयु में संन्यास ग्रहण कर लिया। अच्युत प्रेक्ष से संन्यास लेने के बाद उनका नाम पूर्णप्रज्ञ तीर्थ पड़ा। सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करने के बाद उन्होंने शृंगेरी मठ के प्रमुख विद्याशंकर से शास्त्रार्थ किया। विद्याशंकर उनकी उपस्थिति में वास्तव में बौना हो गये। मध्वाचार्य सत्य तीर्थ के साथ बदरिकाश्रम गये। वहाँ पर व्यासदेव से उनकी भेंट हुई, और उन्होंने *भगवद्‌गीता* पर अपना भाष्य उन्हें सुनाया। इस प्रकार वे व्यासदेव से अध्ययन करके प्रकाण्ड पंडित बन गये।

बदरिकाश्रम से आनन्द-मठ आने के समय तक मध्वाचार्य ने *भगवद्‌गीता* पर अपना भाष्य पूरा कर लिया था। उनके साथी सत्य तीर्थ ने समूचा भाष्य लिख दिया। बदरिकाश्रम से लौटने पर मध्वाचार्य गोदावरी नदी के तट पर स्थित गंजाम गये। यहाँ उनकी भेंट शोभन भट्ट तथा स्वामी शास्त्री नामक दो पंडितों से हुई। बाद में ये दोनों मध्वाचार्य गुरु-शिष्य परम्परा में पद्मनाभ तीर्थ तथा

नरहरि तीर्थ के नाम से विख्यात हुए। उडुपी लौटने पर वे कभी-कभी सागर में स्नान करते थे। ऐसे ही एक अवसर पर उन्होंने एक स्तुति की रचना की, जो पाँच अध्यायों में है। एक बार जब समुद्र-तट पर बैठे हुए वे भगवान् कृष्ण के ध्यान में मग्न थे, तब उन्होंने देखा कि द्वारका के लिए सामग्री ले जाने वाला एक मालवाही जहाज संकट में है। उन्होंने कुछ ऐसे संकेत दिये, जिससे वह जहाज समुद्र-तट पर जा लगा और इस तरह वह बच गया। उस जहाज के मालिक उन्हें कुछ भेंटस्वरूप देना चाहते थे, किन्तु उन्होंने मात्र कुछ गोपीचन्दन लेना स्वीकार किया। जब चन्दन का एक बड़ा ढेला उनके पास लाया जा रहा था, तो वह बीच से टूट गया और उसमें से भगवान् कृष्ण का एक बड़ा अर्चाविग्रह निकला। अर्चाविग्रह एक हाथ में डण्डा और दूसरे में खाद्य पदार्थ लिए था। ज्योंही मध्वाचार्य ने इस रूप में कृष्ण के अर्चाविग्रह को प्राप्त किया, उन्होंने एक स्तुति लिखी। यह अर्चाविग्रह इतना भारी था कि तीस व्यक्ति मिलकर भी उसे उठा नहीं सकते थे। फिर भी मध्याचार्य स्वयं इस अर्चाविग्रह को उडुपी लाये। मध्वाचार्य के आठ संन्यासी शिष्य उनके आठ मठों के आचार्य बने। मध्वाचार्य के द्वारा स्थापित विधि के अनुसार उडुपी में कृष्ण की पूजा इस समय भी की जाती है।

तब मध्वाचार्य दूसरी बार बदरिकाश्रम गये। जब वे महाराष्ट्र से होकर जा रहे थे, तब एक स्थानीय राजा जनता के कल्याण हेतु एक विशाल सरोवर खुदवा रहा था। चूँकि मध्वाचार्य अपने शिष्यों के साथ उस क्षेत्र से गुजर रहे थे, अत: उन्हें भी इस खुदाई में उसकी सहायता करनी पड़ी। कुछ समय के बाद मध्याचार्य ने राजा से भेंट की और उसे उस कार्य में लगाया और अपने शिष्यों के साथ वे आगे बढ़ गये।

गांग प्रदेश में प्राय: हिन्दुओं तथा मुसलमानों में झगड़े होते रहते थे। हिन्दू नदी के एक ओर थे और मुसलमान दूसरी ओर। साम्प्रदायिक तनाव के कारण नदी पार करने के लिए कोई नाव उपलब्ध नहीं थी। मुसलमान सैनिक हमेशा यात्रियों को दूसरे किनारे आने से रोकते थे, किन्तु मध्याचार्य ने इन सैनिकों की कोई परवाह नहीं की। अत: इसके बावजूद जब वे नदी पार करके दूसरी ओर पहुँचे और सैनिकों से मिले, तो उन्हें राजा के पास लाया गया। मुस्लिम

राजा उनसे बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उन्हें एक राज्य तथा कुछ धन देना चाहा, किन्तु मध्वाचार्य ने इसे लेने से मना कर दिया। मार्ग पर जाते समय कुछ डाकुओं ने उन पर आक्रमण कर दिया, किन्तु अपने शारीरिक बल से उन्होंने उन सबको मार डाला। जब उनके साथी सत्य तीर्थ पर एक बाघ ने आक्रमण किया, तो मध्वाचार्य ने अपने बल से दोनों को अलग किया। जब वे व्यासदेव से मिले, तो उनसे उन्हें अष्टमूर्ति नामक *शालग्राम-शिला* प्राप्त हुई। इसके बाद उन्होंने *महाभारत* का संक्षिप्तीकरण किया।

मध्वाचार्य की भगवद्भक्ति तथा उनका प्रकाण्ड पाण्डित्य भारत-भर में विख्यात हो गया। फलस्वरूप शंकराचार्य द्वारा स्थापित शृंगेरी मठ के स्वामी कुछ बेचैन हो उठे। उस समय शंकराचार्य के अनुयायी मध्वाचार्य की उभरती शक्ति से डरकर वे उनके शिष्यों को नाना प्रकार से सताने लगे। वे यह सिद्ध करने का भी प्रयास करने लगे कि मध्वाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा वैदिक सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं है। शंकराचार्य के मायावाद-दर्शन का एक अनुयायी, जिसका नाम पुण्डरीक पुरी था, मध्वाचार्य से शास्त्रार्थ करने आया। कहा जाता है कि मध्वाचार्य की सारी पुस्तकें चुरा ली गईं, किन्तु बाद में कुम्ल के शासक राजा जयसिंह की सहायता से वे ढूँढ ली गईं। शास्त्रार्थ में पुण्डरीक पुरी मध्वाचार्य से परास्त हुआ। विष्णुमंगल निवासी का त्रिविक्रमाचार्य नामक एक महापुरुष मध्वाचार्य का शिष्य बन गया और बाद में उसके पुत्र नारायणाचार्य ने *श्री मध्वविजय* की रचना की। त्रिविक्रमाचार्य के देहान्त के बाद नारायणाचार्य के छोटे भाई ने संन्यास ले लिया और वह विष्णु तीर्थ कहलाया।

उस समय यह ख्याति फैली थी कि पूर्णप्रज्ञ मध्वाचार्य की शारीरिक शक्ति की कोई सीमा नहीं थी। तभी कडंजरि नामक एक व्यक्ति था, जो इसके लिए प्रसिद्ध था कि उसके पास तीस व्यक्तियों के बराबर शक्ति है; मध्वाचार्य ने अपने पाँव के अँगूठे को जमीन पर रखकर उस व्यक्ति से कहा कि अँगूठे को हटा दे, किन्तु वह बलशाली व्यक्ति अनेक प्रयासों के बावजूद भी ऐसा नहीं कर पाया। श्रील मध्वाचार्य ने ८० वर्ष की आयु में, *ऐतरेय उपनिषद* का भाष्य लिखते हुए इस भौतिक संसार से विदा ली। मध्वाचार्य के विषय में अधिक जानकारी के लिए नारायण आचार्य विरचित *मध्वविजय* ग्रंथ देखना चाहिए।

मध्व-सम्प्रदाय के आचार्यों ने उडुपी को प्रधान केन्द्र बनाया और यहाँ के मठ का नाम उत्तरराढ़ी मठ प्रसिद्ध हुआ। मध्व-सम्प्रदाय के विभिन्न केन्द्रों के नाम उडुपी में प्राप्त हो सकते हैं, जिनके चलाने वाले थे—(१) विष्णु तीर्थ (शोदमठ), (२) जनार्दन तीर्थ (कृष्णपुर मठ), (३) वामन तीर्थ (कनुर मठ), (४) नरसिंह तीर्थ (अदमर मठ), (५) उपेन्द्र तीर्थ (पुत्तुगी मठ), (६) राम तीर्थ (शिरुर मठ), (७) हृषीकेश तीर्थ (पलिमर मठ), तथा (८) अक्षोभ्य तीर्थ (पेजावर मठ)। मध्वाचार्य सम्प्रदाय की गुरु-शिष्य परम्परा इस प्रकार है (तिथियाँ शकाब्द में जन्म की तिथियाँ हैं और ईसवी सन् के लिए ७८ वर्ष जोड़िए)—(१) हंस परमात्मा; (२) चतुर्मुख ब्रह्मा; (३) सनकादि; (४) दुर्वासा; (५) ज्ञाननिधि; (६) गरुडवाहन; (७) कैवल्य तीर्थ; (८) ज्ञानेश तीर्थ; (९) पर तीर्थ; (१०) सत्यप्रज्ञ तीर्थ; (११) प्राज्ञ तीर्थ; (१२) अच्युत प्रेक्षाचार्य तीर्थ; (१३) श्री मध्वाचार्य, १०४० शक; (१४) पद्मनाभ, ११२०; नरहरि, ११२७; माध्व, ११३६; तथा अक्षोभ्य, ११५९; (१५) जयतीर्थ, ११६७; (१६) विद्याधिराज, ११९०; (१७) कवीन्द्र, १२५५; (१८) वागीश, १२६१; (१९) रामचन्द्र, १२६९; (२०) विद्यानिधि, १२९८; (२१) श्री रघुनाथ, १३६६; (२२) रयुवर्य (जिन्होंने चैतन्य महाप्रभु से बात की थी), १४२४; (२३) रघूत्तम, १४७१; (२४) वेदव्यास, १५१७; (२५) विद्याधीश, १५४१; (२६) वेदनिधि, १५५३; (२७) सत्यव्रत, १५५७; (२८) सत्यनिधि, १५६०; (२९) सत्यनाथ, १५८२; (३०) सत्याभिनव, १५९५; (३१) सत्यपूर्ण, १६२८; (३२) सत्यविजय, १६४८; (३३) सत्यप्रिय, १६५९; (३४) सत्यबोध, १६६६; (३५) सत्यसन्ध, १७०५; (३६) सत्यवर, १७१६; (३७) सत्यधर्म, १७१९; (३८) सत्यसंकल्प, १७५२; (३९) सत्यसन्तुष्ट, १७६३; (४०) सत्यपरायण, १७६३; (४१) सत्यकाम, १७८५; (४२) सत्येष्ट, १७९३; (४३) सत्यपराक्रम, १७९४; (४४) सत्यधीर, १८०१; (४५) सत्यधीर तीर्थ, १८०८।

सोलहवें आचार्य (विद्याधिराज तीर्थ) के बाद दूसरी गुरु-शिष्य परम्परा चली, जिसमें राजेन्द्र तीर्थ, १२५४; विजय ध्वज; पुरुषोत्तम; सुब्रह्मण्य; तथा व्यास राय, १४७०-१५२० सम्मिलित हैं। उन्नीसवें आचार्य रामचन्द्र तीर्थ की

भी अन्य गुरु-शिष्य परम्परा चली, जिसमें विबुधेन्द्र, १२१८; जितामित्र, १३४८; रघुनन्दन; सुरेन्द्र; विजेन्द्र; सुधीन्द्र; तथा राघवेन्द्र तीर्थ, १५४५ सम्मिलित हैं।

आज तक उडुपी मठ में अन्य १४ मध्वतीर्थ संन्यासी हुए हैं। जैसा बतलाया जा चुका है, उडुपी दक्षिण कनर में मंगलोर से लगभग ३६ मील उत्तर स्थित है। यह समुद्र के निकट है।

इस तात्पर्य की अधिकतर जानकारी *साउथ कानाड़ा मैनुअल* तथा *बाम्बे गजट* में उपलब्ध है।

नर्तक गोपाल देखे परम-मोहने ।
मध्वाचार्ये स्वप्न दिया आइला ताँर स्थाने ॥ २४६ ॥

नर्तक गोपाल—नृत्य करते गोपाल; **देखे**—देखा; **परम-मोहने**—परम सुन्दर; **मध्व-आचार्ये**—मध्वाचार्य के; **स्वप्न दिया**—स्वप्न में प्रकट होकर; **आइला**—आये; **ताँर**—उनके; **स्थाने**—स्थान पर।

अनुवाद

उडुपी मठ में श्री चैतन्य महाप्रभु ने 'नर्तक गोपाल' के अतीव सुन्दर अर्चाविग्रह के दर्शन किये। यह विग्रह मध्वाचार्य के स्वप्न में आये थे।

गोपी-चन्दन-तले आछिल डिङ्गाते ।
मध्वाचार्य सेइ कृष्ण पाइला कोन-मते ॥ २४७ ॥

गोपी-चन्दन-तले—गोपी चन्दन के ढेर के नीचे (तिलक में प्रयुक्त पीली मिट्टी); **आछिल**—आये; **डिङ्गाते**—नाव में; **मध्व-आचार्य**—मध्वाचार्य; **सेइ कृष्ण**—वह कृष्ण विग्रह; **पाइला**—पाया; **कोन-मते**—किसी न किसी तरह।

अनुवाद

मध्वाचार्य ने कृष्ण का यह विग्रह उस गोपीचन्दन के ढेर से किसी न किसी तरह प्राप्त किया था, जो नाव में लाया गया था।

मध्वाचार्य आनि' ताँरे करिला स्थापन ।
अद्यावधि सेवा करे तत्त्ववादि-गण ॥ २४८ ॥

मध्वाचार्य्र आनि' ताँरे करिला स्थापन ।
अद्यावधि सेवा करे तत्त्ववादि-गण ॥ २४८ ॥

मध्व-आचार्य्र—मध्वाचार्य; **आनि'**—लाकर; **ताँरे**—उनकी; **करिला स्थापन**—स्थापना की; **अद्य-अवधि**—आज तक; **सेवा करे**—पूजा करते हैं; **तत्त्ववादि-गण**—तत्त्ववादी लोग।

अनुवाद

मध्वाचार्य इस नर्तक गोपाल के विग्रह को उडुपी ले आये और उन्होंने उन्हें मन्दिर में स्थापित कर दिया। मध्वाचार्य के अनुयायी अर्थात् तत्त्ववादीगण आज भी इस मूर्ति की पूजा करते हैं।

कृष्ण-मूर्ति देखि' प्रभु महा-सुख पाइल ।
प्रेमावेशे बहु-क्षण नृत्य-गीत कैल ॥ २४९ ॥

कृष्ण-मूर्ति देखि' प्रभु महा-सुख पाइल ।
प्रेमावेशे बहु-क्षण नृत्य-गीत कैल ॥ २४९ ॥

कृष्ण-मूर्ति देखि'—भगवान् कृष्ण की मूर्ति देखकर; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **महा-सुख**—महान् हर्ष; **पाइल**—पाया; **प्रेम-आवेशे**—प्रेमावेश में; **बहु-क्षण**—बहुत समय तक; **नृत्य-गीत**—नृत्य और गान; **कैल**—किया।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को गोपाल का यह सुन्दर रूप देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ। वे देर तक भावावेश में नृत्य तथा कीर्तन करते रहे।

तत्त्ववादि-गण प्रभुके 'माया'वादी' ज्ञाने ।
प्रथम दर्शने प्रभुके ना कैल सम्भाषणे ॥ २५० ॥

तत्त्ववादि-गण प्रभुके 'मायावादी' ज्ञाने ।
प्रथम दर्शने प्रभुके ना कैल सम्भाषणे ॥ २५० ॥

तत्त्ववादि-गण—तत्त्ववादी लोग; **प्रभुके**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **मायावादी ज्ञाने**—मायावादी संन्यासी समझकर; **प्रथम दर्शने**—प्रथम भेंट में; **प्रभुके**—श्री चैतन्य महाप्रभु से; **ना**—नहीं; **कैल**—किया; **सम्भाषणे**—वार्तालाप।

अनुवाद

पहले तो तत्त्ववादी वैष्णवों ने श्री चैतन्य महाप्रभु को मायावादी संन्यासी समझा, अतएव उन्होंने उनसे बात नहीं की।

पाछे प्रेमावेश देखि' हैल चमत्कार ।
वैष्णव-ज्ञाने बहुत करिल सत्कार ॥२५१॥

पाछे प्रेमावेश देखि' हैल चमत्कार ।
वैष्णव-ज्ञाने बहुत करिल सत्कार ॥ २५१ ॥

पाछे—बाद में; **प्रेम-आवेश**—प्रेमावेश; **देखि'**—देखकर; **हैल चमत्कार**—हो गये चकित; **वैष्णव-ज्ञाने**—वैष्णव समझकर; **बहुत**—बहुत; **करिल**—किया; **सत्कार**—सत्कार।

अनुवाद

बाद में श्री चैतन्य महाप्रभु को भावावेश में देखकर वे लोग चकित रह गये। तत्पश्चात् उन्हें वैष्णव जानकर उन्होंने उनका अच्छा स्वागत किया।

'वैष्णवता' सबार अन्तरे गर्व जानि' ।
ईषत् हासिया किछु कहे गौरमणि ॥२५२॥

'वैष्णवता' सबार अन्तरे गर्व जानि' ।
ईषत् हासिया किछु कहे गौरमणि ॥ २५२ ॥

वैष्णवता—वैष्णव भाव का; **सबार**—उन सबके; **अन्तरे**—मन में; **गर्व**—गर्व; **जानि'**—जानकर; **ईषत्**—नम्रता से; **हासिया**—मुस्कराकर; **किछु**—कुछ; **कहे**—कहा; **गौर-मणि**—श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जान गये कि तत्त्ववादियों को अपने वैष्णव होने पर अत्यधिक गर्व है। अतएव वे मुसकाये और उनसे बातें करने लगे।

ताँ-सबार अन्तरे गर्व जानि गौरचन्द्र ।
ताँ-सबा-सङ्गे गोष्ठी करिला आरम्भ ॥२५३॥

ताँ-सबार अन्तरे गर्व जानि गौरचन्द्र ।
ताँ-सबा-सङ्गे गोष्ठी करिला आरम्भ ॥ २५३॥

ताँ-सबार—उन सबके; **अन्तरे**—मन में; **गर्व**—गर्व; **जानि**—जानकर; **गौर-चन्द्र**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **ताँ-सबा-सङ्गे**—उन सबके साथ; **गोष्ठी**—चर्चा; **करिला**—की; **आरम्भ**—आरम्भ।

अनुवाद

उन्हें अत्यन्त गर्वित जानकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनसे शास्त्रार्थ शुरू किया।

তত্ত্ববাদী আচার্য—সব শাস্ত্রেতে প্রবীণ ।
তাঁরে প্রশ্ন কৈল প্রভু হঞা যেন দীন ॥২৫৪॥

तत्त्ववादी आचार्य—सब शास्त्रेते प्रवीण ।
ताँरे प्रश्न कैल प्रभु हञा येन दीन ॥ २५४॥

तत्त्ववादी आचार्य—तत्त्ववादी सम्प्रदाय के प्रमुख प्रचारक; **सब**—सब; **शास्त्रेते**—शास्त्रों में; **प्रवीण**—अनुभवी; **ताँरे**—उसको; **प्रश्न**—प्रश्न; **कैल**—किया; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **हञा**—होकर; **येन**—यथा; **दीन**—अत्यन्त नम्र।

अनुवाद

तत्त्ववादियों का मुख्य आचार्य शास्त्रों में अत्यन्त पटु था। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अत्यन्त विनीत भाव से उससे प्रश्न किया।

সাধ্য-সাধন আমি না জানি ভাল-মতে ।
সাধ্য-সাধন-শ্রেষ্ঠ জানাহ আমাতে ॥২৫৫॥

साध्य-साधन आमि ना जानि भाल-मते ।
साध्य-साधन-श्रेष्ठ जानाह आमाते ॥ २५५॥

साध्य-साधन—जीवन का उद्देश्य और उसे किस प्रकार पाया जाए; **आमि**—मैं; **ना**—नहीं; **जानि**—जानता; **भाल-मते**—अच्छी तरह; **साध्य-साधन**—जीवन का उद्देश्य और उसे प्राप्त करने की विधि; **श्रेष्ठ**—श्रेष्ठ; **जानाह**—कृपया बताएँ; **आमाते**—मुझे।

अनुवाद

चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं जीवन का लक्ष्य तथा उसे प्राप्त करने

की विधि को ठीक से नहीं जानता। कृपया मुझे बतलायें कि मानवता के लिए सर्वश्रेष्ठ आदर्श क्या है और उसे कैसे प्राप्त किया जाए?"

आचार्य कहे,—'वर्णाश्रम-धर्म, कृष्णे समर्पण' ।
एइ हय कृष्ण-भक्तेर श्रेष्ठ 'साधन' ॥ २५६॥
आचार्य्य कहे,—'वर्णाश्रम-धर्म, कृष्णे समर्पण' ।
एइ हय कृष्ण-भक्तेर श्रेष्ठ 'साधन' ॥ २५६॥

आचार्य्य कहे—आचार्य ने कहा; **वर्ण-आश्रम-धर्म**—वर्णाश्रम धर्म; **कृष्णे**—कृष्ण को; **समर्पण**—समर्पण करना; **एइ हय**—यह है; **कृष्ण-भक्तेर**—कृष्ण भक्त की; **श्रेष्ठ साधन**—श्रेष्ठ साधना।

अनुवाद

आचार्य ने उत्तर दिया, "जब चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों के कार्य कृष्ण को समर्पित किये जाते हैं, तो वे ही सर्वश्रेष्ठ साधन होते हैं, जिनसे जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

'पञ्च-विध मुक्ति' पाञा वैकुण्ठे गमन ।
'साध्य-श्रेष्ठ' हय,—एই শাস্ত্র-নিরূপণ ॥ ২৫৭॥
'पञ्च-विध मुक्ति' पाञा वैकुण्ठे गमन ।
'साध्य-श्रेष्ठ' हय,—एइ शास्त्र-निरूपण ॥ २५७॥

पञ्च-विध मुक्ति—पाँच प्रकार की मुक्ति; **पाञा**—पाकर; **वैकुण्ठे**—वैकुण्ठ लोक; **गमन**—जाना; **साध्य-श्रेष्ठ हय**—जीवन के उद्देश्य की सर्वोच्च उपलब्धि है; **एइ**—यह; **शास्त्र-निरूपण**—सभी शास्त्रों का निष्कर्ष है।

अनुवाद

"जब मनुष्य वर्णाश्रम धर्म के कार्य कृष्ण को समर्पित करता है, तो वह पाँच प्रकार की मुक्ति का पात्र होता है और वैकुण्ठ लोक भेज दिया जाता है। यही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है और यही सारे शास्त्रों का निष्कर्ष है।"

प्रभु कहे,—शास्त्रे कहे श्रवण-कीर्तन ।
कृष्ण-प्रेम-सेवा-फलेर 'परम-साधन' ॥ २५८॥

प्रभु कहे,—शास्त्रे कहे श्रवण-कीर्तन ।
कृष्ण-प्रेम-सेवा-फलेर 'परम-साधन' ॥ २५८॥

प्रभु कहे—श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; **शास्त्रे कहे**—शास्त्रों में कहा गया है; **श्रवण-कीर्तन**—श्रवण कीर्तन; **कृष्ण-प्रेम-सेवा**—भगवान् कृष्ण की प्रेमाभक्ति ; **फलेर**—परिणाम की; **परम-साधन**—लक्ष्य प्राप्त करने की सर्वश्रेष्ठ विधि।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "शास्त्रों के निष्कर्ष के अनुसार कृष्ण की प्रेमाभक्ति प्राप्त करने के सर्वश्रेष्ठ साधन श्रवण तथा कीर्तन हैं।

तात्पर्य

तत्त्ववादियों के अनुसार चारों वर्णों तथा आश्रमों के कर्तव्यों को सम्पन्न करना ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सर्वोत्तम विधि है। इस भौतिक जगत् में किसी एक वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) में रहे बिना चरम लक्ष्य की पूर्ति के लिए सामाजिक कार्यों को समुचित रीति से सम्पन्न नहीं किया जा सकता। हमें *आश्रमों* (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) के सिद्धान्तों का भी पालन करना होता है, जो सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक समझे जाते हैं। इस तरह तत्त्ववादी यह स्थापित करते हैं कि कृष्ण के लिए वर्णाश्रम के सिद्धान्तों का पालन करना वही सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सर्वोत्तम विधि है। इस तरह तत्त्ववादियों ने अपने सिद्धान्तों की स्थापना मानव-समाज को ध्यान में रखते हुए की। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने इससे भिन्न मत व्यक्त किया, जब उन्होंने यह कहा कि भगवान् विष्णु के विषय में श्रवण और कीर्तन ही सर्वोत्तम विधि है। तत्त्ववादियों के अनुसार सर्वोच्च लक्ष्य भगवद्धाम वापस जाना है, किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु के अनुसार भगवत्प्रेम की प्राप्ति ही सर्वोच्च लक्ष्य है, भले ही आप भौतिक जगत् में हों या आध्यात्मिक जगत् में। भौतिक जगत् में इसका अभ्यास शास्त्रों के आदेशानुसार किया जाता है और आध्यात्मिक जगत् में तो वास्तविक उपलब्धि पहले से ही रहती है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद-सेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म-निवेदनम् ॥२५९॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नव-लक्षणा ।
क्रियेत भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥२६०॥

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद-सेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म-निवेदनम् ॥ २५९ ॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नव-लक्षणा ।
क्रियेत भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥ २६० ॥

श्रवणम्—भगवान् विष्णु के पावन नाम, रूप, गुण, पार्षद और लीलाओं का श्रवण; **कीर्तनम्**—विष्णु के पावन नाम रूप, गुण से और पार्षद सम्बन्धित दिव्य ध्वनियों का कीर्तन और उनकी चर्चा करना; **विष्णोः**—भगवान् विष्णु का; **स्मरणम्**—भगवान् के नाम, रूप, पार्षदों का स्मरण और जिज्ञासा; **पाद-सेवनम्**—समय, देश, काल के अनुसार भगवान् विष्णु की भक्ति करना; **अर्चनम्**—भगवान् कृष्ण, भगवान् रामचन्द्र, लक्ष्मी-नारायण अथवा विष्णु के अन्य रूपों की अर्चना; **वन्दनम्**—भगवान् की वन्दना करना; **दास्यम्**—सदा अपने आपको पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् का सनातन दास समझना; **सख्यम्**—पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् से मित्रता करना; **आत्म-निवेदनम्**—शरीर, मन और आत्मा को भगवत् सेवा के लिए पूरी तरह समर्पित करना; **इति**—इस प्रकार; **पुंसा**—मनुष्यों द्वारा; **अर्पिता**—अर्पित; **विष्णौ**—भगवान् विष्णु को; **भक्तिः**—भक्ति; **चेत्**—यदि; **नव-लक्षणा**—ऊपर बताई गईं नौ प्रकार की विधियाँ; **क्रियेत**—मानव को सम्पन्न करनी चाहिए; **भगवति**—भगवान्; **अद्धा**—सीधे (कर्म, ज्ञान तथा योग द्वारा परोक्ष रूप से नहीं); **तत्**—वह; **मन्ये**—मैं समझता हूँ; **अधीतम्**—समझ; **उत्तमम्**—प्रथम श्रेणी का।

अनुवाद

'"इस विधि में श्रवण, कीर्तन, भगवान् के पवित्र नाम, रूप, गुण, लीलाओं तथा पार्षदों का स्मरण, देश, काल तथा पात्र के अनुसार सेवा करना, अर्चाविग्रह की पूजा करना, स्तुति करना, अपने आपको कृष्ण का शाश्वत दास समझना, उनके प्रति सख्य भाव उत्पन्न करना और उन्हें अपना सर्वस्व अर्पित करना सम्मिलित हैं। जब इस तरह कृष्ण की नौ प्रकार से सीधी प्रेममयी सेवा की जाती है, तो वही जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है। यही प्रामाणिक शास्त्रों का मत है।'

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने ये श्लोक *श्रीमद्भागवत* (७.५.२३-२४) से उद्धृत किये।

श्रवण-कीर्तन हइते कृष्णे हय 'प्रेमा' ।
सेइ पञ्चम पुरुषार्थ——पुरुषार्थेर सीमा ॥२६१॥

श्रवण-कीर्तन हइते कृष्णे हय 'प्रेमा' ।
सेइ पञ्चम पुरुषार्थ——पुरुषार्थेर सीमा ॥ २६१ ॥

श्रवण-कीर्तन—श्रवण तथा कीर्तन; **हइते**—से; **कृष्णे**—भगवान् कृष्ण को; **हय**—है; **प्रेमा**—दिव्य प्रेम; **सेइ**—वह; **पञ्चम पुरुष-अर्थ**—पाँचवा पुरुषार्थ; **पुरुष-अर्थेर सीमा**—जीवन के उद्देश्यों की सीमा।

अनुवाद

"जब मनुष्य श्रवण-कीर्तन से आरम्भ होने वाली इन नौ विधियों से कृष्ण की प्रेममयी सेवा करता है, तब उसे सिद्धि का पाँचवाँ पद एवं जीवन के लक्ष्य की सीमा प्राप्त होती है।

तात्पर्य

प्रत्येक व्यक्ति धर्म, आर्थिक विकास, इन्द्रियतृप्ति तथा अन्ततोगत्वा ब्रह्म में समा जाने की सफलता चाहता है। ये सामान्य व्यक्तियों की सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं, किन्तु शुद्ध वैदिक नियमों के अनुसार सर्वोच्च उपलब्धि भगवान् के *श्रवणम् कीर्तनम्* के पद को प्राप्त करना है। इसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* १.१.२) में हुई है :

धर्मः प्रोज्झित कैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।
श्रीमद्भागवते महामुनि-कृते-किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥

"भौतिकता से प्रेरित सारे धार्मिक कृत्यों का बहिष्कार करते हुए यह भागवत-पुराण उस सर्वोच्च सत्य का प्रतिपादन करता है, जिसे शुद्ध हृदय वाले भक्तगण ही समझ सकते हैं। यह सर्वोच्च सत्य वास्तविकता है, जिसे सबके कल्याण हेतु मोह (भ्रम) से अलग रहकर किया जाता है। ऐसा सत्य तीनों प्रकार के

तापों को समूल नष्ट करता है। महामुनि श्री व्यासदेव द्वारा रचित यह सुन्दर भागवत भगवत्-साक्षात्कार कराने के लिए अपने आप में पर्याप्त है। अन्य किसी शास्त्र की क्या आवश्यकता है? ज्योंही कोई ध्यानपूर्वक तथा विनीत होकर भागवत का सन्देश सुनता है, त्योंही इस ज्ञान के अनुशीलन से भगवान् उसके हृदय में स्थापित हो जाते हैं।" *श्रीमद्भागवत* के इस श्लोक के अनुसार, वे सभी धार्मिक अनुष्ठान छल-कपट हैं, जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के भौतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सम्पन्न किये जाते हैं।

श्रीधर स्वामी के अनुसार सफलता की भौतिक विचारधारा (मोक्ष) की इस भौतिक जगत् के लोग ही इच्छा करते हैं। किन्तु भक्त इस भौतिक जगत् में स्थित नहीं होते, अतएव उन्हें मोक्ष की कामना नहीं होती।

भक्त तो जीवन की सारी अवस्थाओं में मुक्त रहता है, क्योंकि वह भक्ति की नौ विधियों (श्रवणं, कीर्तनं इत्यादि) में लगा रहता है। श्री चैतन्य महाप्रभु के दर्शन के अनुसार कृष्ण-भक्ति प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में सदैव रहती है। इसे केवल *श्रवणं कीर्तनं विष्णोः* की विधि से जागृत किये जाने की आवश्यकता है। *श्रवणादि शुद्धचित्ते करये उदय* (*चैतन्य चरितामृत, मध्य* २२.१०७)। जब व्यक्ति वास्तव में भक्ति में लगा होता है, तब भगवान् के साथ उसका सनातन सम्बन्ध—दास-स्वामी सम्बन्ध—जागृत होता है।

एवं-व्रतः स्व-प्रिय-नाम-कीर्त्या
जातानुरागो द्रुत-चित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्य्
उन्माद-वन्नृत्यति लोक-बाह्यः ॥२६२॥

एवं-व्रतः स्व-प्रिय-नाम-कीर्त्या
जातानुरागो द्रुत-चित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्य्
उन्माद-वन्नृत्यति लोक-बाह्यः ॥ २६२ ॥

एवम्-व्रतः—जब कोई इस प्रकार कीर्तन व नृत्य करने का व्रत लेता है; **स्व**—अपना; **प्रिय**—अत्यन्त प्रिय; **नाम**—पावन नाम; **कीर्त्या**—कीर्तन करके; **जात**—इस तरह विकसित

करता है; **अनुरागः**—अनुराग; **द्रुत-चित्तः**—उत्सुकता से; **उच्चैः**—ऊँचे स्वर में; **हसति**—हँसता है; **अथो**—और; **रोदिति**—रोता है; **रौति**—विक्षिप्त होता है; **गायति**—गाता है; **उन्माद-वत्**—एक पागल की तरह; **नृत्यति**—नाचता है; **लोक-बाह्यः**—लोगों की परवाह न करते हुए।

अनुवाद

"'जब कोई व्यक्ति वास्तव में उन्नत होता है और अपने प्रिय भगवान् के पवित्र नाम के कीर्तन में आनन्द का अनुभव करता है, तब वह उत्तेजित होकर जोर-जोर से पवित्र नाम का उच्चारण करता है। वह किसी की परवाह न करते हुए हँसता है, रोता है, क्षोभित होता है और पागल मनुष्य की तरह कीर्तन करता है।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (११.२.४०) से लिया गया है।

कर्म-निन्दा, कर्म-त्याग, सर्व-शास्त्रे कहे ।
कर्म हैते प्रेम-भक्ति कृष्णे कभु नहे ॥२६३॥

कर्म-निन्दा, कर्म-त्याग, सर्व-शास्त्रे कहे ।
कर्म हैते प्रेम-भक्ति कृष्णे कभु नहे ॥ २६३ ॥

कर्म-निन्दा—सकाम कर्मों की निन्दा; **कर्म-त्याग**—सकाम कर्मों का त्याग; **सर्व-शास्त्रे कहे**—सभी प्रामाणिक शास्त्रों में कहा गया है; **कर्म हैते**—सकाम कर्म से; **प्रेम-भक्ति**—प्रेमाभक्ति; **कृष्णे**—कृष्ण के लिए; **कभु नहे**—कभी नहीं मिल सकती।

अनुवाद

"प्रत्येक प्रामाणिक शास्त्र सकाम कर्म की निन्दा करता है। सभी जगह यही उपदेश दिया गया है कि सारे सकाम कर्मों का त्याग कर दिया जाए, क्योंकि इसके द्वारा जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य, भगवत्प्रेम को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

तात्पर्य

वेदों में तीन कांड या विभाग हैं—*कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड* तथा *उपासना काण्ड*। कर्मकाण्ड सकाम कर्म किये जाने पर बल देता है, किन्तु अन्ततः कर्मकाण्ड तथा ज्ञान-काण्ड का त्याग कर दिया जाए और एकमात्र उपासना-

काण्ड अर्थात् भक्तिकाण्ड ग्रहण कर लिया जाए। कर्मकाण्ड या ज्ञानकाण्ड द्वारा भगवत्प्रेम नहीं पाया जा सकता। किन्तु भगवान् को अपना कर्म समर्पित करके दूषित मन से छुटकारा पाया जा सकता है। इस प्रकार मानसिक कलुष से मुक्त होकर आध्यात्मिक पद प्राप्त किया जा सकता है। उसके बाद शुद्ध भक्त की संगति की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि केवल शुद्ध भक्त की संगति से ही मनुष्य भगवान् कृष्ण का शुद्ध भक्त बन सकता है। शुद्ध भक्ति की अवस्था तक पहुँचने पर *श्रवणं कीर्तनं* की विधि अत्यावश्यक हो जाती है। भक्ति की नौ विधियों को सम्पन्न करने से, जो श्रवणं कीर्तनं से आरम्भ होती हैं, मनुष्य पूर्ण रूप से शुद्ध बन सकता है। *अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्* (*भक्तिरसामृतसिन्धु* १.१.११)। उसी के बाद *भगवद्गीता* (१८.६५, ६६) में दिये कृष्ण के आदेश का पालन किया जा सकता है :

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यम् ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

"सदा मेरे विषय में सोचो तथा मेरे भक्त बनो। मेरी पूजा करो तथा मुझे ही नमस्कार करो। इस तरह तुम अवश्य ही मेरे पास आओगे। मैं तुम्हें यह वचन देता हूँ, क्योंकि तुम मेरे प्रिय मित्र हो। सारे धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सारे पापों से मुक्त कर दूँगा। डरो मत।" इस तरह मनुष्य भगवान् की प्रेममयी सेवा करने की अपनी मूल वैधानिक स्थिति विकसित कर सकता है।

कर्मकाण्ड या ज्ञानकाण्ड से कोई भी भक्ति के सर्वोच्च पद पर उन्नत नहीं हो सकता। शुद्ध भक्ति केवल शुद्ध भक्तों की संगति से ही समझी और प्राप्त की जा सकती है। इस सम्बन्ध में श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि कर्मकाण्ड के कार्य दो प्रकार के होते हैं—पवित्र तथा अपवित्र। पवित्र कार्य निस्सन्देह, अपवित्र कार्यों से अच्छे होते हैं, किन्तु पवित्र कार्यों से भी भगवान् कृष्ण के भावपूर्ण प्रेम की प्राप्ति नहीं की जा सकती। पवित्र तथा अपवित्र कार्यों से भौतिक सुख या दुःख तो मिल सकते हैं, किन्तु मात्र इनसे

शुद्ध भक्त बनने की सम्भावना नहीं होती। भक्ति का अर्थ है कृष्ण को सन्तुष्ट करना। प्रत्येक प्रामाणिक शास्त्र में, चाहे उसमें ज्ञानकाण्ड पर बल हो या कर्मकाण्ड पर, वैराग्य के सिद्धान्त की सदा प्रशंसा की जाती है। इसका सबसे बड़ा वैदिक साक्ष्य है वैदिक ज्ञान का परिपक्व फल *श्रीमद्भागवत*। *श्रीमद्भागवत* (१.५.१२) में कहा गया है :

नैष्कर्म्यमप्यच्युत भाववर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे
न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्॥

"समस्त भौतिक आकर्षण से मुक्त होने पर भी आत्म-साक्षात्कार का ज्ञान अच्छा प्रतीत नहीं होता, यदि वह अच्युत (ईश्वर) की धारणा से रहित हो। तो फिर सकाम कर्मों का क्या लाभ, जो प्रारम्भ से ही पीड़ादायक तथा नश्वर प्रकृति के हैं, यदि उन्हें भगवान् की सेवा में प्रयुक्त न किया जा सके?" इसका अर्थ यह हुआ कि ज्ञान भी, जो कर्मकाण्ड से बढ़कर है, सफल नहीं होता यदि वह भक्ति से रहित है। अतः *श्रीमद्भागवत्* के प्रारम्भ, मध्य तथा अन्त में कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड की निन्दा की गई है। उदाहरण के रूप में *श्रीमद्भागवत* (१.१.२) में कहा गया है— *धर्मः प्रोज्झित कैतवोऽत्र।*

इसकी व्याख्या *श्रीमद्भागवत* (११.११.३२) तथा *भगवद्गीता* के (१८.६६) निम्नलिखित श्लोकों में दी गई है।

आज्ञायैवं गुणान्दोषान्मयादिष्टानपि स्वकान् ।
धर्मान्सन्त्यज्य यः सर्वान्मां भजेत्स च सत्तमः ॥२६४॥

आज्ञायैवं गुणान्दोषान्मयादिष्टानपि स्वकान् ।
धर्मान्सन्त्यज्य यः सर्वान्मां भजेत्स च सत्तमः ॥ २६४॥

आज्ञाय—पूर्णतया जानकर; **एवम्**—इस प्रकार; **गुणान्**—गुण; **दोषान्**—दोष; **मया**—मुझसे; **आदिष्टान्**—उपदेशित; **अपि**—यद्यपि; **स्वकान्**—अपने; **धर्मान्**—कर्तव्य; **सन्त्यज्य**—त्यागकर; **यः**—जो कोई; **सर्वान्**—सबको; **माम्**—मुझे; **भजेत्**—भजता है; **सः**—वह; **च**—और; **सत्-तमः**—प्रथम श्रेणी का व्यक्ति।

अनुवाद

"'धार्मिक शास्त्रों में नियत कर्मों का वर्णन किया गया है। उनकी विवेचना करने पर मनुष्य उनके गुणों तथा दोषों को पूरी तरह समझ सकता है और तब भगवान् की सेवा करने के लिए उनका पूर्ण परित्याग कर सकता है। जो मनुष्य ऐसा करता है, वह प्रथम कोटि का व्यक्ति (उत्तम) कहलाता है।'

सर्व-धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्व-पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥२६५॥

सर्व-धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्व-पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ २६५ ॥

सर्व-धर्मान्—सभी प्रकार के नियत कर्म; **परित्यज्य**—त्यागकर; **माम् एकम्**—केवल मेरी; **शरणम्**—शरण; **व्रज**—आओ; **अहम्**—मैं; **त्वाम्**—तुम्हें; **सर्व-पापेभ्यः**—सभी पापों के फलों से; **मोक्षयिष्यामि**—मुक्त कर दूँगा; **मा**—मत; **शुचः**—चिन्ता करो।

अनुवाद

"'सारे धर्मों को त्याग कर मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सारे पापकर्मों से मुक्त कर दूँगा। तुम डरो मत।'

तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता ।
मत्कथा-श्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥२६६॥

तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता ।
मत्कथा-श्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥ २६६ ॥

तावत्—तब तक; **कर्माणि**—सकाम कर्म; **कुर्वीत**—करने चाहिए; **न निर्विद्येत**—सन्तुष्ट नहीं होता; **यावता**—जब तक; **मत्-कथा**—मेरी चर्चाएँ; **श्रवण-आदौ**—श्रवण, कीर्तन आदि; **वा**—अथवा; **श्रद्धा**—श्रद्धा; **यावत्**—जब तक; **न**—नहीं; **जायते**—जागृत होती।

अनुवाद

"'जब तक मनुष्य सकाम कर्म द्वारा तृप्त नहीं होता और श्रवणं कीर्तनं

विष्णोः द्वारा भक्ति के लिए रुचि विकसित नहीं कर लेता, तब तक उसे वैदिक आदेशों के विधि-विधानों के अनुसार कर्म करना आवश्यक है।'

तात्पर्य

यह उद्धरण *श्रीमद्भागवत* (११.२०.९) से है।

पञ्च-विध मुक्ति त्याग करे भक्त-गण ।
फल्गु करि' 'मुक्ति' देखे नरकेर सम ॥२६७॥

पञ्च-विध मुक्ति त्याग करे भक्त-गण ।
फल्गु करि' 'मुक्ति' देखे नरकेर सम ॥ २६७॥

पञ्च-विध—पाँच प्रकार की; **मुक्ति**—मुक्ति; **त्याग करे**—त्यागते हैं; **भक्त-गण**—भक्तगण; **फल्गु**—तुच्छ; **करि'**—समझकर; **मुक्ति**—मुक्ति; **देखे**—देखते हैं; **नरकेर**—नरक के; **सम**—समान।

अनुवाद

"शुद्ध भक्त मुक्ति के पाँचों प्रकारों को त्याग देते हैं। निस्सन्देह उनके लिए मुक्ति अत्यन्त नगण्य है, क्योंकि वे इसे नरक के समान मानते हैं।

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥२६८॥

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥ २६८॥

सालोक्य—सालोक्य, उसी लोक में रहना जहाँ भगवान् रहते हैं; **सार्ष्टि**—भगवान् के समान ऐश्वर्य पाना; **सामीप्य**—सदैव पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् के साथ रहना; **सारूप्य**—भगवान् जैसा स्वरूप पाना; **एकत्वम्**—पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान् के शरीर में लीन हो जाना; **अपि**—भी; **उत**—निश्चित रूप से; **दीयमानम्**—दिये जाने पर; **न**—कभी नहीं; **गृह्णन्ति**—स्वीकार करते; **विना**—बिना; **मत्**—मेरी; **सेवनम्**—भक्ति के; **जनाः**—भक्तगण।

अनुवाद

"'शुद्ध भक्त सदैव पाँच प्रकार की मुक्ति का बहिष्कार करते हैं—ये हैं वैकुण्ठ लोक में रहना, भगवान् जैसे ऐश्वर्यों से युक्त होना, भगवान् जैसा स्वरूप प्राप्त करना, भगवान् की संगति करना तथा भगवान् के

शरीर में समा जाना। शुद्ध भक्त भगवद्भक्ति के बिना इन वरदानों को स्वीकार नहीं करते।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (३.२९.१३) से लिया गया है।

यो दुस्त्यजान्क्षिति-सुत-स्वजनार्थ-दारान्
प्रार्थ्यां श्रियं सुर-वरैः सदयावलोकाम् ।
नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधु-द्विट्
सेवानुरक्त-मनसामभवोऽपि फल्गुः ॥२६९॥

यो दुस्त्यजान्क्षिति-सुत-स्वजनार्थ-दारान्
प्रार्थ्यां श्रियं सुर-वरैः सदयावलोकाम् ।
नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधु-द्विट्
सेवानुरक्त-मनसामभवोऽपि फल्गुः ॥ २६९ ॥

यः—वह जो; **दुस्त्यजान्**—त्याग करने में अति कठिन; **क्षिति**—धरती; **सुत**—बच्चे; **स्वजन**—बन्धु बान्धव; **अर्थ**—धन; **दारान्**—और पत्नी; **प्रार्थ्याम्**—वांछित; **श्रियम्**—भाग्य; **सुर-वरैः**—सर्वोच्च देवताओं द्वारा; **स-दया**—दयालु; **अवलोकाम्**—जिसकी दृष्टि; **न ऐच्छत्**—नहीं चाहते थे; **नृपः**—राजा (महाराज भरत); **तत्**—वह; **उचितम्**—उचित है; **महताम्**—महान् व्यक्तियों का; **मधु-द्विट्**—मधु दैत्य के हन्ता का; **सेवा-अनुरक्त**—सेवा में अनुरक्त; **मनसाम्**—जिनके मन; **अभवः**—जन्म-मरण के चक्र की समाप्ति; **अपि**—भी; **फल्गुः**—तुच्छ।

अनुवाद

'"भौतिक ऐश्वर्य, भूमि, सन्तान, समाज, मित्र, धन, पत्नी या लक्ष्मी के आशीर्वादों को त्याग पाना अत्यन्त कठिन है, जो बड़े-बड़े देवताओं द्वारा भी प्रार्थित हैं। किन्तु राजा भरत को ऐसी वस्तुओं की कामना नहीं थी और यह उनके पद के अनुरूप भी था, क्योंकि ऐसे शुद्ध भक्त के लिए, जिसका मन सदैव भगवान् की सेवा में लगा रहता है, मुक्ति या भगवान् से तादात्म्य भी तुच्छ है। तो फिर भौतिक अवसरों के विषय में तो कहना ही क्या?'

तात्पर्य

शुकदेव गोस्वामी ने राजा परीक्षित से राजा भरत की प्रशंसा में यह श्लोक कहा है (*श्रीमद्भागवत* ५.१४.४४)।

नारायण-पराः सर्वे न कुतश्चन विभ्यति ।
स्वर्गापवर्ग-नरकेष्वपि तुल्यार्थ-दर्शिनः ॥२७०॥

नारायण-पराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति ।
स्वर्गापवर्ग-नरकेष्वपि तुल्यार्थ-दर्शिनः ॥ २७० ॥

नारायण-पराः—भगवान् नारायण के भक्त; **सर्वे**—सभी; **न**—कभी नहीं; **कुतश्चन**—कहीं भी; **बिभ्यति**—भयभीत होते हैं; **स्वर्ग**—स्वर्ग लोकों में; **अपवर्ग**—मुक्ति के पथ पर; **नरकेषु**—अथवा जीवन की नरकावस्था में; **अपि**—भी; **तुल्य**—समान; **अर्थ**—मूल्य; **दर्शिनः**—देखने वाले।

अनुवाद

"'भगवान् नारायण का भक्त नरक से नहीं डरता, क्योंकि वह इसे स्वर्ग जाने या मुक्ति के ही समान मानता है। भगवान् नारायण के भक्त इन वस्तुओं को एक-सा ही मानने के अभ्यस्त होते हैं।'

तात्पर्य

यह श्लोक *श्रीमद्भागवत* (६.१७.२८) का है, जिसमें चित्रकेतु के व्यक्तित्व का वर्णन हुआ है। एक बार जब चित्रकेतु ने देवी पार्वती को शम्भु (शिव) की गोद में बैठे देखा, तो उसने शिवजी की आलोचना यह कहकर की कि वे निर्लज्ज होकर सामान्य पुरुष की भाँति अपनी पत्नी को गोद में बैठाये हैं। इसके लिए पार्वती ने चित्रकेतु को शाप दे दिया। बाद में वह वृत्तासुर नामक असुर बना। चित्रकेतु अत्यन्त पराक्रमी राजा तथा भक्त था और वह शिवजी से भी बदला ले सकता था, किन्तु जब पार्वती ने उसे शाप दिया, तो उसने तुरन्त पार्वती के शाप को नतमस्तक होकर स्वीकार कर लिया। जब उसने शाप स्वीकार कर लिया, तो शिवजी ने उसकी प्रशंसा की और पार्वती से कहा कि भगवान् नारायण का भक्त किसी भी पद को स्वीकार करने से डरता नहीं, बशर्ते कि उसे भगवान् की सेवा करने का अवसर मिलता हो। *नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति* का यही अर्थ है।

মুক্তি, কর্ম—দুই বস্তু ত্যজে ভক্ত-গণ ।
সেই দুই স্থাপ' তুমি 'সাধ্য', 'সাধন' ॥২৭১॥

मुक्ति, कर्म—दुइ वस्तु त्यजे भक्त-गण ।
सेइ दुइ स्थाप' तुमि 'साध्य', 'साधन' ॥ २७१ ॥

मुक्ति—मुक्ति; **कर्म**—सकाम कर्म; **दुइ**—दोनों; **वस्तु**—वस्तुएँ; **त्यजे**—त्याग देते हैं; **भक्त-गण**—भक्तगण; **सेइ**—वे; **दुइ**—दोनों; **स्थाप'**—स्थापित करते हैं; **तुमि**—आप; **साध्य**—जीवन का उद्देश्य; **साधन**—उपलब्धि की प्रक्रिया।

अनुवाद

"भक्तगण मुक्ति तथा सकाम कर्म—इन दोनों का परित्याग करते हैं। आप इन्हें ही जीवन का लक्ष्य तथा उसे प्राप्त करने की विधि के रूप में स्थापित करना चाह रहे हैं।"

সন্ন্যাসী দেখিয়া মোরে করহ বঞ্চন ।
না কহিলা তেঞি সাধ্য-সাধন-লক্ষণ ॥২৭২॥

सन्न्यासी देखिया मोरे करह वञ्चन ।
ना कहिला तेञि साध्य-साधन-लक्षण ॥ २७२ ॥

सन्न्यासी—संन्यासी; **देखिया**—देखकर; **मोरे**—मुझे; **करह**—तुम करते हो; **वञ्चन**—कपट; **ना कहिला**—नहीं वर्णन किया; **तेञि**—अतः; **साध्य**—उद्देश्य; **साधन**—साधना; **लक्षण**—लक्षण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु उस तत्त्ववादी आचार्य से कहते रहे, "आप मुझे संन्यासी वेश में देखकर मेरे साथ कपटपूर्ण आचरण कर रहे हैं। आपने विधि (साधन) तथा चरम लक्ष्य (साध्य) का सही-सही वर्णन नहीं किया है।"

শুনি' তত্ত্বাচার্য হৈলা অন্তরে লজ্জিত ।
প্রভুর বৈষ্ণবতা দেখি, হইলা বিস্মিত ॥২৭৩॥

शुनि' तत्त्वाचार्य्य हैला अन्तरे लज्जित ।
प्रभुर वैष्णवता देखि, हइला विस्मित ॥ २७३ ॥

शुनि'—सुनकर; **तत्त्व-आचार्य्य**—तत्त्ववादी सम्प्रदाय का आचार्य; **हैला**—हो गया; **अन्तरे**—मन में; **लज्जित**—लज्जित; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु की; **वैष्णवता**—वैष्णवता; **देखि**—देखकर; **हइला**—हो गया; **विस्मित**—चकित।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की बात सुनकर तत्त्ववादी सम्प्रदाय का आचार्य अत्यधिक लज्जित हो गया। वैष्णव-धर्म में श्री चैतन्य महाप्रभु की दृढ़ श्रद्धा देखकर वह आश्चर्यचकित रह गया।

आचार्य कहे,—तुमि येई कह, सेई सत्य हय ।
सर्व-शास्त्रे वैष्णवेर एई सुनिश्चय ॥२७४॥

आचार्य्य कहे,—तुमि येइ कह, सेइ सत्य हय ।
सर्व-शास्त्रे वैष्णवेर एइ सुनिश्चय ॥ २७४॥

आचार्य्य कहे—तत्त्ववादी आचार्य ने कहा; **तुमि**—आप; **येइ**—जो कुछ; **कह**—कहते हैं; **सेइ**—वह; **सत्य**—सत्य; **हय**—है; **सर्व-शास्त्रे**—सभी प्रामाणिक शास्त्रों में; **वैष्णवेर**—भगवान् विष्णु के भक्तों के; **एइ**—यह; **सु-निश्चय**—निष्कर्ष।

अनुवाद

तत्त्ववादी आचार्य ने उत्तर दिया, "आपने जो कहा है, वह सत्य है; यही सारे प्रामाणिक वैष्णव शास्त्रों का निर्णय है।

तथापि मध्वाचार्य ये करियाछे निर्बन्ध ।
सेई आचरिये सबे सम्प्रदाय-सम्बन्ध ॥२७५॥

तथापि मध्वाचार्य्य येे करियाछे निर्बन्ध ।
सेइ आचरिये सबे सम्प्रदाय-सम्बन्ध ॥ २७५॥

तथापि—तथापि; **मध्व-आचार्य्य**—मध्वाचार्य; **येे**—जो कुछ; **करियाछे**—सिद्धान्त बनाया है; **निर्बन्ध**—विधि विधान; **सेइ**—वह; **आचरिये**—हम पालन करते हैं; **सबे**—सब; **सम्प्रदाय**—सम्प्रदाय; **सम्बन्ध**—सम्बन्ध।

अनुवाद

"तो भी मध्वाचार्य ने हमारे सम्प्रदाय के लिए जो सूत्र निश्चित कर दिये हैं, हम उन्हीं का पालन सम्प्रदाय की नीति के रूप में करते हैं।"

प्रभु कहे,——कर्मी, ज्ञानी,——दुई भक्ति-हीन ।
तोमार सम्प्रदाये देखि सेइ दुई चिह्न ॥२७६॥

प्रभु कहे,——कर्मी, ज्ञानी,——दुइ भक्ति-हीन ।
तोमार सम्प्रदाये देखि सेइ दुइ चिह्न ॥ २७६ ॥

प्रभु कहे—श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा; **कर्मी**—सकाम कर्मी; **ज्ञानी**—ज्ञानी; **दुइ**—दोनों; **भक्ति-हीन**—अभक्त; **तोमार**—आपके; **सम्प्रदाये**—सम्प्रदाय में; **देखि**—मैं देखता हूँ; **सेइ**—वही; **दुइ**—दोनों; **चिह्न**—लक्षण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "सकाम कर्मी तथा ज्ञानी—दोनों ही अभक्त माने जाते हैं। हमें ये दोनों आपके सम्प्रदाय में दिखते हैं।

सबे, एक गुण देखि तोमार सम्प्रदाये ।
सत्य-विग्रह करि' ईश्वरे करह निश्चये ॥२७७॥

सबे, एक गुण देखि तोमार सम्प्रदाये ।
सत्य-विग्रह करि' ईश्वरे करह निश्चये ॥ २७७ ॥

सबे—सब में; **एक**—एक; **गुण**—गुण; **देखि**—मैं देखता हूँ; **तोमार**—आपके; **सम्प्रदाये**—सम्प्रदाय में; **सत्य-विग्रह**—भगवान् के विग्रह को सत्य; **करि'**—मानकर; **ईश्वरे**—पूर्ण पुरूषोत्तम भगवान्; **करह**—आप करते हो; **निश्चये**—निश्चय।

अनुवाद

"मुझे आपके सम्प्रदाय में जो एकमात्र गुण दिखता है, वह यही है कि आप लोग भगवान् के अर्चाविग्रह को सत्य रूप मानते हैं।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु ने मध्वाचार्य सम्प्रदाय के तत्त्ववादी आचार्य को यह बता देना चाहा कि उनका सामान्य आचरण शुद्ध भक्ति के अनुकूल नहीं है, क्योंकि उसे सकाम कर्म तथा ज्ञान के कल्मष से रहित होना चाहिए। जहाँ तक सकाम कर्म की बात है, यह कल्मष जीवन के उच्चतर स्तर तक ऊपर उठने की इच्छा करना है और ज्ञान का कल्मष परम सत्य में विलीन हो जाने की इच्छा करना है। मध्वाचार्य का तत्त्ववादी सम्प्रदाय वर्णाश्रम धर्म के सिद्धान्त को मानता है, जिसमें सकाम कर्म निहित होता है। उनका चरम लक्ष्य (मुक्ति)

मात्र एक प्रकार की भौतिक इच्छा है। शुद्ध भक्त को सभी तरह की भौतिक इच्छाओं से मुक्त होना चाहिए। वह केवल कृष्ण की भक्ति में लगा रहता है। तो भी, चैतन्य महाप्रभु को इस बात की प्रसन्नता थी कि मध्वाचार्य सम्प्रदाय अथवा तत्त्ववाद सम्प्रदाय भगवान् के दिव्य रूप को स्वीकार करता है। यह वैष्णव सम्प्रदायों की सबसे बड़ी विशेषता है।

यह तो मायावाद सम्प्रदाय ही है, जो भगवान् के दिव्य स्वरूप को स्वीकार नहीं करता। यदि कोई वैष्णव सम्प्रदाय भी इस निर्विशेष प्रवृत्ति में बह जाता है, तो उस सम्प्रदाय का कोई स्थान नहीं होता। यह तथ्य है कि ऐसे अनेक तथाकथित वैष्णव हैं, जिनका चरम लक्ष्य भगवान् के अस्तित्व में विलीन हो जाना होता है। उदाहरण के लिए, सहजिया वैष्णव-दर्शन भगवान् से तादात्म्य चाहता है। श्री चैतन्य महाप्रभु इंगित करते हैं कि श्री माधवेन्द्र पुरी ने मध्वाचार्य को इसीलिए स्वीकार किया, क्योंकि उनका सम्प्रदाय भगवान् के दिव्य स्वरूप को स्वीकार करता है।

এই-মত তাঁর ঘরে গর্ব চূর্ণ করি' ।
ফল্গু-তীর্থে তবে চলি আইলা গৌরহরি ॥২৭৮॥

এइ-মত তাঁর ঘরে গর্ব চূর্ণ করি' ।
ফল্গু-তীর্থে তবে চলি আইলা গৌরহরি ॥ ২৭৮ ॥

এइ-মত—इस प्रकार; **তাঁর ঘরে**—उसके घर में; **গর্ব**—गर्व; **চূর্ণ**—भंग; **করি'**—करके; **ফল্গু-তীর্থে**—फल्गुतीर्थ स्थान को; **তবে**—तब; **চলি**—चले; **আইলা**—आये; **গৌরহরি**—श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने तत्त्ववादियों के गर्व को चूर-चूर कर दिया। तब वे फल्गु तीर्थ गये।

ত্রিতকূপে বিশালার করি' দরশন ।
পঞ্চাপ্সরা-তীর্থে আইলা শচীর নন্দন ॥২৭৯॥

ত্রিতকূপে বিশালার করি' দরশন ।
পঞ্চাপ্সরা-তীর্থে আইলা শচীর নন্দন ॥ ২৭৯ ॥

त्रितकूपे—त्रितकूप; **विशालार**—विशाला नामक विग्रह के; **करि'**—करके; **दरशन**—दर्शन; **पञ्च-अप्सरा-तीर्थे**—पंचाप्सरा तीर्थ स्थान को; **आइला**—आये; **शचीर नन्दन**—शची माता के पुत्र।

अनुवाद

माता शची के पुत्र श्री चैतन्य महाप्रभु तब त्रितकूप गये और वहाँ पर विशाला अर्चाविग्रह का दर्शन करने के बाद वे पंचाप्सरा नामक तीर्थस्थान गये।

तात्पर्य

स्वर्ग की अप्सराएँ प्राय: नर्तकियाँ कहलाती हैं। स्वर्गीय ग्रहों की युवतियाँ अत्यन्त सुन्दरी होती हैं और यदि पृथ्वी पर कोई स्त्री अत्यन्त सुन्दर होती है, तो उसकी तुलना अप्सराओं से की जाती है। लता, बुदबुदा, समीची, सौरभेयी तथा वर्णा नाम की पाँच अप्सराएँ थीं। कहा जाता है कि अच्युत ऋषि की तपस्या भंग करने के लिए इन्द्र ने इन पाँच अप्सराओं को भेजा था। स्वर्ग के राजा इन्द्र ऐसा करने का अभ्यस्त था। जब भी इन्द्र किसी व्यक्ति को कठिन तपस्या करते देखता, तो वह अपने पद के बारे में भयभीत होने लगता था। इन्द्र सदैव चिन्तित रहता था कि यदि कोई व्यक्ति उससे अधिक शक्तिशाली हो जायेगा, तो उसका वह उच्च पद छिन लिया जायेगा। अत: जब भी वह किसी ऋषि को तपस्या करते देखता, तो वह उसे विचलित करने के लिए अप्सराएँ भेज देता था। यहाँ तक कि विश्वामित्र जैसे महान् ऋषि भी उसकी योजना के शिकार बन गये थे।

जब पाँच अप्सराएँ अच्युत ऋषि का ध्यान भंग करने पहुँची, तो ऋषि ने उन्हें दण्ड देकर शाप दे दिया; फलस्वरूप वे अप्सराएँ सरोवर में मगरमच्छ बन गईं और वह सरोवर पंचाप्सरा कहलाने लगा। भगवान् रामचन्द्र भी इस स्थान पर पधारे थे। श्री नारद मुनि के वृत्तान्त से पता चलता है कि जब अर्जुन तीर्थस्थलों की यात्रा करने गया, तो उसने पाँच अप्सराओं के शापित होने का पता चला। उसने उनका इस निन्द्य अवस्था से उद्धार किया और उस दिन से यह सरोवर पंचाप्सरा तीर्थस्थान बन गया।

গোকর্ণে শিব দেখি' আইলা দ্বৈপায়নি ।
সূর্পারক-তীর্থে আইলা ন্যাসি-শিরোমণি ॥২৮০॥

गोकर्णे शिव देखि' आइला द्वैपायनि ।
सूर्पारक-तीर्थे आइला न्यासि-शिरोमणि ॥ २८० ॥

गोकर्णे—गोकर्ण नामक स्थान पर; **शिव**—शिवजी का मन्दिर; **देखि'**—देखकर; **आइला**—आये; **द्वैपायनि**—द्वैपायनि; **सूर्पारक-तीर्थे**—सूर्पारक तीर्थ स्थान को; **आइला**—आये; **न्यासि-शिरोमणि**—सर्वश्रेष्ठ संन्यासी, श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

पंचाप्सरा की मुलाकात लेने के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु गोकर्ण गये। वहाँ उन्होंने शिवजी का मन्दिर देखा और फिर द्वैपायनी गये। तब संन्यासियों में सर्वश्रेष्ठ श्री चैतन्य महाप्रभु सूर्पारक तीर्थ गये।

तात्पर्य

गोकर्ण कर्नाटक राज्य में उत्तर कनर में स्थित है और करवर से लगभग ३३ मील दक्षिण पूर्व में है। यह स्थान महाबलेश्वर शिवजी के मन्दिर के लिए प्रसिद्ध है। इस मन्दिर को देखने लाखों लोग आते हैं।

सूर्पारक बम्बई से लगभग २६ मील उत्तर में है। महाराष्ट्र में बम्बई के निकट थाना नामक जिला और सोपारा नामक स्थान है। सूर्पारक का उल्लेख महाभारत (शान्ति पर्व, अध्याय ४१, श्लोक ६६-६७) में हुआ है।

কোলাপুরে লক্ষ্মী দেখি' দেখেন ক্ষীর-ভগবতী ।
লাঙ্গ-গণেশ দেখি' দেখেন চোর-পার্বতী ॥২৮১॥

कोलापुरे लक्ष्मी देखि' देखेन क्षीर-भगवती ।
लाङ्ग-गणेश देखि' देखेन चोर-पार्वती ॥ २८१ ॥

कोलापुरे—कोलापुर; **लक्ष्मी**—लक्ष्मी; **देखि'**—देखकर; **देखेन**—उन्होंने दर्शन किया; **क्षीर-भगवती**—क्षीर भगवती मन्दिर; **लाङ्ग-गणेश**—लांग गणेश मूर्ति; **देखि'**—देखकर; **देखेन**—उन्होंने देखा; **चोर-पार्वती**—पार्वतीदेवी जिसे 'चोर' कहते हैं।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु कोलापुर नामक नगर गये, जहाँ उन्होंने

क्षीर भगवती के मन्दिर में लक्ष्मीजी को और चोर पार्वती नामक अन्य मन्दिर में लांग गणेश के दर्शन किये।

तात्पर्य

कोलापुर पहले के बम्बई प्रदेश कहलाने वाला और वर्तमान महाराष्ट्र प्रदेश का एक नगर है। पहले कोलापुर एक देशी रियासत था। यह उत्तर में सांतारा जिला से, पूर्व तथा दक्षिण में बेलगाम से तथा पश्चिम में रत्नागिरि जिले से घिरा है। इस स्थान पर उर्णा नामक नदी है। *बम्बई गजट* से पता चलता है कि यहाँ लगभग २५० मन्दिर थे, जिनमें से छह अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। इनके नाम हैं—(१) अम्बाबाई या महालक्ष्मी मन्दिर, (२) विठोबा मन्दिर, (३) टेम्बलाई मन्दिर, (४) महाकाली मन्दिर, (५) फिरांग-इ या प्रत्यंगिरा मन्दिर तथा (६) याल्लाम्मा मन्दिर।

तथा हैते पाण्डरपुरे आइला गौरचन्द्र ।
विठ्ठल-ठाकुर देखि' पाइला आनन्द ॥२८२॥

तथा हैते पाण्डरपुरे आइला गौरचन्द्र ।
विठ्ठल-ठाकुर देखि' पाइला आनन्द ॥ २८२॥

तथा हैते—वहाँ से; **पाण्डर-पुरे**—पाण्डरपुर; **आइला**—आये; **गौरचन्द्र**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **विठ्ठल-ठाकुर**—विठ्ठल नामक विग्रह; **देखि'**—देखकर; **पाइला**—पाया; **आनन्द**—आनन्द।

अनुवाद

वहाँ से श्री चैतन्य महाप्रभु पांडरपुर गये, जहाँ उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक विठ्ठल ठाकुर का मन्दिर देखा।

तात्पर्य

पांडरपुर शहर भीमा नदी के तट पर स्थित है। कहा जाता है कि जब श्री चैतन्य महाप्रभु पांडरपुर गये, तब उन्होंने तुकाराम को दीक्षा दी और इस तरह तुकाराम उनके शिष्य बने। तुकाराम आचार्य महाराष्ट्र प्रान्त में अत्यधिक प्रसिद्ध हुए और उन्होंने सारे प्रान्त में संकीर्तन आन्दोलन का प्रसार किया। आज भी तुकाराम की कीर्तन टोली मुम्बई में और सारे महाराष्ट्र राज्य में अत्यन्त लोकप्रिय है। इनकी लिखी पुस्तक *अभंग* है। उनकी संकीर्तन-टोली गौड़ीय वैष्णव

कीर्तन मंडलियों जैसी ही है, क्योंकि वे भी मृदंग तथा करताल के साथ भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करते हैं।

इस श्लोक में उल्लिखित विठ्ठलदेव दो भुजाओं वाले विष्णु के रूप हैं और वे नारायण हैं।

प्रेमावेशे कैल बहुत कीर्तन-नर्तन ।
ताहाँ एक विप्र ताँरे कैल निमन्त्रण ॥ २८३॥

प्रेमावेशे कैल बहुत कीर्तन-नर्तन ।
ताहाँ एक विप्र ताँरे कैल निमन्त्रण ॥ २८३॥

प्रेम-आवेशे—प्रेमावेश में; **कैल**—किया; **बहुत**—बहुत; **कीर्तन-नर्तन**—कीर्तन तथा नृत्य; **ताहाँ**—वहाँ; **एक**—एक; **विप्र**—ब्राह्मण ने; **ताँरे**—उनको; **कैल**—दिया; **निमन्त्रण**—निमंत्रण।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु सदा की तरह कई प्रकार से नृत्य और कीर्तन करने लगे और एक ब्राह्मण उन्हें भावावेश में देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने महाप्रभु को अपने घर पर भोजन करने के लिए भी आमन्त्रण दिया।

बहुत आदरे प्रभुकें भिक्षा कराइल ।
भिक्षा करि' तथा एक शुभ-वार्ता पाइल ॥ २८४॥

बहुत आदरे प्रभुके भिक्षा कराइल ।
भिक्षा करि' तथा एक शुभ-वार्ता पाइल ॥ २८४॥

बहुत आदरे—अत्यन्त आदर तथा प्रेम सहित; **प्रभुके**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **भिक्षा कराइल**—भोजन कराया; **भिक्षा करि'**—भोजन करने के बाद; **तथा**—वहाँ; **एक**—एक; **शुभ-वार्ता**—शुभ समाचार; **पाइल**—पाया।

अनुवाद

इस ब्राह्मण ने अतीव सम्मान सहित तथा प्रेमपूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन कराया। भोजन करने के बाद महाप्रभु को शुभ समाचार मिला।

माधव-पुरीर शिष्य 'श्री-रङ्ग-पुरी' नाम ।
सेइ ग्रामे विप्र-गृहे करेन विश्राम ॥ २८५ ॥

माधव-पुरीर शिष्य 'श्री-रङ्ग-पुरी' नाम ।
सेइ ग्रामे विप्र-गृहे करेन विश्राम ॥ २८५ ॥

माधव-पुरीर शिष्य—माधवेन्द्र पुरी के एक शिष्य; **श्री-रङ्ग-पुरी**—श्री रंग पुरी; **नाम**—नामक; **सेइ ग्रामे**—उस गाँव में; **विप्र-गृहे**—एक ब्राह्मण के घर में; **करेन विश्राम**—विश्राम कर रहे हैं।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को यह समाचार मिला कि श्री माधवेन्द्र पुरी के एक शिष्य श्री रंग पुरी उसी गाँव में एक ब्राह्मण के घर उपस्थित हैं।

शुनिया चलिला प्रभु ताँरे देखिवारे ।
विप्र-गृहे वसि' आछेन, देखिला ताँहारे ॥ २८६ ॥

शुनिया चलिला प्रभु ताँरे देखिबारे ।
विप्र-गृहे वसि' आछेन, देखिला ताँहारे ॥ २८६ ॥

शुनिया—यह सुनकर; **चलिला**—चले गये; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **ताँरे**—उनको; **देखिबारे**—मिलने के लिए; **विप्र-गृहे**—ब्राह्मण के घर में; **वसि'**—बैठे; **आछेन**—थे; **देखिला**—देखा; **ताँहारे**—उनको।

अनुवाद

यह समाचार सुनकर श्री चैतन्य महाप्रभु तुरन्त श्री रंग पुरी को मिलने उस ब्राह्मण के घर गये। प्रवेश करते ही महाप्रभु ने उन्हें वहाँ बैठे देखा।

प्रेमावेशे करे ताँरे दण्ड-परणाम ।
अश्रु, पुलक, कम्प, सर्वाङ्गे पड़े घाम ॥ २८७ ॥

प्रेमावेशे करे ताँरे दण्ड-परणाम ।
अश्रु, पुलक, कम्प, सर्वाङ्गे पड़े घाम ॥ २८७ ॥

प्रेम-आवेशे—प्रेमावेश में; **करे**—किया; **ताँरे**—उनको; **दण्ड-परणाम**—दण्डवत्

प्रणाम; **अश्रु**—अश्रु; **पुलक**—पुलक; **कम्प**—कंपन; **सर्व-अङ्गे**—सारे शरीर पर; **पड़े**—हो गया; **घाम**—पसीना।

अनुवाद

श्री रंग पुरी को देखते ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने भूमि पर दण्डवत् गिरकर भावावेश में प्रणाम किया। उनके शरीर में अश्रु, हर्ष, कम्पन तथा स्वेद (पसीने) के दिव्य विकार लक्षण प्रकट हो गये थे।

देखिया विस्मित हैल श्री-रङ्ग-पुरीर मन ।
'उठह श्रीपाद' बलि' बलिला वचन ॥२८८॥

देखिया विस्मित हैल श्री-रङ्ग-पुरीर मन ।
'उठह श्रीपाद' बलि' बलिला वचन ॥ २८८॥

देखिया—देखकर; **विस्मित**—चकित; **हैल**—हो गया; **श्री-रङ्ग-पुरीर**—श्री रंग पुरी का; **मन**—मन; **उठह**—उठकर; **श्री-पाद**—श्रीपाद; **बलि'**—कहकर; **बलिला वचन**—बोलने लगे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को ऐसे भावावेश में देखकर श्रीरंग पुरी ने कहा, "हे श्रीपाद, कृपया उठें।"

श्रीपाद, धर मोर गोसाञिर सम्बन्ध ।
ताहा विना अन्यत्र नाहि एइ प्रेमार गन्ध ॥२८९॥

श्रीपाद, धर मोर गोसाञिर सम्बन्ध ।
ताहा विना अन्यत्र नाहि एइ प्रेमार गन्ध ॥ २८९॥

श्री-पाद—हे श्रीपाद; **धर**—आप रखते हो; **मोर**—मेरे; **गोसाञिर**—प्रभु माधवेन्द्र पुरी के साथ; **सम्बन्ध**—सम्बन्ध; **ताहा विना**—उसके बिना; **अन्यत्र**—और कहीं; **नाहि**—नहीं है; **एइ**—यह; **प्रेमार**—प्रेम की; **गन्ध**—सुगन्ध।

अनुवाद

"हे श्रीपाद, आप श्री माधवेन्द्र पुरी से सम्बन्धित हैं, जिनके बिना प्रेमानन्द की कोई सुगन्ध नहीं होती।"

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर लिखते हैं कि मध्वाचार्य से लेकर पूज्यपाद श्रीपाद लक्ष्मीपति तीर्थ तक की गुरु-शिष्य परम्परा में केवल भगवान् कृष्ण की पूजा होती थी। श्रील माधवेन्द्र पुरी के बाद राधा तथा कृष्ण दोनों की पूजा की स्थापना की गई। इसीलिए श्री माधवेन्द्र पुरी को प्रेमपूर्ण पूजा का मूल माना जाता है। जो माधवेन्द्र पुरी की गुरु-शिष्य परम्परा में नहीं है, उसमें प्रेम-लक्षण उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं होती। इस प्रसंग में *गोसांइ* शब्द महत्त्वपूर्ण है। जो गुरु पूर्णरूपेण भगवान् के प्रति समर्पित है और जिसके पास भगवान् की सेवा के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं होता, वह सर्वोत्तम *परमहंस* कहलाता है। परमहंस को इन्द्रियतृप्ति से कोई सरोकार नहीं रहता; वह तो भगवान् की इन्द्रिय-तुष्टि में ही रुचि लेता है। इस तरह जिस व्यक्ति का इन्द्रियों पर नियन्त्रण होता है, वह *गोसांइ* या *गोस्वामी* कहा जाता है। इन्द्रियों को तब तक नियंत्रित नहीं की जा सकतीं, जब तक कोई भगवान् की सेवा में नहीं लगता। अत: प्रामाणिक गुरु, जो अपनी इन्द्रियों पर पूरा नियंत्रण रखता है, वह चौबीसों घण्टे भगवान् की सेवा में लगा रहता है। उसे गोसांई अथवा गोस्वामी सम्बोधित किया जा सकता है। गोस्वामी पदवी कभी उत्तराधिकार से नहीं मिलती, प्रत्युत प्रामाणिक गुरु को ही प्रदान की जा सकती है।

वृन्दावन के छह महान् गोस्वामी श्रील रूप, सनातन, भट्ट रघुनाथ, श्री जीव, गोपाल भट्ट तथा दास रघुनाथ थे, जिनमें से किसी को भी गोस्वामी की पदवी उत्तराधिकार में नहीं मिली थी। वृन्दावन के वे सभी गोस्वामी प्रामाणिक गुरु के रूप में भक्ति के उच्चतम पद को प्राप्त थे, इसीलिए ये सभी गोस्वामी कहलाये। इन्हीं छ: गोस्वामियों ने वृन्दावन के सारे मन्दिरों का शुभारम्भ किया। बाद में इन मन्दिरों की पूजा का भार गोस्वामियों के कुछ गृहस्थ शिष्यों को सौंप दिया गया। तभी से गोस्वामी पदवी का वंशानुगत उपयोग किया जाने लगा। किन्तु जो प्रामाणिक गुरु होता है और श्री चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय, कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार करता है और जिसका अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण है, वही *गोस्वामी* कहला सकता है। दुर्भाग्यवश वंशानुगत प्रक्रिया

चालू है; अतएव वर्तमान समय में इस पदवी का शाब्दिक व्युत्पत्ति की अज्ञानता के कारण बहुत हद तक दुरुपयोग हो रहा है।

एत बलि' प्रभुके उठाञा कैल आलिङ्गन ।
गलागलि करि' दुँहे करेन क्रन्दन ॥२९०॥

एत बलि' प्रभुके उठाञा कैल आलिङ्गन ।
गलागलि करि' दुँहे करेन क्रन्दन ॥ २९० ॥

एत बलि'—यह कहकर; **प्रभुके**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **उठाञा**—उठाकर; **कैल**—किया; **आलिङ्गन**—आलिंगन; **गलागलि**—गले लगकर; **करि'**—करके; **दुँहे**—वे दोनों; **करेन**—करने लगे; **क्रन्दन**—रोदन ।

अनुवाद

यह कहकर श्री रंग पुरी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को उठाया और उनका आलिंगन किया। आलिंगन करते समय दोनों भाववश रुदन करने लगे।

क्षणेके आवेश छाड़ि' दुँहार धैर्य हैल ।
ईश्वर-पुरीर सम्बन्ध गोसाञि जानाइल ॥२९१॥

क्षणेके आवेश छाड़ि' दुँहार धैर्य्य हैल ।
ईश्वर-पुरीर सम्बन्ध गोसाञि जानाइल ॥ २९१ ॥

क्षणेके—कुछ क्षणों के बाद; **आवेश**—आवेश; **छाड़ि'**—त्यागकर; **दुँहार**—उन दोनों का; **धैर्य्य**—धैर्य; **हैल**—हुआ; **ईश्वर-पुरीर**—ईश्वरी पुरी का; **सम्बन्ध**—सम्बन्ध; **गोसाञि**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **जानाइल**—बताया।

अनुवाद

कुछ क्षणों के बाद उन्हें होश आया, तो वे शान्त हुए। तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने श्री रंग पुरी से ईश्वर पुरी के साथ अपने सम्बन्ध के विषय में बतलाया।

अद्भुत प्रेमेर बन्या दुँहार उथलिल ।
दुँहे मान्य करि' दुँहे आनन्दे बसिल ॥२९२॥

अद्भुत प्रेमेर वन्या दुँहार उथलिल ।
दुँहे मान्य करि' दुँहे आनन्दे वसिल ॥ २९२॥

अद्भुत—अद्‌भुत; **प्रेमेर**—भगवत्प्रेम का; **वन्या**—डूब जाना; **दुँहार**—उन दोनों का; **उथलिल**—उठा; **दुँहे**—वे दोनों; **मान्य करि'**—सम्मान दर्शाकर; **दुँहे**—वे दोनों; **आनन्दे**—आनन्दपूर्वक; **वसिल**—बैठ गये।

अनुवाद

वे दोनों अपने भीतर उठने वाले अद्‌भुत प्रेम-भाव से आप्लावित हो उठे। अन्त में दोनों बैठ गये और आदरपूर्वक बातें करने लगे।

दुई जने कृष्ण-कथा कहे रात्रि-दिने ।
एइ-मते गोङाइल पाँच-सात दिने ॥ २९३॥

दुइ जने कृष्ण-कथा कहे रात्रि-दिने ।
एइ-मते गोङाइल पाँच-सात दिने ॥ २९३॥

दुइ जने—दोनों व्यक्ति; **कृष्ण-कथा**—कृष्ण कथा; **कहे**—कहने लगे; **रात्रि-दिने**—दिन रात; **एइ-मते**—इस प्रकार; **गोङाइल**—व्यतीत किये; **पाँच-सात**—पाँच सात; **दिने**—दिन।

अनुवाद

इस तरह वे दोनों लगातार पाँच-सात दिनों तक कृष्ण-विषयक कथाओं की चर्चा करते रहे।

कौतुके पुरी ताँरे पुछिल जन्म-स्थान ।
गोसाञि कौतुके कहेन 'नवद्वीप' नाम ॥ २९४॥

कौतुके पुरी ताँरे पुछिल जन्म-स्थान ।
गोसाञि कौतुके कहेन 'नवद्वीप' नाम ॥ २९४॥

कौतुके—जिज्ञासा के कारण; **पुरी**—श्री रंग पुरी; **ताँरे**—उनको; **पुछिल**—पूछा; **जन्म-स्थान**—जन्म स्थान; **गोसाञि**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **कौतुके**—सामान्यतः; **कहेन**—कहा; **नव-द्वीप**—नवद्वीप; **नाम**—नाम।

अनुवाद

श्री रंग पुरी ने उत्सुकतावश चैतन्य महाप्रभु से उनके जन्मस्थान के

विषय में पूछा, तो महाप्रभु ने बतलाया कि नवद्वीप धाम उनका जन्मस्थान है।

শ্রী-মাধব-পুরীর সঙ্গে শ্রী-রঙ্গ-পুরী ।
পূর্বে আসিয়াছিলা তেঁহো নদীয়া-নগরী ॥২৯৫॥

শ্রী-মাধব-পুরীর সঙ্গে শ্রী-রঙ্গ-পুরী ।
পূর্বে আসিয়াছিলা তেঁহো নদীয়া-নগরী ॥ ২৯৫ ॥

শ্রী-মাধব-পুরীর সঙ্গে—श्री माधवेन्द्र पुरी के साथ; **শ্রী-রঙ্গ-পুরী**—श्री रंग पुरी; **পূর্বে**—पहले; **আসিয়াছিলা**—आये थे; **তেঁহো**—वे; **নদীয়া-নগরী**—नदीया नगरी में।

अनुवाद

पहले श्री रंग पुरी श्री माधवेन्द्र पुरी के साथ नवद्वीप जा चुके थे, अतएव उन्हें वहाँ हुई घटनाएँ याद आ गईं।

জগন্নাথ-মিশ্র-ঘরে ভিক্ষা যে করিল ।
অপূর্ব মোচার ঘণ্ট তাহাঁ যে খাইল ॥২৯৬॥

জগন্নাথ-মিশ্র-ঘরে ভিক্ষা যে করিল ।
অপূর্ব মোচার ঘণ্ট তাহাঁ যে খাইল ॥ ২৯৬ ॥

জগন্নাথ-মিশ্র-ঘরে—श्री जगन्नाथ मिश्र के घर में; **ভিক্ষা**—भोजन; **যে**—वह; **করিল**—किया; **অপূর্ব**—अपूर्व; **মোচার ঘণ্ট**—केले के फूलों से बनी सब्जी; **তাহাঁ**—वहाँ; **যে**—वह; **খাইল**—खाई।

अनुवाद

नवद्वीप का नाम सुनते ही श्री रंग पुरी को स्मरण हो आया कि वे माधवेन्द्र पुरी के साथ जगन्नाथ मिश्र के घर गये थे, जहाँ उन्होंने दोपहर का भोजन किया था। यहाँ तक कि उन्हें केले के फूलों की बनी सब्जी का अद्वितीय स्वाद भी याद आ गया।

জগন্নাথের ব্রাহ্মণী, তেঁহ—মহা-পতিব্রতা ।
বাৎসল্যে হয়েন তেঁহ যেন জগন্মাতা ॥২৯৭॥

जगन्नाथेर ब्राह्मणी, तेँह—महा-पतिव्रता ।
वात्सल्ये हयेन तेँह ग्रेन जगन्माता ॥ २९७॥

जगन्नाथेर—जगन्नाथ मिश्र की; **ब्राह्मणी**—पत्नी; **तेंह**—वे; **महा**—अत्यन्त; **पति-व्रता**—पतिव्रता; **वात्सल्ये**—वात्सल्य प्रेम में; **हयेन**—थीं; **तेंह**—वे; **ग्रेन**—जैसे; **जगत्-माता**—सारे जगत् की माता।

अनुवाद

श्री रंग पुरी को जगन्नाथ मिश्र की पत्नी भी याद आईं। वे अत्यन्त समर्पित तथा पतिव्रता थीं। वात्सल्य में तो वे जगन्माता तुल्य थीं।

रन्धने निपुणा ताँ-सम नाहि त्रिभुवने ।
पुत्र-सम स्नेह करेन सन्न्यासि-भोजने ॥२९८॥
रन्धने निपुणा ताँ-सम नाहि त्रिभुवने ।
पुत्र-सम स्नेह करेन सन्न्यासि-भोजने ॥ २९८॥

रन्धने—भोजन बनाने में; **निपुणा**—निपुण; **ताँ-सम**—उनकी तरह; **नाहि**—कोई नहीं है; **त्रि-भुवने**—तीनों भुवनों में; **पुत्र-सम**—अपने पुत्रों के समान; **स्नेह करेन**—वे स्नेहिल थीं; **सन्न्यासि-भोजने**—संन्यासियों को भोजन कराने में।

अनुवाद

उन्हें यह भी स्मरण हो आया कि श्री जगन्नाथ मिश्र की पत्नी शचीमाता भोजन बनाने में कैसी निपुण थीं। उन्हें स्मरण हो आया कि वे संन्यासियों के प्रति अत्यधिक स्नेह रखती थीं और उन्हें अपने पुत्रों के समान भोजन कराती थीं।

ताँर एक योग्य पुत्र करियाछे सन्न्यास ।
'शङ्करारण्य' नाम ताँर अल्प वयस ॥२९९॥
ताँर एक ग्रोग्य पुत्र करियाछे सन्न्यास ।
'शङ्करारण्य' नाम ताँर अल्प वयस ॥ २९९॥

ताँर—उनका; **एक**—एक; **ग्रोग्य**—योग्य; **पुत्र**—पुत्र; **करियाछे**—स्वीकार किया; **सन्न्यास**—संन्यास; **शङ्करारण्य**—शंकरारण्य; **नाम**—नामक; **ताँर**—उसका; **अल्प**—छोटी; **वयस**—आयु।

अनुवाद

श्री रंग पुरी यह भी जानते थे कि उनके एक योग्य पुत्र ने कम वय में ही संन्यास ले लिया था। उसका नाम शंकरारण्य था।

এই তীর্থে শঙ্করারণ্যের সিদ্ধি-প্রাপ্তি হৈল ।
প্রস্তাবে শ্রী-রঙ্গ-পুরী এতেক কহিল ॥৩০০॥

এই তীর্থে শঙ্করারণ্যের সিদ্ধি-প্রাপ্তি হৈল ।
প্রস্তাবে শ্রী-রঙ্গ-পুরী এতেক কহিল ॥ ৩০০॥

এই তীর্থে—इसी पवित्र स्थान में; **শঙ্করারণ্যের**—शंकरारण्य ने; **সিদ্ধি-প্রাপ্তি**—सिद्धि प्राप्ति; **হৈল**—कर ली; **প্রস্তাবে**—बातचीत के दौरान; **শ্রী-রঙ্গ-পুরী**—श्री रंग पुरी; **এতেক**—इस प्रकार; **কহিল**—बोले।

अनुवाद

श्री रंग पुरी ने श्री चैतन्य महाप्रभु को बतलाया कि इसी तीर्थ पांडरपुर में शंकरारण्य नामक संन्यासी ने सिद्धि प्राप्त की थी।

तात्पर्य

श्री चैतन्य महाप्रभु के बड़े भाई का नाम विश्वरूप था। उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के पूर्व ही घर छोड़कर संन्यास ग्रहण कर लिया था और उनका नाम शंकरारण्य स्वामी था। वे सारे देश में भ्रमण करके अन्त में पांडरपुर गये, जहाँ सिद्धि प्राप्त करने के बाद संसार से चल बसे। दूसरे शब्दों में, उन्होंने अपना भौतिक शरीर पांडरपुर में त्यागा और वे दिव्य लोक सिधार गये। श्री माधवेन्द्र पुरी के शिष्य श्री रंग पुरी ने, जो ईश्वर पुरी के गुरुभाई थे, यह महत्त्वपूर्ण समाचार श्री चैतन्य महाप्रभु को बतलाया।

প্রভু কহে,——পূর্বাশ্রমে তেঁহ মোর ভ্রাতা ।
জগন্নাথ মিশ্র——পূর্বাশ্রমে মোর পিতা ॥৩০১॥

প্রভু কহে,——পূর্বাশ্রমে তেঁহ মোর ভ্রাতা ।
জগন্নাথ মিশ্র——পূর্বাশ্রমে মোর পিতা ॥ ৩০১॥

প্রভু কহে—महाप्रभु ने उत्तर दिया; **পূর্ব-আশ্রমে**—मेरे पहले के आश्रम में; **তেঁহ**—वे; **মোর**

भ्राता—मेरा भाई; **जगन्नाथ मिश्र**—जगन्नाथ मिश्र; **पूर्व-आश्रमे**—मेरे पिछले आश्रम में; **मोर पिता**—मेरे पिताजी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मेरे पूर्व आश्रम में शंकरारण्य मेरा भाई था और जगन्नाथ मिश्र मेरे पिता थे।"

এই-মত দুই-জনে ইষ্ট-গোষ্ঠী করি' ।
দ্বারকা দেখিতে চলিলা শ্রী-রঙ্গ-পুরী ॥৩০২॥

এই-মত দুই-জনে ইষ্ট-গোষ্ঠী করি' ।
দ্বারকা দেখিতে চলিলা শ্রী-রঙ্গ-পুরী ॥ ৩০২ ॥

এই-মত—इस प्रकार; **दुइ-जने**—उन दोनों ने; **इष्ट-गोष्ठी करि'**—कई विषयों की चर्चा की; **द्वारका देखिते**—द्वारका देखने के लिए; **चलिला**—चल पड़े; **श्री-रङ्ग-पुरी**—श्री रंग पुरी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु से बातें करने के बाद श्री रंग पुरी द्वारका धाम के लिए रवाना हो गये।

দিন চারি তথা প্রভুকে রাখিল ব্রাহ্মণ ।
ভীমা-নদী স্নান করি' করেন বিঠ্ঠল দর্শন ॥৩০৩॥

দিন চারি তথা প্রভুকে রাখিল ব্রাহ্মণ ।
ভীমা-নদী স্নান করি' করেন বিঠ্ঠল দর্শন ॥ ৩০৩ ॥

दिन—दिन; **चारि**—चार; **तथा**—वहाँ; **प्रभुके**—चैतन्य महाप्रभु को; **राखिल**—रखा; **ब्राह्मण**—ब्राह्मण ने; **भीमा-नदी**—भीमा नदी में; **स्नान करि'**—स्नान करके; **करेन**—किया; **विठ्ठल दर्शन**—विठ्ठल के मन्दिर का दर्शन।

अनुवाद

श्री रंग पुरी के द्वारका-गमन के बाद श्री चैतन्य महाप्रभु पाण्डरपुर में उस ब्राह्मण के घर चार दिनों तक और रहे। उन्होंने भीमा नदी में स्नान किया और विठ्ठल-मन्दिर का दर्शन किया।

তবে মহাপ্রভু আইলা কৃষ্ণ-বেণ্বা-তীরে ।
নানা তীর্থ দেখি' তাহাঁ দেবতা-মন্দিরে ॥ ৩০৪ ॥

तबे महाप्रभु आइला कृष्ण-वेण्वा-तीरे ।
नाना तीर्थ देखि' ताहाँ देवता-मन्दिरे ॥ ३०४ ॥

तबे—तत्पश्चात्; **महाप्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **आइला**—आये; **कृष्ण-वेण्वा-तीरे**—कृष्णवेण्वा नदी के तट पर; **नाना**—नाना; **तीर्थ**—तीर्थ स्थान; **देखि'**—देखकर; **ताहाँ**—वहाँ; **देवता-मन्दिरे**—कुछ देवताओं के मन्दिरों में।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्णवेण्वा नदी के किनारे गये, जहाँ उन्होंने अनेक तीर्थस्थल तथा विभिन्न देवों के मन्दिर देखे।

तात्पर्य

यह नदी कृष्णा नदी की एक शाखा है। कहा जाता है कि ठाकुर बिल्वमंगल इसी नदी के किनारे रहते थे। यह नदी कभी-कभी वीणा, वेणी, सिना तथा भीमा भी कहलाती है।

ব্রাহ্মণ-সমাজ সব——বৈষ্ণব-চরিত ।
বৈষ্ণব সকল পড়ে 'কৃষ্ণ-কর্ণামৃত' ॥ ৩০৫ ॥

ब्राह्मण-समाज सब——वैष्णव-चरित ।
वैष्णव सकल पड़े 'कृष्ण-कर्णामृत' ॥ ३०५ ॥

ब्राह्मण-समाज—ब्राह्मण समाज; **सब**—सब; **वैष्णव-चरित**—शुद्ध भक्त; **वैष्णव सकल**—सभी वैष्णव; **पड़े**—पढ़ते थे; **कृष्ण-कर्णामृत**—*कृष्णकर्णामृत* (बिल्वमंगल ठाकुर कृत)।

अनुवाद

वहाँ के ब्राह्मण-समाज में सभी शुद्ध भक्त थे, जो नियमित रूप से बिल्वमंगल ठाकुर कृत कृष्णकर्णामृत नामक ग्रंथ का अध्ययन करते थे।

तात्पर्य

बिल्वमंगल ठाकुर कृत इस पुस्तक में ११२ श्लोक हैं। इसी नाम की दो-तीन पुस्तकें और भी हैं और बिल्वमंगल की पुस्तक पर दो भाष्य भी उपलब्ध

हैं। एक भाष्य तो कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा ही लिखित है, और दूसरा चैतन्य दास गोस्वामी द्वारा।

कृष्ण-कर्णामृत शुनि' प्रभुर आनन्द हैल ।
आग्रह करिया पुँथि लेखाञा लैल ॥ ३०६ ॥

कृष्ण-कर्णामृत शुनि'—*कृष्णकर्णामृत* सुनकर; **प्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु को; **आनन्द हैल**—अत्यन्त आनन्द हुआ; **आग्रह करिय**—बड़ी उत्सुकता से; **पुँथि**—पुस्तक; **लेखाञा**—नकल करवाकर; **लैल**—ले ली।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कृष्णकर्णामृत पुस्तक सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने बड़ी ही उत्सुकता से उसकी नकल करवाई तथा उसे अपने साथ लेते गये।

'कर्णामृत'-सम वस्तु नाहि त्रिभुवने ।
याहा हैते हय कृष्णे शुद्ध-प्रेम-ज्ञाने ॥ ३०७ ॥

'कर्णामृत'-सम वस्तु नाहि त्रिभुवने ।
याहा हैते हय कृष्णे शुद्ध-प्रेम-ज्ञाने ॥ ३०७ ॥

कर्णामृत—*कृष्णकर्णामृत;* **सम**—समान; **वस्तु नाहि**—कोई वस्तु नहीं है; **त्रि-भुवने**—तीनों भुवनों में; **याहा हैते**—जिससे; **हय**—है; **कृष्णे**—भगवान् कृष्ण का; **शुद्ध-प्रेम-ज्ञाने**—शुद्ध भक्ति का ज्ञान।

अनुवाद

तीनों लोकों में कृष्णकर्णामृत की बराबरी का कोई ग्रंथ नहीं है। इस पुस्तक को पढ़ने से कृष्ण की शुद्ध भक्ति का ज्ञान प्राप्त होता है।

सौन्दर्य-माधुर्य-कृष्ण-लीलार अवधि ।
सेइ जाने, ये 'कर्णामृत' पड़े निरवधि ॥ ३०८ ॥

सौन्दर्य्य-माधुर्य्य-कृष्ण-लीलार अवधि ।
सेइ जाने, ग्रे 'कर्णामृत' पड़े निरवधि ॥ ३०८ ॥

सौन्दर्य्य—सौन्दर्य; **माधुर्य्य**—माधुर्य; **कृष्ण-लीलार**—कृष्ण की लीलाओं की; **अवधि**—सीमा; **सेइ जाने**—वह जानता है; **ग्रे**—जो कोई; **कर्णामृत**—*कृष्णकर्णामृत* पुस्तक; **पड़े**—पढ़ता है; **निरवधि**—लगातार।

अनुवाद

जो व्यक्ति निरन्तर कृष्णकर्णामृत को पढ़ता है, वह भगवान् कृष्ण के सौन्दर्य तथा उनकी लीलाओं के मधुर स्वाद को समझ सकता है।

'ब्रह्म-संहिता', 'कर्णामृत' दुई पुँथि पाञा ।
महा-रत्न-प्राय पाइ आइला सङ्गे लञा ॥ ३०९ ॥
'ब्रह्म-संहिता', 'कर्णामृत' दुइ पुँथि पाञा ।
महा-रत्न-प्राय पाइ आइला सङ्गे लञा ॥ ३०९ ॥

ब्रह्म-संहिता—*ब्रह्म-संहिता* पुस्तक; **कर्णामृत**—*कृष्णकर्णामृत* पुस्तक; **दुइ**—दोनों; **पुँथि**—पुस्तकें; **पाञा**—पाकर; **महा-रत्न-प्राय**—अत्यन्त मूल्यवान रत्नों की तरह; **पाइ**—पाकर; **आइला**—लौट आये; **सङ्गे**—अपने साथ; **लञा**—लेकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ब्रह्म-संहिता तथा कृष्ण-कर्णामृत नामक दो पुस्तकों को अत्यन्त मूल्यवान रत्न मानते थे। अतएव अपनी वापसी यात्रा में वे इन्हें अपने साथ ले आये।

तापी स्नान करि' आइला माहिष्मती-पुरे ।
नाना तीर्थ देखि ताहाँ नर्मदार तीरे ॥ ३१० ॥
तापी स्नान करि' आइला माहिष्मती-पुरे ।
नाना तीर्थ देखि ताहाँ नर्मदार तीरे ॥ ३१० ॥

तापी—तापी नदी में; **स्नान करि'**—स्नान करके; **आइला**—आये; **माहिष्मती-पुरे**—माहिष्मती पुर में; **नाना तीर्थ**—अनेक तीर्थस्थानों को; **देखि**—देखकर; **ताहाँ**—वहाँ; **नर्मदार तीरे**—नर्मदा नदी के तट पर।

अनुवाद

इसके बाद श्री चैतन्य महाप्रभु तापी नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ स्नान करने के बाद वे माहिष्मतीपुर गये। वहाँ रहते हुए उन्होंने नर्मदा नदी के किनारे अनेक तीर्थस्थानों को देखा।

तात्पर्य

तापी नदी ताप्ती भी कहलाती है। यह नदी मुल्ताइ पर्वत से निकलती है और सौराष्ट्र से होकर पश्चिमी दिशा में बहती हुई अरब सागर में गिरती है।

महाभारत में माहिष्मतीपुर (महेश्वर) का उल्लेख सहदेव की विजय यात्रा के प्रसंग में प्राप्त होता है। पाण्डवों में सबसे छोटे भाई सहदेव ने इस प्रान्त पर विजय प्राप्त की थी। *महाभारत* के अनुसार :

ततो रत्नान्युपादाय पुरीं माहिष्मतीं ययौ।
तत्र नीलेन राज्ञा स चक्रे युद्धं नरर्षभः॥

"रत्न प्राप्त करने के बाद सहदेव माहिष्मती नगर में गये, जहाँ पर उन्होंने राजा नील के साथ युद्ध किया।"

धनुस्तीर्थ देखि' करिला निर्विन्ध्याते स्नान ।
ऋष्यमूक-गिरि आइला दण्डकारण्ये ॥ ३११॥

धनुस्तीर्थ देखि' करिला निर्विन्ध्याते स्नाने ।
ऋष्यमूक-गिरि आइला दण्डकारण्ये ॥ ३११॥

धनुः-तीर्थ—धनुस्तीर्थ; **देखि'**—देखकर; **करिला**—किया; **निर्विन्ध्याते**—निर्विन्ध्या नदी में; **स्नाने**—स्नान; **ऋष्यमूक-गिरि**—ऋष्यमूक पर्वत पर; **आइला**—आये; **दण्डक-अरण्ये**—दण्डकारण्य नामक पर्वत में।

अनुवाद

इसके बाद महाप्रभु धनुस्तीर्थ में पहुँचे, जहाँ पर उन्होंने निर्विन्ध्या नदी में स्नान किया। तत्पश्चात् वे ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे और वहाँ से दण्डकारण्य चले गये।

तात्पर्य

कुछ लोगों का मत है कि ऋष्यमूक पर्वत-शृंखला है, जिसकी शुरूआत

बेलारी जिले के हाम्पिग्राम से होती है। यह पर्वत-श्रेणी तुंगभद्रा नदी के किनारे-किनारे चलती है और धीरे-धीरे हैदराबाद राज्य तक पहुँच जाती है। अन्यों के मतानुसार यह पर्वत मध्यप्रदेश में स्थित है और आजकल राम्प कहलाता है। दण्डकारण्य विस्तृत भूभाग है, जो खानदेश के उत्तर से प्रारम्भ होकर नासिक तथा औरंगाबाद होते हुए दक्षिणी आहम्मद नगर तक फैला है। गोदावरी नदी इसी भूभाग से होकर बहती है और यहाँ पर एक विशाल जंगल है, जिसमें भगवान् रामचन्द्र रहे थे।

'सप्ततात-वृक्ष' देखे कानन-भितर ।
अति वृद्ध, अति स्थूल, अति उच्चतर ॥३१२॥

'सप्ताल-वृक्ष' देखे कानन-भितर ।
अति वृद्ध, अति स्थूल, अति उच्चतर ॥ ३१२ ॥

सप्त-ताल-वृक्ष—सात ताड़ के वृक्ष; **देखे**—देखे; **कानन भितर**—वन के भीतर; **अति वृद्ध**—अत्यन्त पुराने; **अति स्थूल**—अत्यन्त भारी; **अति उच्चतर**—अत्यन्त ऊँचे।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने दण्डकारण्य जंगल के भीतर सप्तताल नामक स्थान देखा। यहाँ के ताड़ के सात वृक्ष अत्यन्त पुराने, मोटे तथा ऊँचे थे।

तात्पर्य

सप्तताल का उल्लेख *रामायण* के किष्किन्धा काण्ड में अध्याय ग्यारह तथा बारह में हुआ है।

सप्ततात देखि' प्रभु आलिङ्गन कैल ।
सशरीरे सप्ततात वैकुण्ठे चलिल ॥३१३॥

सप्ताल देखि' प्रभु आलिङ्गन कैल ।
सशरीरे सप्ताल वैकुण्ठे चलिल ॥ ३१३ ॥

सप्त-ताल देखि'—सात ताड़ के वृक्ष देखकर; **प्रभु**—चैतन्य महाप्रभु ने; **आलिङ्गन कैल**—आलिंगन किया; **स-शरीरे**—शरीरों सहित; **सप्त-ताल**—सात ताल वृक्ष; **वैकुण्ठे चलिल**—वैकुण्ठलोक को लौट गये।

अनुवाद

सात ताड़ वृक्षों को देखकर श्री चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें गले लगा लिया। फलस्वरूप वे वृक्ष वैकुण्ठ लोक वापस चले गये।

शून्य-स्थल देखि' लोकेर हैल चमत्कार ।
लोके कहे, ए सन्न्यासी—राम-अवतार ॥ ३१४॥

शून्य-स्थल देखि' लोकेर हैल चमत्कार ।
लोके कहे, ए सन्न्यासी—राम-अवतार ॥ ३१४॥

शून्य-स्थल—शून्य स्थान; **देखि'**—देखकर; **लोकेर**—सामान्य लोगों का; **हैल**—था; **चमत्कार**—आश्चर्य; **लोके कहे**—सभी लोग कहने लगे; **ए सन्न्यासी**—यह संन्यासी; **राम-अवतार**—भगवान् रामचन्द्र के अवतार हैं।

अनुवाद

जब सातों ताड़ के वृक्ष वैकुण्ठ लोक चले गये, तो वहाँ के सारे लोग चकित रह गये। तब वे कहने लगे, "श्री चैतन्य महाप्रभु नामक यह संन्यासी अवश्य ही भगवान् रामचन्द्र के अवतार हैं।"

सशरीरे ताल गेल श्री-वैकुण्ठ-धाम ।
ऐछे शक्ति कार हय, विना एक राम ॥ ३१५॥

सशरीरे ताल गेल श्री-वैकुण्ठ-धाम ।
ऐछे शक्ति कार हय, विना एक राम ॥ ३१५॥

स-शरीरे—भौतिक शरीर सहित; **ताल**—ताड़ के वृक्ष; **गेल**—गये; **श्री-वैकुण्ठ-धाम**—श्री वैकुण्ठधाम; **ऐछे**—ऐसी; **शक्ति**—शक्ति; **कार**—किसकी; **हय**—है; **विना**—बिना; **एक**—एक; **राम**—भगवान् रामचन्द्र।

अनुवाद

"केवल भगवान् रामचन्द्र में सप्ततालों को वैकुण्ठ लोक भेजने की शक्ति है।"

प्रभु आसि' कैल पम्पा-सरोवरे स्नान ।
पञ्चवटी आसि, ताहाँ करिल विश्राम ॥ ३१६॥

प्रभु आसि' कैल पम्पा-सरोवरे स्नान ।
पञ्चवटी आसि, ताहाँ करिल विश्राम ॥ ३१६ ॥

प्रभु—श्री चैतन्य महाप्रभु; **आसि'**—आकर; **कैल**—किया; **पम्पा-सरोवरे**—पम्पा सरोवर में; **स्नान**—स्नान; **पञ्चवटी आसि**—तब पंचवटी आकर; **ताहाँ**—वहाँ; **करिल**—लिया; **विश्राम**—विश्राम।

अनुवाद

अन्ततः श्री चैतन्य महाप्रभु पम्पा नामक सरोवर आये, जहाँ उन्होंने स्नान किया। इसके बाद वे पंचवटी गये, जहाँ उन्होंने विश्राम किया।

तात्पर्य

कुछ लोगों के अनुसार तुंगभद्रा नदी का प्राचीन नाम पम्बा था। अन्यों के अनुसार राज्य की राजधानी विजयनगर पम्पा तीर्थ कहलाती थी। कुछ और लोगों के अनुसार हैदराबाद की ओर अनागुण्डि के निकट पम्पा सरोवर है। यहाँ से होकर तुंगभद्रा नदी भी बहती है। पम्पा सरोवर के विषय में अनेक विभिन्न मत हैं।

नासिके त्र्यम्बक देखि' गेला ब्रह्मगिरि ।
कुशावर्ते आइला याहाँ जन्मिला गोदावरी ॥ ३१७ ॥
नासिके त्र्यम्बक देखि' गेला ब्रह्मगिरि ।
कुशावर्ते आइला याहाँ जन्मिला गोदावरी ॥ ३१७ ॥

नासिके—पवित्र स्थान नासिक पर; **त्र्यम्बक**—शिवजी की मूर्ति; **देखि'**—देखकर; **गेला**—गये; **ब्रह्मगिरि**—ब्रह्मगिरी नामक स्थान पर; **कुशावर्ते आइला**—तब कुशावर्त नामक स्थान पर वे आये; **याहाँ**—जहाँ; **जन्मिला**—जन्म लिया; **गोदावरी**—गोदावरी नदी।

अनुवाद

तत्पश्चात् श्री चैतन्य महाप्रभु नासिक गये, जहाँ उन्होंने त्र्यम्बक (शिवजी) का दर्शन किया। तब वे ब्रह्मगिरि गये और फिर गोदावरी के उद्गम स्थान कुशावर्त गये।

तात्पर्य

कुशावर्त पश्चिमी घाट में सह्याद्रि पर स्थित है। यह नासिक तीर्थ के पास है, किन्तु कुछ लोगों के मतानुसार यह विन्ध्य घाटी में स्थित था।

সপ্ত গোদাবরী আইলা করি' তীর্থ বহুতর ।
পুনরপি আইলা প্রভু বিদ্যানগর ॥৩১৮॥

सप्त गोदावरी आइला करि' तीर्थ बहुतर ।
पुनरपि आइला प्रभु विद्यानगर ॥ ३१८ ॥

सप्त गोदावरी—सप्त गोदावरी नामक स्थान में; **आइला**—आये; **करि' तीर्थ बहुतर**—अनेक पवित्र स्थानों के दर्शन करके; **पुनरपि**—पुनः; **आइला**—लौट आये; **प्रभु**—**श्री चैतन्य** महाप्रभु; **विद्यानगर**—वह स्थान जहाँ वे रामानन्द राय से मिले थे।

अनुवाद

अन्य अनेक तीर्थों की मुलाकात लेने के बाद महाप्रभु सप्तगोदावरी गये। अन्त में वे विद्यानगर लौट आये।

तात्पर्य

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने गोदावरी नदी के उद्गम से यात्रा करते हुए हैदराबाद रियासत के उत्तरी भाग को देखा। अन्त में वे कलिंग राज्य लौट आये।

রামানন্দ রায় শুনি' প্রভুর আগমন ।
আনন্দে আসিয়া কৈল প্রভু-সহ মিলন ॥৩১৯॥

रामानन्द राय शुनि' प्रभुर आगमन ।
आनन्दे आसिया कैल प्रभु-सह मिलन ॥ ३१९ ॥

रामानन्द राय—रामानन्द राय; **शुनि'**—सुनकर; **प्रभुर**—चैतन्य महाप्रभु के; **आगमन**—आगमन का; **आनन्दे**—आनन्द में; **आसिया**—आकर; **कैल**—किया; **प्रभु-सह**—चैतन्य महाप्रभु के साथ; **मिलन**—मिलन।

अनुवाद

जब रामानन्द राय ने सुना कि श्री चैतन्य महाप्रभु आ गये हैं, तो वे अत्यन्त आनन्दित हो उठे और तुरन्त ही उन्हें मिलने गये।

দণ্ডবৎ হঞা পড়ে চরণে ধরিয়া ।
আলিঙ্গন কৈল প্রভু তাঁরে উঠাঞা ॥৩২০॥

दण्डवत् हञा पड़े चरणे धरिया ।
आलिङ्गन कैल प्रभु ताँरे उठाञा ॥ ३२० ॥

दण्डवत् हञा—दण्ड की भाँति; **पड़े**—गिर गये; **चरणे**—चरणकमलों को; **धरिया**—पकड़कर; **आलिङ्गन**—आलिंगन; **कैल**—किया; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **ताँरे**—उनको; **उठाञा**—उठाकर।

अनुवाद

जब रामानन्द राय श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का स्पर्श करते हुए दण्डवत् गिर पड़े, तो महाप्रभु ने तुरन्त उन्हें उठा लिया और उनका आलिंगन किया।

দুই জনে প্রেমাবেশে করেন ক্রন্দন ।
প্রেমানন্দে শিথিল হৈল দুঁহাকার মন ॥ ৩২১ ॥

दुइ जने प्रेमावेशे करेन क्रन्दन ।
प्रेमानन्दे शिथिल हैल दुँहाकार मन ॥ ३२१ ॥

दुइ जने—वे दोनों; **प्रेम-आवेशे**—प्रेमावेश में; **करेन**—करने लगे; **क्रन्दन**—रूदन; **प्रेम-आनन्दे**—प्रेमावेश में; **शिथिल हैल**—शिथिल हो गये; **दुँहाकार**—दोनों के; **मन**—मन।

अनुवाद

वे दोनों भावाविष्ट होकर रोने लगे और इस तरह उनके मन शिथिल पड़ गये।

কত-ক্ষণে দুই জনা সুস্থির হঞা ।
নানা ইষ্ট-গোষ্ঠী করে একত্র বসিয়া ॥ ৩২২ ॥

कत-क्षणे दुइ जना सुस्थिर हञा ।
नाना इष्ट-गोष्ठी करे एकत्र वसिया ॥ ३२२ ॥

कत-क्षणे—कुछ क्षणों के बाद; **दुइ**—दोनों; **जना**—व्यक्ति; **सु-स्थिर हञा**—होश में आकर; **नाना**—नाना; **इष्ट-गोष्ठी**—चर्चाएँ; **करे**—करने लगे; **एकत्र**—इकठ्ठे; **वसिया**—बैठकर।

अनुवाद

कुछ समय के बाद दोनों को होश में आये और वे एकसाथ बैठकर विभिन्न विषयों पर बातें करने लगे।

तीर्थ-यात्रा-कथा प्रभु सकल कहिला ।
कर्णामृत, ब्रह्म-संहिता,—दुइ पुँथि दिला ॥ ३२३ ॥

तीर्थ-यात्रा-कथा प्रभु सकल कहिला ।
कर्णामृत, ब्रह्म-संहिता,—दुइ पुँथि दिला ॥ ३२३ ॥

तीर्थ-यात्रा-कथा—उनकी तीर्थयात्रा से सम्बन्धित बातें; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **सकल कहिला**—सब कुछ वर्णन किया; **कर्णामृत**—कृष्ण कर्णामृत नामक पुस्तक; **ब्रह्म-संहिता**—*ब्रह्म-संहिता* नामक पुस्तक; **दुइ**—दोनों; **पुँथि**—शास्त्र; **दिला**—दिये।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु ने रामानन्द राय को तीर्थस्थानों की यात्रा का सुन्दर विवरण सुनाया और उन्हें बतलाया कि उन्होंने कृष्णकर्णामृत तथा ब्रह्म-संहिता नामक दो ग्रंथ किस तरह प्राप्त किये। महाप्रभु ने दोनों पुस्तकें रामानन्द राय को दे दीं।

प्रभु कहे,—तुमि येई सिद्धान्त कहिले ।
एई दुई पुँथि सेई सब साक्षी दिले ॥ ३२४ ॥

प्रभु कहे,—तुमि येइ सिद्धान्त कहिले ।
एइ दुइ पुँथि सेइ सब साक्षी दिले ॥ ३२४ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **तुमि**—आपने; **येइ**—जो कुछ; **सिद्धान्त**—सिद्धान्त; **कहिले**—कहा था; **एइ दुइ**—ये दोनों; **पुँथि**—पुस्तकें; **सेइ**—वही; **सब**—सब; **साक्षी**—प्रमाण; **दिले**—देती हैं।

अनुवाद

महाप्रभु ने कहा : "आपने मुझसे भक्ति के विषय में जो कुछ कहा है, उसकी पुष्टि इन दोनों पुस्तकों से होती है।"

रायेर आनन्द हैल पुस्तक पाइया ।
प्रभु-सह आस्वादिल, राखिल लिखिया ॥ ३२५ ॥

रायेर आनन्द हैल पुस्तक पाइया ।
प्रभु-सह आस्वादिल, राखिल लिखिया ॥ ३२५ ॥

रायेर—रामानन्द राय को; **आनन्द**—आनन्द; **हैल**—हुआ; **पुस्तक पाइया**—उन दोनों पुस्तकों को पाकर; **प्रभु-सह**—महाप्रभु के साथ; **आस्वादिल**—आस्वादन लिया; **राखिल**—रखा; **लिखिया**—लिखकर।

अनुवाद

इन पुस्तकों को पाकर रामानन्द राय अत्यन्त हर्षित हुए। उन्होंने महाप्रभु के साथ मिलकर इनका रसास्वादन किया और दोनों की एक प्रतिलिपि तैयार कर ली।

'गोसाञि आइला' ग्रामे हैल कोलाहल ।
प्रभुके देखिते लोक आइल सकल ॥३२६॥

'गोसाञि आइला' ग्रामे हैल कोलाहल ।
प्रभुके देखिते लोक आइल सकल ॥ ३२६ ॥

गोसाञि—श्री चैतन्य महाप्रभु; **आइला'**—लौट आये हैं; **ग्रामे**—गाँव में; **हैल**—हो गया; **कोलाहल**—कोलाहल; **प्रभुके**—श्री चैतन्य महाप्रभु के; **देखिते**—दर्शन के लिए; **लोक**—लोग; **आइल**—वहाँ आये; **सकल**—सभी।

अनुवाद

विद्यानगर गाँव में श्री चैतन्य महाप्रभु के आने की खबर फैल गई और सारे लोग एक बार फिर उनके दर्शन के लिए आये।

लोक देखि ' रामानन्द गेला निज-घरे ।
मध्याह्ने उठिला प्रभु भिक्षा करिबारे ॥३२७॥

लोक देखि ' रामानन्द गेला निज-घरे ।
मध्याह्ने उठिला प्रभु भिक्षा करिबारे ॥ ३२७ ॥

लोक देखि'—लोगों को देखकर; **रामानन्द**—रामानन्द राय; **गेला**—चले गये; **निज-घरे**—अपने घर; **मध्याह्ने**—दोपहर को; **उठिला प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु उठे; **भिक्षा करिबारे**—अपना भोजन करने के लिए।

अनुवाद

यहाँ पर एकत्र लोगों को देखकर श्री रामानन्द राय अपने घर चले आये। दोपहर में श्री चैतन्य महाप्रभु भोजन करने के लिए उठे।

রাত্রি-কালে রায় পুনঃ কৈল আগমন ।
দুই জনে কৃষ্ণ-কথায় কৈল জাগরণ ॥ ৩২৮॥

রাত্রি-কালে রায় পুনঃ কৈল আগমন ।
দুই জনে কৃষ্ণ-কথায় কৈল জাগরণ ॥ ৩২৮॥

रात्रि-काले—रात को; **राय**—रामानन्द राय; **पुनः**—पुनः; **कैल**—किया; **आगमन**—आगमन; **दुइ जने**—वे दोनों; **कृष्ण-कथाय**—कृष्ण कथाओं पर चर्चा; **कैल**—की; **जागरण**—रातभर जागकर।

अनुवाद

रामानन्द राय रात्रि में फिर आये और वे तथा चैतन्य महाप्रभु दोनों कृष्ण-विषयक कथाओं पर चर्चा करते रहे। उन्होंने इसी तरह रात बिताई।

দুই জনে কৃষ্ণ-কথা কহে রাত্রি-দিনে ।
পরম-আনন্দে গেল পাঁচ-সাত দিনে ॥ ৩২৯॥

দুই জনে কৃষ্ণ-কথা কহে রাত্রি-দিনে ।
পরম-আনন্দে গেল পাঁচ-সাত দিনে ॥ ৩২৯॥

दुइ जने—वे दोनों; **कृष्ण-कथा**—कृष्ण कथाएँ; **कहे**—कहने लगे; **रात्रि-दिने**—दिन रात; **परम-आनन्दे**—परम आनन्द में; **गेल**—व्यतीत हो गये; **पाँच-सात दिने**—पाँच से सात दिन।

अनुवाद

रामानन्द राय तथा श्री चैतन्य महाप्रभु रात-दिन कृष्ण-कथा की चर्चा करते रहे। इस तरह उन्होंने बड़े ही आनन्द में पाँच-सात दिन बिता दिये।

রামানন্দ কহে,—প্রভু, তোমার আজ্ঞা পাঞা ।
রাজাকে লিখিলুঁ আমি বিনয় করিয়া ॥ ৩৩০॥

রামানন্দ কহে,—প্রভু, তোমার আজ্ঞা পাঞা ।
রাজাকে লিখিলুঁ আমি বিনয় করিয়া ॥ ৩৩০॥

रामानन्द कहे—रामानन्द राय ने कहा; **प्रभु**—मेरे प्रिय प्रभु; **तोमार आज्ञा**—आपकी

आज्ञा; **पाञा**—पाकर; **राजाके लिखिलुँ**—राजा को एक पत्र लिखा है; **आमि**—मैंने; **विनय करिया**—अत्यन्त नम्रता से।

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "हे प्रभु, आपकी अनुमति से मैं विनयपूर्वक राजा को एक पत्र लिख चुका हूँ।

राजा मोरे आज्ञा दिल नीलाचले याइते ।
चलिवार उद्योग आमि लागियाछि करिते ॥ ३३१॥

राजा मोरे आज्ञा दिल नीलाचले याइते ।
चलिबार उद्योग आमि लागियाछि करिते ॥ ३३१॥

राजा—राजा ने; **मोरे**—मुझे; **आज्ञा दिल**—आज्ञा दी है; **नीलाचले याइते**—जगन्नाथ पुरी जाने की; **चलिबार**—जाने के लिए; **उद्योग**—प्रबन्ध; **आमि**—मैं; **लागियाछि**—लगा हूँ; **करिते**—करने।

अनुवाद

"राजा ने मुझे जगन्नाथ पुरी लौट जाने का आदेश दे दिया है और मैं वापस जाने का प्रबन्ध कर रहा हूँ।"

प्रभु कहे,—एथा मोर ए-निमित्ते आगमन ।
तोमा लञा नीलाचले करिब गमन ॥ ३३२॥

प्रभु कहे,—एथा मोर ए-निमित्ते आगमन ।
तोमा लञा नीलाचले करिब गमन ॥ ३३२॥

प्रभु कहे—चैतन्य महाप्रभु ने कहा; **एथा**—यहाँ; **मोर**—मेरा; **ए-निमित्ते**—इस कारण; **आगमन**—आगमन; **तोमा लञा**—आपको लेकर; **नीलाचले**—जगन्नाथ पुरी को; **करिब**—मैं करूँगा; **गमन**—प्रस्थान।

अनुवाद

तब श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "मैं केवल इसी कार्य के लिए यहाँ लौटकर आया हूँ। मैं आपको अपने साथ जगन्नाथ पुरी ले चलना चाहता हूँ।"

রায় কহে,——প্রভু, আগে চল নীলাচলে ।
মোর সঙ্গে হাতী-ঘোড়া, সৈন্য-কোলাহলে ॥ ৩৩৩ ॥

राय कहे,——प्रभु, आगे चल नीलाचले ।
मोर सङ्गे हाती-घोड़ा, सैन्य-कोलाहले ॥ ३३३ ॥

राय कहे—रामनाथ ने उत्तर दिया; **प्रभु**—प्रभु; **आगे चल**—आप आगे चलो; **नीलाचले**—जगन्नाथ पुरी; **मोर सङ्गे**—मेरे साथ; **हाती-घोड़ा**—हाथी और घोड़े; **सैन्य**—सिपाही; **कोलाहले**—जोर से गर्जते हुए।

अनुवाद

रामानन्द राय ने कहा, "हे प्रभु, अच्छा यही होगा, यदि आप जगन्नाथ पुरी अकेले जायें, क्योंकि मेरे साथ अनेक घोड़े, हाथी तथा सैनिक होंगे, जिनके कारण बहुत कोलाहल मचता रहेगा।

দিন-দশে ইহা-সবার করি' সমাধান ।
তোমার পাছে পাছে আমি করিব প্রয়াণ ॥ ৩৩৪ ॥

दिन-दशे इहा-सबार करि' समाधान ।
तोमार पाछे पाछे आमि करिब प्रयाण ॥ ३३४ ॥

दिन-दशे—दस दिनों में; **इहा-सबार**—इस सबकी; **करि' समाधान**—व्यवस्था करके; **तोमार**—आपके; **पाछे पाछे**—पीछे पीछे; **आमि**—मैं; **करिब**—करूँगा; **प्रयाण**—प्रयाण।

अनुवाद

"मैं दस दिनों में सारी तैयारी कर लूँगा। मैं जल्दी ही आपके पीछे-पीछे नीलाचल आऊँगा।"

তবে মহাপ্রভু তাঁরে আসিতে আজ্ঞা দিয়া ।
নীলাচলে চলিলা প্রভু আনন্দিত হঞা ॥ ৩৩৫ ॥

तबे महाप्रभु ताँरे आसिते आज्ञा दिया ।
नीलाचले चलिला प्रभु आनन्दित हञा ॥ ३३५ ॥

तबे—तब; **महाप्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **ताँरे**—उनको; **आसिते**—आने की; **आज्ञा दिया**—आज्ञा देकर; **नीलाचले**—जगन्नाथ पुरी को; **चलिला**—चले गये; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **आनन्दित हञा**—आनन्दपूर्वक।

अनुवाद

रामानन्द राय को नीलाचल आने की आज्ञा देकर श्री चैतन्य महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक जगन्नाथ पुरी के लिए चल दिये।

যেই পথে পূর্বে প্রভু কৈলা আগমন ।
সেই পথে চলিলা দেখি, সর্ব বৈষ্ণব-গণ ॥৩৩৬॥

যেই পথে পূর্বে প্রভু কৈলা আগমন ।
সেই পথে চলিলা দেখি, সর্ব বৈষ্ণব-গণ ॥ ৩৩৬ ॥

যেই পথে—जिस मार्ग से; **पूर्वे**—पहले; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **कैला आगमन**—आये थे; **सेइ पथे**—उसी मार्ग से; **चलिला**—चले; **देखि**—देखकर; **सर्व**—सभी; **वैष्णव-गण**—वैष्णवों को।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु जिस रास्ते से पहले विद्यानगर आये थे, उसी से लौटे और सारे वैष्णवजन रास्ते में उन्हें फिर से मिले।

যাহাঁ যায়, লোক উঠে হরি-ধ্বনি করি' ।
দেখি' আনন্দিত-মন হৈলা গৌরহরি ॥৩৩৭॥

যাহাঁ যায়, লোক উঠে হরি-ধ্বনি করি' ।
দেখি' আনন্দিত-মন হৈলা গৌরহরি ॥ ৩৩৭ ॥

যাহাঁ যায়—जहाँ जहाँ वे जाते; **लोक उठे**—लोग खड़े हो जाते; **हरि-ध्वनि करि'**—हरे कृष्ण मन्त्र के पावन नाम का कीर्तन करते हुए; **देखि'**—देखकर; **आनन्दित**—आनन्दित; **मन**—मन में; **हैला**—हो गये; **गौरहरि**—श्री चैतन्य महाप्रभु।

अनुवाद

जहाँ कहीं भी श्री चैतन्य महाप्रभु जाते, श्री हरि के नाम का उच्चारण होता। यह देखकर महाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए।

আলালনাথে আসি' কৃষ্ণদাসে পাঠাইল ।
নিত্যানন্দ-আদি নিজ-গণে বোলাইল ॥৩৩৮॥

आलालनाथे आसि' कृष्णदासे पाठाइल ।
नित्यानन्द-आदि निज-गणे बोलाइल ॥ ३३८ ॥

आलालनाथे—आलालनाथ नामक स्थान; **आसि'**—आकर; **कृष्णदासे**—कृष्णदास, उनका सहायक; **पाठाइल**—आगे भेजा; **नित्यानन्द**—प्रभु नित्यानन्द; **आदि**—आदि; **निज-गणे**—निजी साथी; **बोलाइल**—बुलाया।

अनुवाद

आलालनाथ पहुँचकर महाप्रभु ने अपने सहायक कृष्णदास को नित्यानन्द प्रभु तथा अन्य निजी संगियों को बुलाने के उद्देश्य से आगे भेज दिया।

प्रभुर आगमन शुनि' नित्यानन्द राय ।
उठिया चलिला, प्रेमे थेह नाहि पाय ॥ ३३९ ॥

प्रभुर—श्री चैतन्य महाप्रभु का; **आगमन**—आगमन; **शुनि'**—सुनकर; **नित्यानन्द राय**—भगवान् नित्यानन्द; **उठिया चलिला**—उठ खड़े हुए और चल पड़े; **प्रेमे**—महान् प्रेमावेश में; **थेह**—धैर्य; **नाहि पाय**—नहीं रख सके।

अनुवाद

ज्योंही नित्यानन्द प्रभु ने श्री चैतन्य महाप्रभु के आगमन की खबर सुनी, त्योंही वे तुरन्त उठकर उन्हें मिलने चल दिये। वे महान् भाव के कारण अत्यन्त अधीर हो उठे।

जगदानन्द, दामोदर-पण्डित, मुकुन्द ।
नाचिया चलिला, देहे ना धरे आनन्द ॥ ३४० ॥

जगदानन्द—जगदानन्द; **दामोदर-पण्डित**—दामोदर पण्डित; **मुकुन्द**—मुकुन्द; **नाचिया**—नाचकर; **चलिला**—चल पड़े; **देहे**—शरीर में; **ना धरे**—नहीं समाता; **आनन्द**—आनन्द।

अनुवाद

आनन्द के मारे श्री नित्यानन्द राय, जगदानन्द, दामोदर पण्डित तथा मुकुन्द भावविभोर हो उठे और वे रास्ते-भर नाचते हुए महाप्रभु से मिलने गये।

गोपीनाथाचार्य चलिला आनन्दित हञा ।
प्रभुरे मिलिला सबे पथे लाम्पाञा ॥ ३४१॥

गोपीनाथाचार्य्य चलिला आनन्दित हञा ।
प्रभुरे मिलिला सबे पथे लाग्पाञा ॥ ३४१॥

गोपीनाथ-आचार्य्य—गोपीनाथ आचार्य; **चलिला**—चल पड़े; **आनन्दित**—आनन्दित; **हञा**—होकर; **प्रभुरे**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **मिलिला**—मिले; **सबे**—सब; **पथे**—मार्ग में; **लाग्**—भेंट; **पाञा**—पाया।

अनुवाद

गोपीनाथ आचार्य भी अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में गये। वे सब महाप्रभु से मिलने गये और अन्त में रास्ते में ही उन सबकी भेंट हो गई।

प्रभु प्रेमावेशे सबाय कैल आलिङ्गन ।
प्रेमावेशे सबे करे आनन्द-क्रन्दन ॥ ३४२॥

प्रभु प्रेमावेशे सबाय कैल आलिङ्गन ।
प्रेमावेशे सबे करे आनन्द-क्रन्दन ॥ ३४२॥

प्रभु—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **प्रेम-आवेशे**—प्रेमावेश में; **सबाय**—सबका; **कैल आलिङ्गन**—आलिंगन किया; **प्रेम-आवेशे**—प्रेमावेश में; **सबे करे**—सबने किया; **आनन्द-क्रन्दन**—आनन्द में रूदन।

अनुवाद

महाप्रभु भी प्रेमवश हो गये और उन्होंने सबका आलिंगन किया। वे सभी प्रेमवश आनन्दित होकर रोने लगे।

सार्वभौम भट्टाचार्य आनन्दे चलिला ।
समुद्रेर तीरे आसि' प्रभुरे मिलिला ॥ ३४३॥

सार्वभौम भट्टाचार्य्य आनन्दे चलिला ।
समुद्रेर तीरे आसि' प्रभुरे मिलिला ॥ ३४३ ॥

सार्वभौम भट्टाचार्य्य—सार्वभौम भट्टाचार्य; **आनन्दे**—आनन्द में आकर; **चलिला**—गये; **समुद्रेर तीरे**—समुद्र के तट से; **आसि'**—आये; **प्रभुरे मिलिला**—श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य भी परम आनन्दित होकर महाप्रभु से मिलने गये, और उनकी भेंट समुद्र के किनारे हो गई।

সার্বভৌম মহাপ্রভুর পড়িলা চরণে ।
প্রভু তাঁরে উঠাঞা কৈল আলিঙ্গনে ॥ ৩৪৪ ॥

सार्वभौम महाप्रभुर पड़िला चरणे ।
प्रभु ताँरे उठाञा कैल आलिङ्गने ॥ ३४४ ॥

सार्वभौम—सार्वभौम भट्टाचार्य; **महाप्रभुर**—श्री चैतन्य महाप्रभु के; **पड़िला**—गिर पड़े; **चरणे**—चरणों पर; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **ताँरे**—उनको; **उठाञा**—उठाकर; **कैल आलिङ्गने**—आलिंगन किया।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े और महाप्रभु ने उन्हें उठाकर उनका आलिंगन किया।

প্রেমাবেশে সার্বভৌম করিলা রোদনে ।
সবা-সঙ্গে আইলা প্রভু ঈশ্বর-দরশনে ॥ ৩৪৫ ॥

प्रेमावेशे सार्वभौम करिला रोदने ।
सबा-सङ्गे आइला प्रभु ईश्वर-दरशने ॥ ३४५ ॥

प्रेम-आवेशे—प्रेमावेश में; **सार्वभौम**—सार्वभौम; **करिला रोदने**—रोने लगे; **सबा-सङ्गे**—उन सबके साथ; **आइला**—आये; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **ईश्वर-दरशने**—जगन्नाथ मन्दिर में दर्शन के लिए।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य अत्यधिक प्रेमावेश में रोने लगे। तब महाप्रभु सबके साथ जगन्नाथ मन्दिर गये।

जगन्नाथ-दरशन प्रेमावेशे कैल ।
कम्प-स्वेद-पुलकाश्रुते शरीर भासिल ॥ ३४६॥

जगन्नाथ-दरशन प्रेमावेशे कैल ।
कम्प-स्वेद-पुलकाश्रुते शरीर भासिल ॥ ३४६॥

जगन्नाथ-दरशन—जगन्नाथ भगवान् का दर्शन करके; **प्रेम-आवेशे**—प्रेमावेश में; **कैल**—हुआ; **कम्प**—कम्पन; **स्वेद**—पसीना; **पुलक**—पुलक; **अश्रुते**—अश्रुओं सहित; **शरीर**—सारा शरीर; **भासिल**—भीग गया।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करते समय प्रेमावेश के कारण कम्पन, स्वेद, अश्रु तथा पुलक से महाप्रभु का शरीर आप्लावित हो उठा।

बहु नृत्य-गीत कैल प्रेमाविष्ट हञा ।
पाण्डा-पाल आइल सबे माला-प्रसाद लञा ॥ ३४७॥

बहु नृत्य-गीत कैल प्रेमाविष्ट हञा ।
पाण्डा-पाल आइल सबे माला-प्रसाद लञा ॥ ३४७॥

बहु—बहुत; **नृत्य-गीत**—नृत्य तथा कीर्तन; **कैल**—किया; **प्रेम-आविष्ट**—प्रेमावेश में; **हञा**—होकर; **पाण्डा-पाल**—पुजारी और सेवक; **आइल**—आये; **सबे**—सभी; **माला-प्रसाद**—माला और जगन्नाथ का प्रसाद; **लञा**—देने के लिए।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु प्रेमावेश के कारण नाचने लगे और कीर्तन करने लगे। उस समय सारे पाण्डे तथा पुजारी उन्हें भगवान् जगन्नाथ का प्रसाद तथा माला देने आये।

तात्पर्य

भगवान् जगन्नाथ की सेवा में लगे पुजारी *पाण्डा* या *पण्डित* कहलाते हैं

और वे ब्राह्मण होते हैं। मन्दिर के बाहरी मामलों की देख-रेख करने वाले *पाल* कहलाते हैं। चैतन्य महाप्रभु को मिलने के लिए पुजारी तथा पाल दोनों ही गये।

माला-प्रसाद पाञा प्रभु सुस्थिर हइला ।
जगन्नाथेर सेवक सब आनन्दे मिलिला ॥ ३४८ ॥

माला-प्रसाद पाञा प्रभु सुस्थिर हइला ।
जगन्नाथेर सेवक सब आनन्दे मिलिला ॥ ३४८ ॥

माला-प्रसाद—माला और प्रसाद; **पाञा**—पाकर; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु; **सु-स्थिर हइला**—धीर हो गये; **जगन्नाथेर**—भगवान् जगन्नाथ के; **सेवक**—सेवक; **सब**—सब; **आनन्दे मिलिला**—उन्हें आनन्दपूर्वक मिले।

अनुवाद

भगवान् जगन्नाथ की माला तथा प्रसाद पाकर श्री चैतन्य महाप्रभु सन्तुष्ट हुए। भगवान् जगन्नाथ के सारे सेवक बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु से मिले।

काशी-मिश्र आसि' प्रभुर पड़िला चरणे ।
मान्य करि' प्रभु ताँरे कैल आलिङ्गने ॥ ३४९ ॥

काशी-मिश्र आसि' प्रभुर पड़िला चरणे ।
मान्य करि' प्रभु ताँरे कैल आलिङ्गने ॥ ३४९ ॥

काशी-मिश्र—काशी मिश्र; **आसि'**—आकर; **प्रभुर**—महाप्रभु के; **पड़िला**—गिर पड़े; **चरणे**—चरणों पर; **मान्य करि'**—आदरपूर्वक; **प्रभु**—चैतन्य महाप्रभु ने; **ताँरे**—उनका; **कैल**—किया; **आलिङ्गने**—आलिंगन।

अनुवाद

बाद में काशी मिश्र आये और वे महाप्रभु के चरणकमलों पर गिर पड़े। महाप्रभु ने बड़े ही आदर से उनका आलिंगन किया।

प्रभु लञा सार्वभौम निज-घरे गेला ।
मोर घरे भिक्षा बलि' निमन्त्रण कैला ॥ ३५० ॥

प्रभु लञा सार्वभौम निज-घरे गेला ।
मोर घरे भिक्षा बलि' निमन्त्रण कैला ॥ ३५०॥

प्रभु लञा—श्री चैतन्य महाप्रभु को लेकर; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **निज-घरे**—अपने घर को; **गेला**—गये; **मोर**—मेरे; **घरे**—घर पर; **भिक्षा**—भोजन; **बलि'**—कहकर; **निमन्त्रण कैला**—निमन्त्रण दिया।

अनुवाद

तब सार्वभौम भट्टाचार्य महाप्रभु को अपने साथ अपने घर यह कहकर ले गये, "आज आप मेरे घर में भोजन करेंगे।" इस तरह उन्होंने महाप्रभु को आमन्त्रित किया।

दिव्य महा-प्रसाद अनेक आनाइल ।
पीठा-पाना आदि जगन्नाथ ये खाइल ॥ ३५१॥

दिव्य महा-प्रसाद अनेक आनाइल ।
पीठा-पाना आदि जगन्नाथ ये खाइल ॥ ३५१॥

दिव्य—दिव्य; **महा-प्रसाद**—जगन्नाथजी का बचा हुआ भोजन; **अनेक**—अनेक; **आनाइल**—लाये; **पीठा-पाना आदि**—मिठाईयाँ, रबड़ी आदि; **जगन्नाथ**—भगवान् जगन्नाथ ने; **ये**—जो; **खाइल**—खाया था।

अनुवाद

सार्वभौम भट्टाचार्य भगवान् जगन्नाथ द्वारा छोड़े गये विविध प्रकार के प्रसाद ले आये। वे अनेक प्रकार के पकवान तथा औंटे दूध की बनी वस्तुएँ ले आये।

मध्याह्न करिला प्रभु निज-गण लञा ।
सार्वभौम-घरे भिक्षा करिला आसिया ॥ ३५२॥

मध्याह्न करिला प्रभु निज-गण लञा ।
सार्वभौम-घरे भिक्षा करिला आसिया ॥ ३५२॥

मध्याह्न—दोपहर का भोजन; **करिला**—किया; **प्रभु**—श्री चैतन्य महाप्रभु ने; **निज-गण लञा**—अपने साथियों के साथ; **सार्वभौम-घरे**—सार्वभौम भट्टाचार्य के घर पर; **भिक्षा**—भोजन; **करिला**—किया; **आसिया**—आकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु अपने संगियों समेत सार्वभौम भट्टाचार्य के घर गये और वहाँ दोपहर का भोजन किया।

ভিক্ষা করাঞা তাঁরে করাইল শয়ন ।
আপনে সার্বভৌম করে পাদ-সংবাহন ॥৩৫৩॥

भिक्षा कराञा ताँरे कराइल शयन ।
आपने सार्वभौम करे पाद-संवाहन ॥ ३५३ ॥

भिक्षा कराञा—भोजन कराने के बाद; **ताँरे**—उनको; **कराइल**—कराया; **शयन**—विश्राम; **आपने**—स्वयं; **सार्वभौम**—सार्वभौम भट्टाचार्य; **करे**—करने लगे; **पाद-संवाहन**—पाँवो की मालिश।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु को भोजन कराने के बाद सार्वभौम भट्टाचार्य ने उन्हें विश्राम के लिए शयन कराया और स्वयं उनके पाँव दबाने लगे।

প্রভু তাঁরে পাঠাইল ভোজন করিতে ।
সেই রাত্রি তাঁর ঘরে রহিলা তাঁর প্রীতে ॥৩৫৪॥

प्रभु ताँरे पाठाइल भोजन करिते ।
सेइ रात्रि ताँर घरे रहिला ताँर प्रीते ॥ ३५४ ॥

प्रभु—श्री चैतन्य महाप्रभु; **ताँरे**—उनको; **पाठाइल**—भेजा; **भोजन करिते**—भोजन करने के लिए; **सेइ रात्रि**—उस रात; **ताँर घरे**—उनके घर पर; **रहिला**—रहे; **ताँर प्रीते**—उनको सन्तुष्ट करने के लिए।

अनुवाद

तब महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य से कहा कि जाकर भोजन करें और महाप्रभु उन्हें प्रसन्न करने के लिए उस रात्रि उन्हीं के घर रुके।

সার্বভৌম-সঙ্গে আর লঞা নিজ-গণ ।
তীর্থ-যাত্রা-কথা কহি' কৈল জাগরণ ॥৩৫৫॥

सार्वभौम-सङ्गे आर लञा निज-गण ।
तीर्थ-यात्रा-कथा कहि' कैल जागरण ॥ ३५५ ॥

सार्वभौम-सङ्गे—सार्वभौम भट्टाचार्य के साथ; **आर**—और; **लञा निज-गण**—अपने निजी साथियों को लेकर; **तीर्थ-यात्रा-कथा**—तीर्थयात्रा की कथाएँ; **कहि'**—बताकर; **कैल**—किया; **जागरण**—रात भर जागे।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके निजी संगी सार्वभौम भट्टाचार्य के यहीं रहे। वे सारी रात महाप्रभु की तीर्थयात्रा का वृत्तान्त सुनते हुए जगते रहे।

प्रभु कहे,—एत तीर्थ कैलुँ पर्यटन ।
तोमा-सम वैष्णव ना देखिलुँ एक-जन ॥ ३५६ ॥

प्रभु कहे—महाप्रभु ने कहा; **एत तीर्थ**—इतने तीर्थस्थानों की; **कैलुँ पर्यटन**—मैंने यात्रा की है; **तोमा-सम**—आपकी तरह; **वैष्णव**—वैष्णव भक्त; **ना**—नहीं; **देखिलुँ**—मैं देख सका; **एक-जन**—एक व्यक्ति भी।

अनुवाद

महाप्रभु ने सार्वभौम भट्टाचार्य से कहा, "मैंने अनेक तीर्थस्थानों की यात्रा की है, किन्तु कहीं भी आप जैसा वैष्णव नहीं देखा।"

एक रामानन्द राय बहु सुख दिल ।
भट्ट कहे,—एइ लागि' मिलिते कहिल ॥ ३५७ ॥

एक—एक; **रामानन्द राय**—रामानन्द राय ने; **बहु सुख**—बहुत सुख; **दिल**—दिया; **भट्ट कहे**—सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया; **एइ लागि'**—इस कारण; **मिलिते**—मिलने के लिए; **कहिल**—मैंने विनती की थी।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु कहते रहे, "रामानन्द राय की बातों से मुझे बहुत सुख प्राप्त हुआ।" भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "इसीलिए मैंने आपसे विनती की थी कि आप उनसे अवश्य मिलें।"

तात्पर्य

श्री चैतन्य चन्द्रोदय (भाग ८ का आरम्भ) में श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है—"सार्वभौम, मैंने अनेक तीर्थस्थानों की यात्राएँ की हैं, किन्तु मुझे आप जैसा वैष्णव कहीं नहीं मिला। किन्तु मुझे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि रामानन्द राय सचमुच अद्‌भुत हैं।"

सार्वभौम भट्टाचार्य ने उत्तर दिया, "इसीलिए, हे प्रभु, मैंने आपसे प्रार्थना की थी कि आप उनसे अवश्य भेंट करें।"

इस पर श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा, "इन तीर्थों में अनेकानेक वैष्णव हैं और उनमें से अधिकांश भगवान् नारायण की पूजा करते हैं। अन्य, जो तत्त्ववादी कहलाते हैं, वे भी लक्ष्मी-नारायण के उपासक हैं, किन्तु वे शुद्ध वैष्णव सम्प्रदाय के नहीं हैं। शिवजी के अनेक उपासक हैं और अनेक नास्तिक भी हैं। तो भी हे भट्टाचार्य, मुझे रामानन्द राय तथा उनके विचार अत्यन्त प्रिय हैं।"

तीर्थ-यात्रा-कथा एइ कैलुँ समापन ।
सङ्क्षेपे कहिलुँ, विस्तार ना याय वर्णन ॥ ३५८ ॥

तीर्थ-यात्रा-कथा एइ कैलुँ समापन ।
सङ्क्षेपे कहिलुँ, विस्तार ना याय वर्णन ॥ ३५८ ॥

तीर्थ-यात्रा-कथा—तीर्थ यात्रा की कथा; **एइ**—ये; **कैलुँ समापन**—मैंने समाप्त कर दी है; **सङ्क्षेपे कहिलुँ**—मैंने संक्षेप में वर्णन किया है; **विस्तार**—विस्तारपूर्वक; **ना याय वर्णन**—वर्णन करना सम्भव नहीं है।

अनुवाद

इस तरह मैंने श्री चैतन्य महाप्रभु की तीर्थयात्रा का वर्णन संक्षेप में पूरा किया है। इसे और विस्तार से नहीं बतलाया जा सकता।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने इंगित किया है कि इस अध्याय के ७४वें श्लोक में यह कहा गया है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने शियाली-भैरवी का मन्दिर देखा, किन्तु वास्तव में उन्होंने शियाली में श्री भू-वराह का मन्दिर देखा। शियाली तथा चिदम्बरम् के निकट श्री मुष्णम् का मन्दिर है। इसी मन्दिर में श्री भू-वराह का अर्चाविग्रह है। चिदम्बरम की सीमा के अन्तर्गत दक्षिण आर्कट नाम का एक जिला है और शियाली इस जिले में है। पास ही श्री भू-वराह देव का मन्दिर है, न कि भैरवीदेवी का। यह श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर का निष्कर्ष है।

अनन्त चैतन्य-लीला कहिते ना जानि ।
लोभे लज्जा खाञा तार करि टानाटानि ॥ ३५९॥

अनन्त चैतन्य-लीला कहिते ना जानि ।
लोभे लज्जा खाञा तार करि टानाटानि ॥ ३५९॥

अनन्त—अनन्त; **चैतन्य-लीला**—चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; **कहिते**—वर्णन करना; **ना जानि**—मैं नहीं जानता; **लोभे**—लोभ में आकर; **लज्जा खाञा**—निर्लज्ज होकर; **तार**—उनका; **करि**—मैं करता हूँ; **टानाटानि**—कुछ प्रयास मात्र।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अनन्त हैं। उनके कार्यकलापों का कोई ठीक से वर्णन नहीं कर सकता, फिर भी लोभवश मैंने चेष्टा की है। इससे मेरी निर्लज्जता ही प्रकट होती है।

प्रभुर तीर्थ-यात्रा-कथा शुने येइ जन ।
चैतन्य-चरणे पाय गाढ़ प्रेम-धन ॥ ३६०॥

प्रभुर तीर्थ-यात्रा-कथा शुने येइ जन ।
चैतन्य-चरणे पाय गाढ़ प्रेम-धन ॥ ३६०॥

प्रभुर—श्री चैतन्य महाप्रभु की; **तीर्थ-यात्रा**—पवित्र तीर्थों की यात्रा का; **कथा**—विषय; **शुने**—सुनता है; **येइ**—जो; **जन**—व्यक्ति; **चैतन्य-चरणे**—श्री चैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों में; **पाय**—पाता है; **गाढ़**—प्रगाढ़; **प्रेम-धन**—प्रेम-धन।

अनुवाद

जो कोई भी श्री चैतन्य महाप्रभु की विभिन्न तीर्थस्थानों की यात्रा के विषय में सुनता है, वह प्रगाढ़ प्रेमभाव रूपी धन को प्राप्त करता है।

तात्पर्य

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की टिप्पणी है, "निर्विशेषवादी अपनी इन्द्रियों की प्रत्यक्ष अनुभूति से परम सत्य के किसी रूप की कल्पना करते हैं। वे इन काल्पनिक रूपों की पूजा करते हैं, किन्तु न तो *श्रीमद्भागवत* न ही श्री चैतन्य महाप्रभु इस प्रकार की इन्द्रियतृप्ति की पूजा को किसी प्रकार से आध्यात्मिक महत्त्व देते हैं।" मायावादी अपने आपको सर्वोपरि मानते हैं। वे मानते हैं कि परब्रह्म का कोई व्यक्तिगत रूप नहीं होता, और उनके सारे स्वरूप मायाजाल या आकाश-पुष्प के समान काल्पनिक होते हैं। मायावादी लोग तथा ईश्वर के रूपों की कल्पना करने वाले दोनों ही भ्रमित हैं। उनके अनुसार अर्चाविग्रह की या भगवान् के किसी भी स्वरूप की पूजा बद्धजीव के भ्रम का परिणाम है। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु अपने *अचिन्त्य-भेदाभेद तत्त्व* दर्शन के आधार पर *श्रीमद्भागवत* के निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं। इस दर्शन के अनुसार भगवान् अपनी सृष्टि से एक साथ अभिन्न तथा भिन्न हैं। अर्थात् एकत्व में विविधता है। इस तरह महाप्रभु ने सकाम कर्मियों, तर्कवादी ज्ञानियों तथा योगियों की अयोग्यता सिद्ध की। ऐसे व्यक्तियों की अनुभूति समय तथा शक्ति का अपव्यय मात्र है।

आदर्श स्थापित करने के उद्देश्य से ही श्री चैतन्य महाप्रभु ने विविध तीर्थस्थानों के मन्दिरों में स्वयं दर्शन किया। वे जहाँ कहीं भी जाते थे, वहाँ वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रेम में भावविह्वल हो जाते थे। जब कोई वैष्णव किसी देवता के मन्दिर में जाता है, तब उस देव के प्रति उसकी दृष्टि निर्विशेषवादियों तथा मायावादियों से भिन्न होती है। इसकी पुष्टि *ब्रह्म-संहिता* द्वारा होती है। उदाहरण के तौर पर शिव-मन्दिर में वैष्णव का जाना अभक्त के जाने से भिन्न होता है। अभक्त शिवजी के विग्रह को काल्पनिक मानता है, क्योंकि वह यही सोचता है कि आखिर परम सत्य तो शून्य है। किन्तु एक वैष्णव शिवजी को एकसाथ भगवान् से अभिन्न तथा भिन्न करके देखता है। इस सम्बन्ध में दूध

तथा दही का दृष्टान्त प्रस्तुत किया जाता है। दही, वास्तव में दूध के अतिरिक्त कुछ और नहीं है, किन्तु साथ ही साथ वह दूध भी नहीं है। वह दूध से अभिन्न होकर भी भिन्न होता है। श्री चैतन्य महाप्रभु का यही दर्शन है और इसकी पुष्टि भगवान् कृष्ण *भगवद्गीता* (९.४) द्वारा करते हैं।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥

"यह सारा ब्रह्माण्ड मेरे अव्यक्त रूप से ओतप्रोत है। सारे जीव मुझ में हैं, किन्तु मैं उन में नहीं हूँ।"

परम सत्य, भगवान् सब कुछ हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हर वस्तु ईश्वर है। इसी कारण से श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके अनुयायी सभी देवताओं के मन्दिरों में गये, किन्तु उन्होंने उन्हें उस रूप में नहीं देखा, जैसाकि निर्विशेषवादी देखते हैं। हर व्यक्ति को श्री चैतन्य महाप्रभु का अनुसरण करते हुए सारे मन्दिरों को देखना चाहिए। कभी-कभी सांसारिक सहजिये यह मान लेते हैं कि गोपियाँ कात्यायनी-मन्दिर में उसी तरह गईं, जिस तरह संसारी लोग देवी-मन्दिर में जाते हैं। किन्तु गोपियों ने कात्यायनी से प्रार्थना की कि वे उन्हें पतिरूप में कृष्ण प्रदान करें, जबकि संसारी लोग कात्यायनी के मन्दिर में भौतिक लाभ प्राप्त करने की इच्छा लेकर जाते हैं। एक वैष्णव तथा एक अभक्त के जाने में यही अन्तर है।

गुरु-शिष्य परम्परा की प्रक्रिया को न समझने के कारण तथाकथित तार्किकों ने *पञ्चोपासना* का सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं, जिसके अन्तर्गत विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य या गणेश—इन पाँच देवताओं में से किसी एक की पूजा की जाती है। इस विचारधारा में निर्विशेषवादी इन पाँच देवताओं में से एक को सर्वोपरि समझते हैं और बाकी अन्य देवताओं का अस्वीकार करते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु या वैष्णवों को ऐसा दार्शनिक चिन्तन जो निश्चित रूप से मूर्ति-पूजा है, स्वीकार्य नहीं है। यह काल्पनिक अर्चाविग्रह-पूजा हाल ही में मायावादी निर्विशेषवाद में परिवर्तित हो गई है। कृष्णभावनामृत के अभाव में लोग मायावाद-दर्शन के शिकार हो जाते हैं। फलस्वरूप वे कभी-कभी नितान्त नास्तिक बन जाते हैं। किन्तु श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने निजी आचरण से

आत्म-साक्षात्कार की विधि स्थापित की। जैसाकि *चैतन्य-चरितामृत* (मध्य ८.२७४) में कहा गया है :

स्थावर-जङ्गम देखे, ना देखे तार मूर्ति।
सर्वत्र हय निज इष्टदेवस्फूर्ति॥

"एक वैष्णव कभी भी किसी भी—स्थावर या जंगम वस्तु का भौतिक रूप नहीं देखता। वह जहाँ भी देखता है, वहाँ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शक्ति को देखता है और तुरन्त ही भगवान् के दिव्य रूप का स्मरण करता है।"

চৈতন্য-চরিত শুন শ্রদ্ধা-ভক্তি করি' ।
মাৎসর্য ছাড়িয়া মুখে বল 'হরি' 'হরি' ॥৩৬১॥

চৈতন্য-চরিত শুন শ্রদ্ধা-ভক্তি করি' ।
মাৎসর্য্য ছাড়িয়া মুখে বল 'হরি' 'হরি' ॥ ৩৬১ ॥

चैतन्य-चरित—श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; **शुन**—सुनो; **श्रद्धा**—श्रद्धा; **भक्ति**—भक्ति; **करि'**—स्वीकार करके; **मात्सर्य**—ईर्ष्या; **छाड़िया**—त्यागकर; **मुखे**—मुख से; **बल**—कहो; **हरि हरि**—"हरि हरि"।

अनुवाद

कृपया श्रद्धा तथा भक्ति के साथ श्री चैतन्य महाप्रभु की दिव्य लीलाओं का श्रवण करें। सब लोग भगवान् से ईर्ष्या करना छोड़कर भगवान् के पवित्र नाम हरि का कीर्तन करो।

এই কলি-কালে আর নাহি কোন ধর্ম ।
বৈষ্ণব, বৈষ্ণব-শাস্ত্র, এই কহে মর্ম ॥৩৬২॥

এই কলি-কালে আর নাহি কোন ধর্ম ।
বৈষ্ণব, বৈষ্ণব-শাস্ত্র, এই কহে মর্ম ॥ ৩৬২ ॥

एइ कलि-काले—इस कलियुग में; **आर**—अन्य; **नाहि कोन**—कोई नहीं है; **धर्म**—धर्म; **वैष्णव**—भक्त; **वैष्णव-शास्त्र**—भक्ति युक्त साहित्य; **एइ कहे मर्म**—यही सार है।

अनुवाद

इस कलियुग में कोई असली धर्म नहीं रहा। केवल वैष्णव भक्तों

तथा वैष्णव शास्त्रों द्वारा स्थापित सिद्धान्त रह गये हैं। यही सभी बातों का सार है।

तात्पर्य

मनुष्य को भक्ति की विधि तथा इसके समर्थक शास्त्रों में दृढ़ आस्था होनी चाहिए। यदि मनुष्य श्रद्धापूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं को सुनता है, तो वह ईर्ष्या की स्थिति से मुक्त हो सकता है। *श्रीमद्भागवत* ऐसे ही ईर्ष्यारहित व्यक्तियों (*निर्मत्सराणां सताम्*) के लिए है। इस युग में श्री चैतन्य महाप्रभु के आन्दोलन से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए, अपितु हरि तथा कृष्ण के पवित्र नामों—महामन्त्र—का कीर्तन करना चाहिए। *सनातन धर्म* का यही सार है। इस श्लोक में *वैष्णव* शब्द का सन्दर्भ शुद्ध भक्त तथा स्वरूपसिद्ध व्यक्ति से है और *वैष्णव-शास्त्र* शब्द श्रुति या वेदों का सूचक है, जिन्हें *शब्द प्रमाण* अर्थात् दिव्य ध्वनि रूपी साक्ष्य कहा जाता है। जो व्यक्ति वैदिक साहित्य का दृढ़ता से पालन करता है और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करता है, वह निश्चय ही दिव्य गुरु-शिष्य परम्परा में स्थान प्राप्त करेगा। जो लोग जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें इस सिद्धान्त का पालन करना चाहिए। *श्रीमद्भागवत* (११.१९.१७) में कहा गया है :

श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम्।
प्रमाणेष्वनवस्थानाद्विकल्पात् स विरज्यते॥

"वैदिक साहित्य, प्रत्यक्ष अनुभूति, इतिहास तथा अनुमान—ये चार प्रकार के साक्ष्य-प्रमाण हैं। परम सत्य की अनुभूति के लिए सब को इन सिद्धान्तों पर अटल रहना चाहिए।"

চৈতন্য-চন্দ্রের লীলা—অগাধ, গম্ভীর ।
প্রবেশ করিতে নারি,—স্পর্শি রহি' তীর ॥ ৩৬৩॥

चैतन्य-चन्द्रेर लीला—अगाध, गम्भीर ।
प्रवेश करिते नारि,—स्पर्शि रहि' तीर ॥ ३६३॥

चैतन्य-चन्द्रेर लीला—श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; **अगाध**—अगाध, गहरी;

गम्भीर—गम्भीर; **प्रवेश करिते**—प्रवेश करने के लिए; **नारि**—मैं असमर्थ हूँ; **स्पर्शि**—मैं स्पर्श करता हूँ; **रहि' तीर**—तट पर खड़े होकर।

अनुवाद

श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ अगाध समुद्र की भाँति हैं। उनमें प्रवेश कर पाना मेरे लिए सम्भव नहीं है। मैं तो समुद्र-तट पर खड़े होकर केवल जल का स्पर्श कर रहा हूँ।

चैतन्य-चरित श्रद्धाय शुने येइ जन ।
यतेक विचारे, तत पाय प्रेम-धन ॥ ३६४॥

चैतन्य-चरित श्रद्धाय शुने येइ जन ।
यतेक विचारे, तत पाय प्रेम-धन ॥ ३६४॥

चैतन्य-चरित—श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाएँ; **श्रद्धाय**—श्रद्धा से; **शुने**—सुनता है; **येइ जन**—जो व्यक्ति; **यतेक विचारे**—जहाँ तक वह विचारपूर्वक अध्ययन करता है; **तत**—वहाँ तक; **पाय**—वह पाता है; **प्रेम-धन**—प्रेम धन।

अनुवाद

जितना अधिक कोई श्रद्धापूर्वक श्री चैतन्य महाप्रभु की लीलाओं को सुनता है और व्याख्या करके उनका अध्ययन करता है, उतना ही अधिक वह भगवत्प्रेम रूपी धन को प्राप्त करता है।

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ ३६५॥

श्री-रूप-रघुनाथ-पदे यार आश ।
चैतन्य-चरितामृत कहे कृष्णदास ॥ ३६५॥

श्री-रूप—श्रील रूप गोस्वामी; **रघुनाथ**—श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी; **पदे**—चरणकमलों पर; **यार**—जिसकी; **आश**—आशा; **चैतन्य-चरितामृत**—*चैतन्य चरितामृत* नामक ग्रन्थ; **कहे**—वर्णन करता है; **कृष्णदास**—श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी।

अनुवाद

श्री रूप और श्री रघुनाथ के चरणकमलों पर प्रार्थना करते हुए तथा

सदैव उनकी कृपा की कामना करते हुए मैं कृष्णदास उनके चरणचिह्नों पर चलकर श्री चैतन्य-चरितामृत का वर्णन कर रहा हूँ।

तात्पर्य

सदैव की तरह प्रणेता इस अध्याय का समापन श्री रूप तथा श्री रघुनाथ का नाम लेते हुए और उनके चरणकमलों पर अपने आपको पुनः समर्पित करते हुए करते हैं।

इस प्रकार श्री चैतन्य-चरितामृत मध्यलीला के नवम अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ, जिसमें श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा दक्षिण भारत के अनेक तीर्थ-स्थानों की यात्राओं का वर्णन हुआ है ।